TEXT FLY WITHIN THE BOOK ONLY

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_186147

UNIVERSAL
LIBRARY

SMANIA UNIVERSITY LIBRARY

H 392.6 Accession No. G H 560
G97Se

युप्त मन्मथायन
सेक्स का रहस्य

is book should be returned on or before the date
ked below.

सेक्स का स्वभाव

लेखक

मन्मथनाथ गुप्त

परिवर्धित तथा परिशोधित संस्करण १९५४

वितरक

आत्माराम एण्ड संस

काश्मीरी गेट,

दिल्ली

मुखपृष्ठ का चित्र—बोत्तिचेलि श्री कुमारिल स्वामी

श्रीमती माया गुप्त, आशा प्रकाशन, द्वारा दिल्ली
प्रकाशित, हिन्दी-मन्दिर प्रेस, गली शीशमहल
सीताराम बाजार दिल्ली द्वारा मुद्रित

भूमिका

इस पुस्तक का नया संस्करण बहुत पहिले ही निकल चुका होता, पर मांग होते हुए भी कई अनिवार्य कारणों से इसका परिशोधित संस्करण अब तक नहीं हो सका। मैं चाहता था कि इसे पूर्व प्रकाशक से छुड़ा कर ही प्रकाशित किया जाय, और इसे अपनी देख रेख में प्रकाशित किया जाय। इसके लिये बहुत लम्बी लिखा पढ़ी करनी पड़ी।

जो कुछ भी हो अब यह पुस्तक परिशोधित और परिवर्द्धित रूप में प्रकाशित हो रही है। इस बीच में मैंने बहुत सी नयी बातें एकत्र की थीं, उनमें से कुछ बातें तो इस योग्य थीं कि इसी विषय की मेरी दूसरी पुस्तक "यौन विज्ञान और वैवाहिक जीवन" के अन्तर्भुक्त की जांय, और कुछ बातें ऐसी थीं, जो वर्तमान पुस्तक के उपयुक्त थी।

मेरी इन दो पुस्तकों के कारण मेरे पास जो पत्र समय-समय पर आते रहे, उनसे मैंने परिवर्द्धन कार्य में सहायता ली। मैंने इन पत्रों से देखा कि एक तरफ रूढ़िवाद और दूसरी तरफ़ उच्छृंखलता से हमें सेक्स के क्षेत्र में लोहा लेना है। एक तरफ तो पग-पग पर ग़लत बाधाओं और निषेधों के कारण स्वस्थ जीवन असम्भव होता है, और दूसरी तरफ सभी तरह के अनुशासन के विरुद्ध चलने की प्रवृत्ति के कारण वैयक्तिक और सामाजिक जीवन में गड़बड़ियां पैदा होती हैं। इन्हीं बातों पर इन पुस्तकों में वैज्ञानिक रूप से विचार किया गया है। हमें पूर्ण आशा है कि वर्तमान रूप में यह पुस्तक पहले से कहीं अधिक उपयोगी सिद्ध होगी।

फरवरी, १९५४ — मन्मथनाथ गुप्त

सूची पत्र

१.	मनुष्य-व्यवहार और उसका दायरा	४
२.	मनुष्य -व्यवहार की प्रधान व्याख्यायें	३१
३.	सेक्स का स्वरूप	१०५
४.	मैथुन से सुख	१३८
५.	किन्से की खोजें	१८८

१

मनुष्य-व्यवहार और उसका दायरा

मनुष्य-व्यवहार का असली उत्सस्थल क्या है, इस सम्बन्ध में बड़ी-बड़ी गवेषणायें सृष्टि के आदि-काल से होती आई हैं। ईश्वरेच्छा या कर्म के सिद्धान्त से लेकर इस सम्बन्ध में कितनी ही व्याख्यायें हैं। स्पष्ट है कि वर्तमान अवसर पर हम इनके पचड़े में नहीं पड़ सकते। ज्ञान-विज्ञान की वर्तमान उन्नत अवस्था में इस सम्बन्ध में जो सैकड़ों मतमतान्तर हैं, उन्हीं पर हम यहां विचार कर सकते यदि हमारे पास स्थान होता। उनमें से फ्रायड तथा मार्क्स दो के ही मत मुख्य तथा मौलिक हैं। इस विषय पर जाने के पहले कि इन दो मतों में क्या मौलिक प्रभेद है, प्रभेद वास्तव में है अथवा नहीं, यह बात बता देना जरूरी है कि हम आम बोलचाल की भाषा में जिसे मनुष्य-व्यवहार कहते हैं, वैज्ञानिक परिभाषा में मनुष्य-व्यवहार का अर्थ उससे विस्तृततर ही नहीं आज यह परिभाषा सर्वग्रासी है।

आज की परिभाषा में केवल इच्छाकृत कार्य, वाणी या अंग-संचालन ही नहीं, बल्कि स्वप्नदृष्ट वस्तु, स्वप्नदर्शनकालीन अंगसंचालन से लेकर एक तरफ पागलखाने की कालकोठरी में बन्द पागल का प्रलाप तथा उसके आचरण और दूसरी तरफ सही दिमाग़ वाले व्यक्ति के द्वारा की गई लिखने-बोलने की ग़लतियाँ (Slips) भी मनुष्य-व्यवहार के अन्तर्गत समझी जाती हैं। आज के वैज्ञानिक का काम इसलिये पहले से कहीं कठिन और संगीन हो गया है। आज का मनोविज्ञान इस कारण कोई एकांगी विज्ञान नहीं रह गया है, बल्कि वह एक तरफ तो शरीरविज्ञान (Physiology) में डूब-सा रहा है, दूसरी तरफ वह चिकित्साशास्त्र की तरह उद्देश्य

प्रधान (Purposive) हो गया है, साथ ही प्राणविज्ञान (Biology), अर्थविज्ञान तथा समाजविज्ञान से भी उसका सीधा सम्बन्ध स्थापित हो गया है। सच बात तो यह है कि इन विज्ञानों की सीमा-रेखायें मनोविज्ञान की नित नई—क्रमशः बढ़ती हुई उत्ताल लहरों के सामने टूट चुकी है।

मनुष्य-व्यवहार के अन्तर्गत समझकर किन-किन आचरणों, विचारों, रोगों तथा अंगसंचालनों की व्याख्या आज के मनोवैज्ञानिक करने की चेष्टा करते हैं, इसका कुछ अन्दाज़ा हम यहाँ देने की चेष्टा करेंगे। अक्सर हम कुछ नाम भूल जाते हैं, कहने कुछ जाते हैं, कह कुछ जाते हैं, लिखना कुछ चाहते है, लिख कुछ जाते हैं; लिखा कुछ है, उसे पढ कुछ और जाते हैं। फ्रायड ने इस प्रकार की सामयिक भूलो पर गहरा अनुसंधान किया है। इस अनुसंधान के दौरान में उनके हाथ कुछ ऐसे तथ्य लगे जिनसे ज्ञात हुआ कि ये भूलें उतनी अनियमित नहीं हैं जितनी कि वे समझी जाती हैं, और उनके पीछे भी एक प्रणाली है। फ्रायड ने वैज्ञानिक-जनोचित ज़िद के साथ इस बात के भी पता लगाने की चेष्टा की कि भूलने के बाद जो नया शब्द हमारे सामने आ जाता है, जो हमारे निकट तात्कालिक रूप से तो सही जँचता है, वह कहां से आता है? उन्होने इस विषय पर गवेषणा की कि यह जो शब्द 'मान न मान मैं तेरा मेहमान' बनकर हमारे स्मृतिपटल पर आकर चिपककर बैठ जाता है, और यही नहीं घर का एकमात्र सही मालिक बनकर ऐंठता नज़र आता है, उसका भूले हुए शब्द से कोई सम्बन्ध भी है या नहीं।

फ्रायड की मातृभाषा जर्मन में एक शब्द की जगह पर दूसरे शब्द को बोल जाने को Versprechen, एक शब्द की जगह दूसरे शब्द को लिख जाने को Verschreiben, एक शब्द की जगह दूसरे शब्द को पढ़ जाने को Verlesen, भूल जाने को Vergessen, एक बात की जगह दूसरी बात सुनने को Verhoren,

किसी चीज़ को रखकर भूल जाने को Verlegen, कहते हैं। "इस प्रकार जर्मन में इन सब क्रियाओं में Ver उपसर्ग लगे होने के कारण उन सब में कोई आन्तरिक सम्बन्ध सूचित होता है। इन शब्दों से वे ही भूलें सूचित होती हैं, जो विशेष महत्व की नहीं हैं, या हैं तो सामयिक महत्व की। उनसे विशेष कुछ आता-जाता नहीं है। इसी कारण इन पर बहुत कम ध्यान दिया जाता है।"* किसी भी व्यक्ति से यह पूछा जाय कि आखिर इस प्रकार की भूलों की तह में क्या है, उनका कोई अर्थ भी है तो वह हहराकर हँस पड़ेगा कि इसमें क्या धरा है, यह तो एक दैवात् बात है, इस पर इतनी माथापच्ची करने की ज़रूरत? इसके माने तो ये ही हुए कि हम इनको कार्यकारण सम्बन्ध से परे समझते हैं, जिसे मानना बिल्कुल संभव नहीं। इससे कहीं अच्छा यह मत है कि ईश्वरेच्छा के बगैर पत्ता भी नहीं हिलता।† तो यह स्पष्ट है कि इस प्रकार टालने से काम नहीं चल सकता। मान भी लिया जाय कि भूले हुए शब्द की जगह पर जो शब्द कह डाला गया, लिख डाला गया या पढ़ डाला गया, वह दैवात् आ गया, तो भी इस प्रश्न का उत्तर देना बाकी ही रह जाता है कि शब्द तो हज़ारों थे फिर यही ख़ास शब्द जीभ की या लेखनी की नोक पर क्यों आ गया? इस प्रकार इस प्रश्न को सुलझाना फिर भी बाकी ही रह जाता है।

इन भूलो की प्रकृति पर जब हम ध्यान से दृष्टिपात करते हैं तो हम पाते हैं कि वे कई तरह की होती हैं। फ्रायड के दिये हुए कुछ नमूने हम पेश करते हैं। जर्मन के एक साम्यवादी अख़बार में इस प्रकार की एक भूल लगातार कई बार हुई। उसमें छप गया "उपस्थित

*Introductory lectures on Psycho-Analysis by Prof. S. Freud M. D., p. 20.

†Ibid, p. 21

महानुभावों में हिज़ हाइनेस Clown-prince भी थे।"* Clown-prince का अर्थ होता है 'भाँड़-राजकुमार', असल में जो सज्जन उपस्थित थे, वे थे जर्मन सिंहासन के भावी उत्तराधिकारी Crown-prince। दूसरे दिन माफी माँगते हुए इसकी शुद्धि यों प्रकाशित हुई "इस वाक्य को पाठक शुद्ध करके Crow-prince करके पढ़ें। याने फिर भी ग़लती ही रही, और Crow-prince याने कौवा-राजकुमार छपा। इस प्रकार भद्दी ग़लती पर फिर भद्दी ग़लती हुई।"

एक बार आस्ट्रियन पार्लियामेन्ट के सभापति ने पार्लियामेन्ट का यों उद्घाटन किया, "सज्जनो, मैं घोषणा करता हूँ कि कोरम है, और मैं इस सभा को समाप्त करता हूँ।"

इंगलैंड के हाउस आफ़ कामन्स में एक सदस्य ने एक दूसरे सदस्य का यों उल्लेख किया, "Central Hell (नरक के बीच) के माननीय सदस्य" जब कि उन्हें कहना चाहिए था Central Hull नामक स्थान के सदस्य। इस प्रकार और कितने ही उदाहरण फ्रायड ने अपनी पुस्तकों तथा वक्तृताओं में दिये हैं। Psychopathology of everyday life नामक अपनी पुस्तक में तो फ्रायड ने मुख्यतः इसी विषय पर विचार किया है।

अब इन भूलों के कारणों में डुबकी लगाते हुए फ्रायड कहते हैं कि जब हम कुछ भूलों की तह में जाते हैं और इसका पता लगाते हैं कि भूल करनेवाला किस वातावरण में था, तो उस गलती के निहितार्थ को समझ जाते हैं। "जिस समय पार्लियामेन्ट का सभापति पार्लियामेन्ट का उद्घाटन करते हुए यह कह जाता है कि वह अधिवेशन को समाप्त करता है, उस समय उसका आशय स्पष्ट हो जाता है कि वह इस अधिवेशन से कोई टंग के फैसले की आशा नहीं करता। इसलिये वह

*Ibid, p. 23.

चाहता है कि यह अधिवेशन समाप्त हो जाय। इस प्रकार इस ग़लती के अर्थ को समझने में कोई दिक्कत नहीं होती। जब एक लेडी तारीफ़ करती हुई अपनी सहेली से यह कहने के बजाय कि "आपने इस सुन्दर हैट को सीया होगा" यह कहती है कि "आपने सुन्दर हैट को फेंक दिया होगा", तो उस समय भी उसका मतलब स्पष्ट हो जाता है कि उसके अनुसार यह हैट दो कौड़ी का है। या जब एक पति को परेशान करनेवाली स्त्री कहती है, "मेरे पति ने डाक्टर से पूछा कि वे किस प्रकार का खाना खा सकते हैं तो डाक्टर ने कहा, कुछ भी नहीं। किसी प्रकार के परहेज की ज़रूरत नहीं? वे मै जैसा चाहती हूँ, ऐसा सब कुछ खा सकते है।" तो उस समय भी सारी बात का मतलब साफ़ समझ में आ जाता है। किन्तु यह भी बात नहीं कि सर्वदा कहनेवाले का दिल मन्शा विरोधी होने के कारण भूल हो जाती है, बल्कि बहुत से क्षेत्रों में उसका मन्शा केवल इतना ही हो सकता है कि एक दूसरा अर्थ भी है। इस प्रकार जो स्त्री कहती है कि उसके पति को परहेज़ की ज़रूरत नहीं, साथ ही कहती है, "वे मैं जैसा चाहती हूं ऐसा सब कुछ खा सकते हैं", उसका कहने का मतलब यह ठहरता है, "वे जैसा चाहें तैसा खा-पी सकते हैं, किन्तु वे क्या चाहते है या नहीं चाहते हैं इससे आता-जाता ही क्या है, क्योंकि अन्त तक जैसा मै चाहूंगी वही होकर रहेगा।" यहां कहनेवाली के मन में जो बात है उसमें कही गई बात के अलावा एक दूसरा भी अर्थ है, वह यह कि मेरा पति चाहे कितना भी पैर फटफटावे वह मेरे आधीन है।

फ्रायड के उदाहरणों से ही एक और घटना ली जाय। एक जवान ने कहा था कि वह अमुक लेडी को Insort करने के लिये तैयार है* । अब अंग्रेज़ी में इस प्रकार का कोई शब्द नहीं है। उसका कहने का बाहरी अभिप्राय था कि वह अमुक लेडी को

*असल में अनुवाद में यह शब्द है, मूल जर्मन में दूसरा शब्द है।

Escort करने या घर पहुँचा आने को तैयार है, किन्तु साथ ही उसके मन में ऐसा करने के दौरान में उसे Insult या अपमानित करने का विचार था, इसी से उसके मुँह से Insort शब्द निकल पड़ा। इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि ऐसी भूलें तभी होती हैं जब एक विषय में कहने वाले के दिमाग़ में साथ ही साथ दो विचार होते हैं, और वे एक दूसरे के आड़े आते हैं। इसी आड़े आने के तारतम्य के साथ ग़लती की प्रकृति का निर्णय होता है।* इस विषय पर हम यहाँ अधिक विस्तार में नहीं जा सकते।

इस प्रकार हमने देख लिया कि लिखने, बोलने तथा पढ़ने की ग़लतियां महज दैवात् घटित बातें नहीं हैं। ये गम्भीर मानसिक क्रियाओं के फलस्वरूप उत्पन्न होती हैं। वे निरर्थक नहीं होती हैं। समझनेवाले के लिये वहां भी अर्थ ही अर्थ हैं।

इस अध्याय में ग़लतियों पर विचार के लिये और अधिक गुंजाइश नहीं हैं, फिर भी हम दो-एक उदाहरण और देंगे जिससे साधारण रूप से भूलें कहकर जिन बातों को हम टाल देते हैं, उनको मनुष्य-व्यवहार में क्या महत्व प्राप्त है, यह समझ में आ जाय। एक रोगिणी पहली ही बार फ्रायड से मिली। उसके इतिहास से यह स्पष्ट हो गया कि उसकी स्नायविकता का मुख्य कारण उसका असुखी विवाहित जीवन था। उत्साहित न किये जाने पर भी उसने ब्यौरेवार तरीके से अपने दाम्पत्य कलहों तथा गड़बड़ियों का ज़िक्र करना शुरू कर दिया। छः महीने से वह अपने पति से अलग रहती थी, और उसने अपने पति को अन्तिम बार थियेटर में "आफ़िसर ६०६" नामक खेल के अवसर पर देखा था। इस पर फ्रायड ने उसका ध्यान दिलाया कि खेल का नाम 'आफ़िसर ६६६' था न कि ६०६ तब उसने अपनी ग़लती सुधार ली। फ्रायड ने तब यह तय कर लिया कि इस भूल के कारण को ढूंढ़ा जाय, तदनुसार

* Ibid, p. 33.

मनोविश्लेषण के लिये वह रोगिणी बुलाई गई; और अन्त तक यह ज्ञात हुआ कि पति-पत्नी के झगड़े का कारण ही यह था कि पति को एक ऐसा रोग हो गया था जिसका इलाज ६०६ नामक प्रसिद्ध दवा से हो रहा था, याने उसे आतशक हो गया था।

एक दूसरा उदाहरण यह है कि एक रोगी ने फ्रायड को टेलीफोन किया, और पूछा कि वे क्या फीस लेते हैं? रोगी को बताया गया कि पहली बार की फीस दस डालर है। पहली बार परीक्षा के बाद रोगी ने फिर कहा, "मैं किसी का ऋणी रहना पसंद नहीं करता, विशेषकर डाक्टरों का, मैं फौरन दे देना पसन्द करता हूँ।" किन्तु उसने pay शब्द की जगह पर play (खेलना) शब्द का प्रयोग किया, इस पर फ्रायड साहब के कान खड़े हो गये, किन्तु उसी समय रोगी ने जेब से थैली निकाली तो डाक्टर फ्रायड को इतमीनान हुआ। किन्तु अरे यह क्या, जब उसने रुपये गिने तो पूरे नहीं पड़े। उसने बहुत ही दुःखी होकर कहा मैं जाकर रुपये भेज दूंगा। कई एक दिन प्रतीक्षा करने के बाद भी जब फीस के रुपये नहीं आये तब डाक्टर ने बिल भेजा तो वहां से पता मिला कि पतेवाले सज्जन का कहीं कोई पता ही नहीं है।*

इन उदाहरणों से स्पष्ट है मनुष्य-व्यवहार के अन्तर्गत समझकर किस प्रकार मामूली हर समय होनेवाली ग़लतियों की व्याख्या की गई है। कोई भी बात आज मनुष्य-व्यवहार के न तो परे है, और न कोई घटना ऐसी है जिसको वैज्ञानिक हेय या छोटी समझकर छोड़ दें। मनुष्य-व्यवहार के हरएक हिस्से का विश्लेषण किया गया, उसका परिदर्शन किया गया, और फिर उस परिदर्शन के नतीजों को वर्गीकृत करके एकत्र किया गया, और उनको बारबार प्रयोग की कसौटी पर कसा गया।

---

*Psychopathology of everyday life, p. 60

रूसी वैज्ञानिक पैवलौफ़ ने मनुष्य-व्यवहार की तह तक जाने के लिये गवेषणा के वस्तुतान्त्रिक तरीकों का प्रयोग किया है। पेवलौफ़ के ये प्रयोग इतने महत्वपूर्ण हैं कि सच बात तो यह है कि उनके महत्व को वैज्ञानिक जगत भी अभी ठीक-ठीक हृदयंगम नहीं कर पाया है। ये इतने क्रांतिकारी हैं कि इनको सामने रखने पर दार्शनिकों के मन तथा शरीर-सम्बन्धी गवेषणायें महज़ एक मूर्खों की कल्पना ज्ञात होती है। जोड का यह कहना है कि अगले पचास वर्ष में लोग शायद पैवलौफ़ की गवेषणाओं को समझकर उसे वह महत्व दें जो डार्विन के Origin of Species या आईनस्टाइन के सिद्धांत को दिया गया है।* रूसी वैज्ञानिकों के इस दल ने मुख्यतः कुत्तों पर अपने प्रयोग किये हैं। बात यह है कि मनुष्य पर प्रयोग करना कोई मुलभ नहीं था। उसमें एक से एक अड़चन थी। कौन अपने ऊपर प्रयोग करने देता? फिर कई पुश्त पर एक के बाद एक कैसे प्रयोग होता, क्योंकि प्रयोग करनेवाले की आयु प्रयोग में व्यवहृत व्यक्ति से अधिक नहीं थी इस हालत में पुश्त-दर-पुश्त प्रभाव का अध्ययन संभव नहीं होता। कुत्ते का मन हमारे मुक़ाबले में कम जटिल है, किन्तु साथ ही उसकी प्रक्रिया के आधारगत नियम वे ही हैं जो हमारे मन की प्रक्रिया के हैं। पैवलौफ़ के इन प्रयोगों के परिणाम बड़े ही महत्वपूर्ण हैं। उनके कारण मनोविज्ञान जगत् में तहलका मचा हुआ है। उनको लेकर राजनीतिक प्रचार-कार्य के आन्तरिक रहस्य को समझने समझाने का प्रयत्न एक तरफ डाक्टर चैकोटिन ऐसे प्रसिद्ध प्राण-वैज्ञानिक करते-कराते नज़र आते हैं, तो दूसरी तरफ आत्मवादी उसके उपसंहारों से लड़ते नज़र आते हैं।

पैवलौफ़ कोई मनोवैज्ञानिक नहीं थे, और न मनुष्य के व्यवहार का उत्सस्थल क्या है, यही उनके अध्ययन का विषय था। वे तो

*Guide to Modern Thought by C. E. M. Joad, p. 44.

परिपाक-प्रक्रिया तथा उस सम्बन्धी ग्रंथियों को अध्ययन करने चले थे, इतने में उनका ध्यान एकाएक इस ओर खिंच गया, और वे इसकी संभावनाओं से इतने मुग्ध हो गये कि वे इसी पर अनुसन्धान करने लगे। पैवलौफ़ ने पहले ही इस बात का पता लगा लिया था कि शरीर-यंत्र की आवश्यकता के अनुसार लाला-ग्रंथियां (Salivary glands) बहुत ही सूक्ष्म रूप से परिचालित होती हैं। आवश्यकता के अनुसार ग्रंथियों के रसक्षरण (Secretion) में कभी वैसी ही नहीं आती, बल्कि उस रस में प्रकार-भिन्नता भी आती है। यदि कोई सूखा खाना मुंह के अन्दर डाला जाय तो प्रचुर मात्रा में लाला-ग्रंथियों का रसक्षरण होता है जिससे कि खाना नरम होकर निगला जा सके! यदि खाने को निगलना है, तो एक तरह की लिबलिबी सरस करनेवाली लाला निकलती है, किन्तु यदि खाना नापसन्द है या गन्दा है और उसे थूक देना है, तो पतली तथा पनीली थूक निकलती है जिससे कि खाने को फेंक देने के साथ-ही-साथ मुंह एक तरह से धुल जाय।

यहां तक तो रसक्षरण की प्रक्रिया बतलाई गई, वह एक तरह से स्वयंचालित-सी मालूम होती है, पाठक आश्चर्य करेंगे कि उससे मनुष्य व्यवहार के मूल उत्स के अनुसन्धान से क्या सरोकार हो सकता है, किन्तु नहीं ज़रा आगे बढ़ने पर यह चीज़ स्पष्ट हो जायगी। यह देखा गया कि मुंह में खाना पड़ने पर ही लाला-ग्रंथियों का रसक्षरण होता है ऐसा नहीं, बल्कि यह लाला-क्षरणवाली प्रक्रिया और भी परोक्ष रूप से परिचालित होती है। ऐसा देखा गया कि कुत्ते के पास उसका प्रिय खाना ले जाते ही उसका लालाक्षरण शुरू हो जाता है और यह लाला उसी प्रकार की लिबलिबी और नरम करने वाली होती है,

*H. G. Wells, Julian Huxley और G. P. Wells लिखित Science of Life नामक पुस्तक से ही हमने मुख्यतः पैवलोफ़ सम्बन्धी अंश का संकलन किया है।

जैसे निगलते समय निकलती है। साथ ही कोई दवा जिसे कुत्ता नापसन्द करता है, उसे लेकर कुत्ते के पास जाया जाय तो उसके मुंह में वही पनीली संरक्षणात्मक लाला निकलती है। कुत्ते ने पहली बार जब इस दवा को या खाने को आते देखा था, तो उसकी लालाग्रंथियों पर उसकी कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई थी, किन्तु जब उसने एक बार इनको चख लिया तभी उसको आते देखकर अनुकूल या प्रतिकूल प्रक्रिया होनी शुरू हुई। अतएव यहाँ साफ-साफ स्मृति का उपादान आ जाता है। निःसन्देह होने के लिये इस पर और प्रयोग किये गये। कुत्ते का दिमाग़ अस्त्रोपचार द्वारा निकाल दिया गया, और फिर देखा गया, कि अब क्या असर रहता है। दिमाग़ निकले हुए कुत्ते के मुंह में जब खाना या दवा डाली गई, तो पहले की तरह अनुकूल या प्रतिकूल लालाक्षरण होता दिखाई पड़ा, किन्तु अब सुपरिचित खाने या दवा की गन्ध या दृष्टिमात्र की कोई प्रतिक्रिया लालाग्रंथियों पर नहीं होती। अब पैवलोफ़ इस बात पर चले कि आख़िर इस प्रक्रिया, जिसको आम लोगों की भाषा में मानसिक प्रतिक्रिया-जनित प्रक्रिया कहेंगे, की क्या प्रकृति है?

अब यहाँ से पैवलोफ़ ने फिर प्रयोग शुरू किये। कहना न होगा कि जैसे उनके सारे प्रयोग कुत्तों पर हुए थे, वैसे ही आगे के प्रयोग भी कुत्तों पर किये गये। एक कुत्ते को जहां तक हो सका सब उत्तेजनाओं से अलग किया गया। एकाएक उसको एक ऐसी घंटी सुनाई पड़ी जैसी उसने कभी नहीं सुनी थी, साथ ही कुछ सेकिण्डों के अन्दर किसी छिपी जगह से किसी ने रस्सी के द्वारा बंधे हुए पात्र में उसके सामने खाना डाल दिया। कुत्ता खाना देखकर सूंघने लगा, और फिर खाने लगा। जिस समय कुत्ता खा चुकता उस समय पात्र या थाली फिर खींच ली जाती। इस प्रकार बार-बार किया जाता। जब भी घंटी बजती तभी खाना सामने आ जाता। नतीजा यह होता कि इस प्रयोग की

बार-बार पुनरावृत्ति के बाद कुत्ते के स्वभाव में एक परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगता। अब घंटी के बजते ही उसमें खाने की व्यग्रता पैदा हो जाती और उसके मुंह में भोज्य वस्तु की समीपता के लक्षण प्रगट हो जाते, अर्थात् उसके मुंह में लार आ जाती। भला कहां घंटी का बजना और कहां लार का आ जाना। पैवलौफ़ ने इस विषय पर और भी गम्भीरता के साथ गवेषणा की। पैवलौफ़ एक शरीर वैज्ञानिक था, इसलिए वह ऐसे शब्द जैसे कुत्ता सीख गया या कुत्ते ने दोनों घटनाओं का एकीकरण कर लिया, ऐसे वाक्यांशों से सन्तुष्ट न रह सका। घंटी के बजते लार का आ जाना कोई स्वाभाविक बात तो थी नहीं, कुछ विशेष तरह के प्रयोगों के बाद यह नया स्वभाव या व्यवहार उद्भूत हुआ था, दूसरे कुत्तों में जिन पर यह प्रयोग नहीं किया गया था, इस स्वभाव का सर्वथा अभाव था। यदि उनके सामने यह घंटी बजाई जाती, तो उन पर इसकी कोई प्रतिक्रिया नहीं होती।

तो इस प्रकार कुत्ते के मुंह से दो प्रकार से लार टपकती हुई पाई गई, एक तो स्वाभाविक तौर पर, याने मुंह में खाना गया तो अनुकूल या प्रतिकूल लार टपकी। इसको पैवलौफ़ ने Unconditioned reflex कहा। दूसरी कुत्ते के मुंह से उपस्वाभाविक तौर पर लार टपकी जैसे घंटी के बजते ही कुत्ते के मुंह से लार टपकने लगी। इसको पैवलौफ़ ने Conditioned reflex कहा। स्पष्ट है कि स्वाभाविक प्रतिक्रिया उपस्वाभाविक प्रतिक्रिया के मुकाबले में कहीं स्थायी होती है, सच बात तो यह है कि वही असल में स्वाभाविक है। जब दिमाग़ के निकाल लिये जाने पर भी वह जारी रहती है तो उसके स्थायित्व का क्या पूछना? उपस्वाभाविक प्रतिक्रिया का तो यह हाल है कि वह थोड़े दिन में बन्द हो सकती है। उदाहरणस्वरुप यदि उस कुत्ते को जिसमें घंटी के शब्द के साथ ही लार टपकने का उपस्वभाव पैदा किया जा चुका है, बार-बार घंटी बजाने के साथ खाना न दिया जाय, तो उसका वह उपस्वभाव पहले क्षीण और फिर नष्ट हो जायगा। उपस्वाभाविक

प्रतिक्रिया या Conditioned reflex में और भी एक बात है, वह यह कि किसी स्वाभाविक प्रतिक्रिया को आधार बनाकर ही बन सकती है या बनाई जा सकती है। इसके अतिरिक्त स्वाभाविक प्रतिक्रिया (Unconditioned reflex) के मुकाबले में उपस्वाभाविक प्रतिक्रिया की गति मन्थर होती है, क्योंकि उपस्वाभाविक प्रतिक्रिया की प्रक्रिया में अधिकतर जटिल यंत्रों का उपयोग होता है।

पैवलौफ़ के सारे आविष्कारों तथा उपसंहारों पर हमें यहां जाने की जरुरत नहीं, किन्तु जिसे हम आम तौर पर मनुष्य व्यवहार कहते हैं उसको समझने में पैवलौफ़ के आविष्कार महत्वपूर्ण हैं। जिसको हम चरित्र या व्यक्तित्व कहते हैं, वह केवल उपवाभाविक प्रतिक्रियाओं का एक समूह मात्र हो जाता है। जिसकी उपस्वाभाविक प्रतिक्रियायें जैसी बनी हैं उसका स्वभाव, चरित्र, व्यक्तित्व वैसा ही बना है, वह वैसा ही व्यवहार करता है। पैवलौफ़ के उपसंहार के अनुसार शिक्षा केवल आवश्यक उपस्वाभाविक प्रतिक्रियाशीलता (Conditioned reflexes) का पैदा करना मात्र है। अवश्य इससे शिक्षा का प्रश्न कुछ हल नहीं हो जाता, क्योंकि शिक्षा में जैसा उद्देश्य सामने रखा जायगा, वैसी ही उपस्वाभाविक प्रतिक्रियाशीलता पैदा की जायगी। एक फैसिस्ट शिक्षाविज्ञानी कुछ और ही उपस्वाभविक प्रतिक्रियाशीलता पैदा करेगा, एक सामाजवादी बिलकुल उसके विपरीत। उपस्वाभाविक प्रतिक्रियाशीलता (Conditioned reflexes) का सिद्धान्त इतना व्यापक है कि भाषा की मर्यादा एक प्रकार की घंटी की तरह रह जाती है। जब दस, बीस, पचास हजार दफे दूध नाम से परिचित पदार्थ को दुद्धु या दूध नाम के साथ मनुष्य शिशु के सामने पेश किया जाता है, तभी वह उस श्वेतवर्णविशिष्ट, पुष्टिकर, तरल, स्निग्ध पदार्थ को दूध नाम से जानना सीखता है। इस प्रकार भाषा भी घंटी बजने की तरह एक उत्तेजक कारणमात्र है, जिससे उपस्वभाव क्रियाशील हो जाता है।

पैवलौफ़ ने मुख्यतः खाने की प्रवृत्ति को आधार बनाकर ही उपस्वाभाविक प्रतिक्रियाओं की सृष्टि की, किन्तु अन्य प्रवृत्तियों को आधार बनाकर उपस्वाभाविक प्रतिक्रियाओं की सृष्टि की जा सकती है, उदाहरण-स्वरूप भय, यौन-इच्छा (Sexual feeling) या मातृत्व की इच्छा को आधार बनाकर (Conditioned reflexes) या उपस्वाभाविक प्रतिक्रियाओं की सृष्टि की जा सकती है। आधारगत स्वाभाविक सहजातों (Instincts) को जीववैज्ञानिक महत्व की दृष्टि से यों गिनाया गया है "(१) सबसे महत्वपूर्ण साथ ही व्यापक सहजात संघर्ष का है। प्रत्येक जीवधारी प्राणी को मृत्यु तथा जीवन के प्रति ख़तरे के विरुद्ध लड़ना पड़ता है। यह ख़तरा उपवास के ख़तरे से कहीं भयंकर है। उदाहरण-स्वरूप आक्रमण से ख़तरा इतना बड़ा है कि उसके फलस्वरूप फौरन मृत्यु हो सकती है। उपवास से मृत्यु होते-होते काफी देर लगती है। भूख का ख़तरा तो काफी अर्से तक सहा जा सकता है, सांस कायम ही रहती है, इसी कारण आस भी रहती है, (२) दोयम नम्बर भूख के सहजात का है। यह सभी प्राणधारियों में व्याप्त है जब कि नम्बर, (३) याने प्रजनन सम्बन्धी सहजात सभी प्राणियों में नहीं होते, और (४) मातृत्व का सहजात अधिक से अधिक कुछ ही व्यक्तियों तक सीमित रहता है। बच्चों के लिए यत्नशीलता सब प्राणियों में व्याप्त नहीं है।"*

प्रथम तथा द्वितीय सहजात निम्नतम अर्थात् एक कोषवाले प्राणिधारियों में भी होते हैं। अमेरिकन वैज्ञानिक जेनिंग्स ने Infusoria नामक एक कोषवाले प्राणी पर प्रयोग करके यह सिद्ध कर दिया है कि पैवलौफ़ जिसे उपस्वाभाविक प्रतिक्रियाशीलता (Conditioned reflex) कहते हैं, वह इन प्राणिधारियों में भी पैदा की जा सकती है। डाक्टर सर्ज चाकोटिन ने स्वयं अपनी प्रयोगशाला में एक प्रयोग किया जिससे ज्ञात हुआ कि एक

*Rape of the Masses by Serge Chakotin D.Sc. p. 16.

मिलिमिटर के दसवें हिस्से के आकार के प्राणियों में भी उपस्वाभाविक प्रतिक्रियाशीलता पैदा की जा सकती है। उन्होंने पैरामैकियम (Paramecium) नामक एक इसी आकार के प्राणी को लेकर प्रयोग किया। पानी की एक छोटी-सी बूँद जिसमें यह प्राणी मौजूद था क्वार्टज (Quartz) नामक पत्थर के टुकड़े पर रखी गई। वह प्राणी बराबर उस बून्द के अन्दर इधर से उधर तैरता हुआ पाया गया। डाक्टर चाकोटिन ने उस बून्द के अन्दर अत्यन्त सूक्ष्म Ultra-violet रश्मि के द्वारा एक दीवार-सी खड़ी कर दी। यह दीवार ऐसी बारीक थी कि मनुष्य-चक्षु के लिये अदृश्य थी। इस प्रतिक्रिया को वैज्ञानिक भाषा में Microphotochirurgy कहते हैं। अब इस दीवार के बन जाने से जब वह प्राणी तैरता हुआ उसके पास आता है, तो वह ठिठककर पीछे हट जाता है, और वह अपने साधारण रास्ते (Trajectory) से हट जाता है। कई बार इस प्रकार आ-आकर लौट जाने पर वह अपना रास्ता बदल देता है। और इस प्रकार ख़तरे की जगह को बचाकर चलता है। जब ऐसा हो जाता है याने जब वह एककोषी प्राणी इस प्रकार अपना रास्ता बदल देता है, उस समय रश्मिवाली दीवार हटा ली जाती है। इसके बाद यह देखा जाता है कि वह प्राणी फिर भी अपने नये रास्ते पर तैरता है याने ऐसा ज्ञात होता है जैसे उस ख़तरे की 'स्मृति' उसे हो। यह प्रतिक्रिया कोई बीस मिनिट तक रहती है, जिसके बाद वह प्राणी धीरे-धीरे अपने पुराने रास्ते पर आ जाता है। मालूम ऐसा होता है जैसे उसकी 'स्मृति' बहुत ह्रस्व है, वह पैदा की हुई प्रतिक्रिया ख़त्म हो जाती है। इस प्रकार डाक्टर चाकोटिन इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि उपस्वाभाविक प्रतिक्रियाशीलता केवल स्नायुयुक्त उच्च-प्राणियों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि सब प्राणियों में समान है।* इस तरह पैवलौफ़ ने

*Rape of the Masses by Serge Chakotin p-14, 15.

जिस नियम के होने का पता केवल स्नायुयुक्त उच्च-प्राणियों तक लगाया था वह जैनिंग्स आदि के आविष्कार तथा प्रयोगों से सर्वप्राणीगत हो गया।

एस० मेटालनिकौफ़ ने Intracellular digestion and immunity in the unicellulars* नामक लेख में एक दिलचस्प प्रयोग का ज़िक्र किया है जिससे ज्ञात होता है कि पैरामैकियम नामक एक कोषी प्राणी अपने खाने को पहचानना 'सीख' सकता है। पैरामैकियमों को एक ऐसे माध्यम (Medium) में रख दिया गया, जिसमें कार्मिन की बुकनी (Carmine powder) मिश्रित थी। अब देखा गया कि पैरामैकियम इस मिश्रित पदार्थ को खा रहा है, किन्तु ऐसा केवल दो दिन के लिये। तीसरे दिन वह प्राणी कार्मिन खाने से इन्कार कर देता है और अपना साधारण खाना मात्र खाता है। इस प्रकार एक उपस्वाभाविक प्रतिक्रिया उसमें पैदा हो गई, किन्तु दो दिन के बाद।† इस प्रकार यह प्रयोग नम्बर दो सहजात को आधार बनाकर दिया गया, किन्तु इस उपस्वाभाविक प्रतिक्रिया के उत्पन्न करने में दो दिन लगे, जब कि पहले प्रयोग में जिसमें नम्बर एक सहजात को आधार बनाकर उपस्वभाव बनाया गया केवल कुछ ही लहम लगे और पैरामैकियम ने अपना रास्ता बदल दिया। इस प्रकार भय के आधार पर उपस्वभाव जल्दी बनता है। इसका एक सहजबोध्य उदाहरण (जो डाक्टर चाकोटिन ने दिया है और जिसे हम अपनी ज़िन्दगी में प्रत्यक्ष करते हैं। यहाँ उद्धृत करते हैं। एक कुत्ते को लिया जाय, और पहले उसे बेंत दिखाकर फिर मारा जाय। ऐसा दो-तीन बार किया जाय तो वह बेंत देखते ही भागने लगेगा। इस प्रकार दो-तीन बार में ही उसमें एक उपस्वभाव पैदा हो

*Ibid. †यह लेख Annales de l'Institut Pasteur, vol 48, 1932, p.681 में प्रकाशित हुआ था, डाक्टर चाकोटिन द्वारा उद्धृत।

जायगा। डाक्टर चाकोटिन ने इस विषय को और भी विस्तार के साथ अध्ययन किया और वे इस नतीजे पर पहुंचे कि औसत में ६० बार जब घंटी के बजते ही कुत्ते के सामने खाना आता है, तब उसमें यह उपस्वभाव पैदा होता है कि घंटी के बजते ही उसकी जीभ में लार आ जाती है, किन्तु दो बार बेंत दिखाकर मारते ही कुत्ता बेंत देखते ही भाग निकलने लगता है। हमें विस्तार में जाने की ज़रूरत नहीं, किन्तु इसी प्रकार डाक्टर चाकोटिन ने प्रयोगों से यह नतीजा निकाला है कि संघर्ष-भय-द्वन्द्व के आधार पर उपस्वभाव सब से जल्दी बनता है, उसके बाद भूख के आधार पर, उसके बाद यौन या रमणेच्छा के आधार पर, फिर सब से देर में मातृत्व के आधार पर उपस्वभाव बनते हैं।

ऊपर दिये गये पैवलौफ़ तथा उसके शिष्यों के अनुसंधानों के फलस्वरूप मनुष्य-व्यवहार पर जो रोशनी पड़ी है उसका अभिप्राय स्पष्ट है। फ्रायड तथा मार्क्स की तरह पैवलौफ़ के शिष्यों का रुख़ इस ओर नहीं है कि सारे मनुष्य-व्यवहार को एक सहजात से प्राप्त किया जाय। सच बात तो यह है कि यह लोग कई आधारगत सहजातों को एक साथ रहने वाले मान लेने को तैयार हैं। पैवलौफ़ के अनुसार मस्तिष्क क्या है यह यहां स्पष्ट कर दिया जाय। यह एक ऐसी खबरें पाने के स्टेशन की तरह है जहां शरीर के सब हिस्सों से अनवरत धारा में संवेदन पहुंचते रहते हैं। ये संवेदन दो तरह के हैं, उत्तेजक तथा निराकरणार्थक (Excitatory and Inhibitory), इन दोनों में हमेशा क्रीड़ा और संघष हुआ करता है। हम किसी उत्तेजना पर किस प्रकार तिक्रिया करते हैं, यह उस उत्तेजना के साथ संयुक्त उपस्वभाव पर निर्भर है, याने भूतकाल में जिस प्रकार की उत्तेजनाओं का उनसे सम्बन्ध रहा है उस पर। पैवलौफ़ के कथनानुसार यह सारी प्रक्रिया ही स्वयंचालित है। पैवलौफ़ के इन प्रयोगों का मतलब यह है कि हमारे विचार सम्पूर्ण रूप से हमारे मस्तिष्क के

आन्दोलन के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। पैवलौफ़ के प्रयोग इस प्रकार भौतिकवाद को सहारा देते हैं। फ्रायड और मार्क्स के मत भी भौतिकवादी हैं। हम इस विषय पर फ्रायड और मार्क्स के मतों पर विचार करते समय आयेंगे।

अब तक वर्णित तरीकों के अतिरिक्त मनुष्य-व्यवहार के उत्सस्थल तक पहुँचने की और भी चेष्टायें हुई हैं, किन्तु उन पर जाने के पहले हम एक बार फिर पैवलौफ़ पर लोटेंगे और देखेंगे कि नींद तथा परेशानी के सम्बन्ध में वे किस विचार पर पहुँचे। जिस समय पैवलौफ़ अपने जानवरों पर प्रयोग करते थे, उस समय बार-बार ऐसा पाया गया कि जानवर या तो सुस्त हो गये या सो गये इससे पैवलोफ़ की दृष्टि इनके अध्ययन की ओर गई। यह नहीं कि वह विशेष जानवर पहले से ही सुस्त था, उसने शुरू-शुरू के सबक तो चुस्ती से सीखे, किन्तु ज्यों ही बारीक और उससे बारीक चीजों की ओर उसे ध्यान देना पड़ा, त्यों ही वह परेशान नज़र आने लगा, यहाँ तक कि सो गया। इस ओर ध्यान दौड़ाने पर यह भी देखा गया कि कुत्ते के सामने कुछ ऐसा कार्य किया जाय, ऐसी आवाज़ पैदा की जाय जिससे उसे अज्ञातपूर्व अनुभूति हो, साथ ही उसको कोई न तो सुख हो न दुःख हो तो वह सो जाता है। पहले तो ऐसी आवाज़ वगैरह से कुत्ते को कुछ कौतूहल होता है, वह कान खड़े कर लेता है और जिस तरफ से आवाज़ आ रही हो उधर रुख कर लेता है, किन्तु जब कुछ देर तक इस आवाज़ का कोई दिलचस्प नतीजा नहीं होता, तो उसकी दिलचस्पी खत्म हो जाती है। इसको वैज्ञानिक भाषा में Inhibition कहते हैं, याने एक उपस्वाभाविक प्रतिक्रिया का लोप हो जाना। यह कान खड़ा करना तथा सिर का आवाज़ की तरफ रुख करना एक पैदाइशी स्वभाव है, यह ठीक उसी प्रकार की बात है जैसे जलते हुए सिगरेट में हाथ छूते ही हाथ उससे हट जाता

*Guide to Modern Thought by C. E, M. Joad, p. 49-50

प्रतिक्रिया, जो विपत्ति आई है एक तरह से उसके लिए तैयारी है। यह जो भय से हमारा चेहरा पीला पड़ जाता है, हमारे शरीर के ऊपर के हिस्से से रक्त खिंचकर चला जाता है, साथ ही रक्त का प्रवाह बढ़ जाता है, यह सब उसी विपत्ति से सामना करने की तैयारी मात्र है। और जिसको हम भावुकता या संवेदन कहते हैं यह केवल मात्र इन्हीं नये परिवर्तनों की बाहरी छाया मात्र है। यदि देखा जाय इस मतवाद से पैवलौफ़ के उपसंहारों का कोई विरोध नहीं पड़ता।

मनुष्य-स्वभाव सब बातों में पशु-स्वभाव की तरह हो ऐसी बात नहीं। कई बातों में उसके स्वभाव पशु-स्वभाव से प्राकृतिक रूप से कम गुण सम्पन्न पाया जाता है। अमेरिका के डाक्टर जे० बी० वाटसन के अधीन इस विषय में गवेषणायें हुई हैं। इन से यह साबित हो गया कि मनुष्यों में जिन्हें Pattern instincts याने जातिगत सहजात कहते हैं वे बहुत कम हैं। मनुष्येतर प्राणियों में कुछ सहजात ऐसे हैं कि वे विशेष-विशेष परिस्थिति में विशेष तरीके से प्रतिक्रिया करते हैं। एक ऐसे बिल्ली के बच्चे के सामने जो दूसरी बिल्लियों से अलग केवल दूध पर पाला गया है, यदि एक चूहा रक्खा जाय तो उसमें बिल्ली जाति के शिकारकालीन लक्षण प्रकट हो जाते हैं, वह गुर्राने लगता है, उसके रोयें खड़े हो जाते हैं, और अपने स्वाभाविक शिकार को पकड़ने तथा मारने के लिये लपकताहै, मनुष्यों में ऐसी कोई बात क़रीब-क़रीब है ही नहीं। नवजात मनुष्य-शिशु में बस कुछ ही प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं जिनको हम आजन्मजात कह सकते हैं। एक तो वह चूसता है, दूसरा उसे अँगुली या लाठी पकड़ाई जाय तो वह पकड़ लेगा, और यदि यह अँगुली या लाठी छुड़ा ली जाय तो भय के लक्षण प्रदर्शित करेगा, और ऐसा दिखलायेगा मानो वह गिर रहा है। इसके अलावा बहुत जोर की आवाज़

*Ibid, p. 794.

पर वह स्पष्ट भय प्रकट करता है, किन्तु इसके अलावा मनुष्य-शिशु किसी बात से डरता दिखाई नहीं देता। अत्यन्त सावधानी से किये गये प्रयोगों से पता चलता है कि शिशुओं को स्वाभाविक रूप से न तो किसी प्राणी से डर मालूम होता है, न उसके आकार या सूरत से। एक साढ़े पाँच महीने के बच्चे के सामने काली बिल्ली, कबूतर, ख़रगोश, सफेद चूहा तथा एक बड़े कुत्ते का प्रयोग किया गया, तो उसने छोटे जानवरों को तो पकड़ना चाहा, और बड़े कुत्ते की ओर निर्भय दिलचस्पी से देखता रहा। जब एक सप्ताह के बाद उसे चिड़ियाखाने में ले जाया गया तो ऊँट, भालू, जेब्रा, शुतुरमुर्ग के बिल्कुल करीब ले जाने पर उसने किसी प्रकार का भय प्रदर्शित नहीं किया। यहां तक कि जब एक बन्दर ने डरावने तरीके से मुंह बनाया तो भी उसको भय नहीं लगा। एक साढ़े सात महीने के बच्चे पर जब प्रयोग किये तो ये ही नतीजे हुए। इसी प्रकार दिखलाया जा सकता है कि बच्चे आग का भय लेकर पैदा नहीं होते। इसके साथ ही मनुष्य-शिशु में किसी चीज़ को पकड़ने-मारने का सहजात नहीं होता, जैसे बिल्ली के बच्चे में चूहे मारने का सहजात होता है। मनुष्य-शिशु को यह सीखना पड़ता है कि वह किस बात से बचे और किस बात से डरे। जो कुछ भी पास पाता है उसे पकड़कर मुंह में लगाने की उसकी प्रवृत्ति होती है, फिर स्वभाव का निर्वाचनात्मक निराकरण (Selective inhibition) प्रक्रिया से वह जानना चाहता है कि क्या ग्राह्य हैं और क्या त्याज्य हैं?*

मनुष्य-शिशु के व्यवहार के सम्बन्ध में किये गये इन प्रयोगों से पता लगता है कि मनुष्य-व्यवहार पशु-व्यवहार से कहीं बढ़कर उपस्वाभाविक प्रतिक्रियाओं का समूह है।

पहले वैज्ञानिक तरीके से सोचने के अभ्यस्त लोग सम्मोहन या Hypnotism को मनुष्य-व्यवहार के अन्तर्गत मानते ही नहीं थे।

*Ibid, p 788

प्रतिक्रिया, जो विपत्ति आई है एक तरह से उसके लिए तैयारी है। यह जो भय से हमारा चेहरा पीला पड़ जाता है, हमारे शरीर के ऊपर के हिस्से से रक्त खिंचकर चला जाता है, साथ ही रक्त का प्रवाह बढ़ जाता है, यह सब उसी विपत्ति से सामना करने की तैयारी मात्र है। और जिसको हम भावुकता या संवेदन कहते हैं यह केवल मात्र इन्हीं नये परिवर्तनों की बाहरी छाया मात्र है। यदि देखा जाय इस मतवाद से पैवलौफ़ के उपसंहारों का कोई विरोध नहीं पड़ता।

मनुष्य-स्वभाव सब बातों में पशु-स्वभाव की तरह हो ऐसी बात नहीं। कई बातों में उसके स्वभाव पशु-स्वभाव से प्राकृतिक रूप से कम गुण सम्पन्न पाया जाता है। अमेरिका के डाक्टर जे० बी० वाटसन के अधीन इस विषय में गवेषणायें हुई हैं। इन से यह साबित हो गया कि मनुष्यों में जिन्हें Pattern instincts याने जातिगत सहजात कहते हैं वे बहुत कम हैं। मनुष्येतर प्राणियों में कुछ सहजात ऐसे हैं कि वे विशेष-विशेष परिस्थिति में विशेष तरीके से प्रतिक्रिया करते हैं। एक ऐसे बिल्ली के बच्चे के सामने जो दूसरी बिल्लियों से अलग केवल दूध पर पाला गया है, यदि एक चूहा रक्खा जाय तो उसमें बिल्ली जाति के शिकारकालीन लक्षण प्रकट हो जाते हैं, वह गुर्राने लगता है, उसके रोयें खड़े हो जाते हैं, और अपने स्वाभाविक शिकार को पकड़ने तथा मारने के लिये लपकता है, मनुष्यों में ऐसी कोई बात क़रीब-क़रीब है ही नहीं। नवजात मनुष्य-शिशु में बस कुछ ही प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं जिनको हम आजन्मजात कह सकते हैं। एक तो वह चूसता है, दूसरा उसे अँगुली या लाठी पकड़ाई जाय तो वह पकड़ लेगा, और यदि यह अँगुली या लाठी छुड़ा ली जाय तो भय के लक्षण प्रदर्शित करेगा, और ऐसा दिखलायेगा मानो वह गिर रहा है। इसके अलावा बहुत ज़ोर की आवाज़

*Ibid, p. 794.

पर वह स्पष्ट भय प्रकट करता है, किन्तु इसके अलावा मनुष्य-शिशु किसी बात से डरता दिखाई नहीं देता। अत्यन्त सावधानी से किये गये प्रयोगों से पता चलता है कि शिशुओं को स्वाभाविक रूप से न तो किसी प्राणी से डर मालूम होता है, न उसके आकार या सूरत से। एक साढ़े पाँच महीने के बच्चे के सामने काली बिल्ली, कबूतर, ख़रगोश, सफेद चूहा तथा एक बड़े कुत्ते का प्रयोग किया गया, तो उसने छोटे जानवरों को तो पकड़ना चाहा, और बड़े कुत्ते की ओर निर्भय दिलचस्पी से देखता रहा। जब एक सप्ताह के बाद उसे चिड़ियाखाने में ले जाया गया तो ऊँट, भालू, जेब्रा, शुतुरमुर्ग के बिल्कुल करीब ले जाने पर उसने किसी प्रकार का भय प्रदर्शित नहीं किया। यहां तक कि जब एक बन्दर ने डरावने तरीके से मुंह बनाया तो भी उसको भय नहीं लगा। एक साढ़े सात महीने के बच्चे पर जब प्रयोग किये तो ये ही नतीजे हुए। इसी प्रकार दिखलाया जा सकता है कि बच्चे आग का भय लेकर पैदा नहीं होते। इसके साथ ही मनुष्य-शिशु में किसी चीज़ को पकड़ने-मारने का सहजात नहीं होता, जैसे बिल्ली के बच्चे में चूहे मारने का सहजात होता है। मनुष्य-शिशु को यह सीखना पड़ता है कि वह किस बात से बचे और किस बात से डरे। जो कुछ भी पास पाता है उसे पकड़कर मुंह में लगाने की उसकी प्रवृत्ति होती है, फिर स्वभाव का निर्वाचनात्मक निराकरण (Selective inhibition) प्रक्रिया से वह जानना चाहता है कि क्या ग्राह्य है और क्या त्याज्य है?*

मनुष्य-शिशु के व्यवहार के सम्बन्ध में किये गये इन प्रयोगों से पता लगता है कि मनुष्य-व्यवहार पशु-व्यवहार से कहीं बढ़कर उपस्वाभाविक प्रतिक्रियाओं का समूह है।

पहले वैज्ञानिक तरीके से सोचने के अभ्यस्त लोग सम्मोहन या Hypnotism को मनुष्य-व्यवहार के अन्तर्गत मानते ही नहीं थे।

*Ibid, p 788

इसको रहस्यमय लक्षणों की श्रेणी में डाल दिया गया था, किन्तु अब इसको मान लिया गया है, और सम्मोहित व्यक्ति के व्यवहार को समझने की वैज्ञानिक चेष्टा हो रही है। जानवरों को किस प्रकार सम्मोहित कर दिया जा सकता है, यह तो सुपरिचित है। साँप को एक खास जगह से पकड़ने पर उसकी सारी वृत्तियां निर्जीव हो जाती हैं, यह तो भारतवर्ष के सपेरे जानते हैं। कुत्तों को जिस प्रकार सम्मोहित किया जा सकता है उसका एक तरीका यह है कि एक कुत्ते को धीरे-धीरे इस बात का अभ्यस्त किया जाय कि घंटी बजने के ठीक तीन मिनट बाद उसके पास खाना पहुंचाया जाय। जब इस प्रकार उसका उपस्वभाव बन जायगा तो देखा जायगा कि घंटी बजते ही उसके हाथ-पैर ऐंठ जाते हैं, और वह निर्जीव होकर सो-सा जाता है, ठीक समय पर वह जाग उठता है, और उसके मुंह से लार टपकने लगती है। तो यह जो वह दो मिनट तक या उससे अधिक समय तक निर्जीव पड़ा रहा, वह एक तरह का सम्मोहन था। कुत्ता घंटी की आवाज़ से निश्चित समय तक सम्मोहित था। इस प्रकार स्वभाव या उपस्वभाव के निराकरण से सम्मोहन का सम्बन्ध स्थापित हो जाता है।

मनुष्य को सम्मोहन करने का जो साधारण तरीका प्रचलित है उसका Science of Life में जो वर्णन है उसको यहाँ उद्धृत करते हैं। "जिसको सम्मोहन किया जायगा उससे कहा जाता है कि वह किसी कुर्सी पर शिथिल होकर पीठ लगाकर लेट जाय। ऐसा कर लेने पर सम्मोहक उससे धीरे किन्तु दृढ़ स्वर से नींद के विविध लक्षणों का उल्लेख करते हुए, जैसे आलस्य, आंख कड़वाना, अंगों तथा पलकों का भारीपन, आराम की हालतों, शिथिलता आदि की बातचीत करता जाता है। इसके साथ ही बैठे हुए व्यक्ति के अंगों को मृदु थपकी देता है, और उसके चेहरे के सामने से हाथ उसको बिना छुए इधर से उधर ले जाता है जिसे पास देना कहते हैं। पहले ऐसा समझा जाता था कि इस प्रक्रिया के द्वारा सम्मोहक उस व्यक्ति में जैव चुम्बक

मन (Animal magnetism) की धारा प्रवाहित कर देता है, किन्तु अब ज्ञात होता है कि इस रहस्यमय तरल पदार्थ का कोई अस्तित्व नहीं माना जा सकता है, और यह थपकियाँ तथा हाथों का आन्दोलन केवल अपनी तालयुक्त इकरसता (Rhythmic monotony) से क्रियाशील होता है। कुछ समय के उपरान्त वह व्यक्ति देखता है कि उसके अंग भारी हो रहे हैं, वह उन्हें हिलाने की इच्छा अनुभव नहीं करता, कुछ देर बाद ऐसा होता है कि इच्छा करने पर भी वह उन्हें हिला नहीं सकता। यहाँ तक कि सम्मोहक उसे चुनौती दे तो भी वह हिला नहीं सकता। इसके बाद उसके अंग कड़े हो जाते हैं, और बाद को जब कि सम्मोहन और गहरा हो जाता है, तब वह एक अजीब हालत में हो जाता है कि चाहे उसको जिस हालत में कर दिया जाय, चाहे वह कितना ही उपहासास्पद हो, उसी हालत में रहेगा। यह हालत एक अनिश्चित काल तक रह सकती है। यदि उस व्यक्ति को अब जगाया जाय तो वह अपनी पूरी अभिज्ञता बयान कर सकेगा, किन्तु यदि इस प्रयोग को और अधिक समय तक चलाया जाय तो वह स्वप्नहीन निद्रा की भांति एक ऐसी अवस्था में चला जायगा जहां से लौटने पर भी वह कुछ स्मरण कर कह न सकेगा। फिर भी उसकी यह जो हालत है, वह निद्रा से एक अत्यन्त महत्वपूर्ण तरीके से विभिन्न है। वह यह कि इस हालत में वह सारी दुनिया से अलग तो है किन्तु सम्मोहक के साथ उसका सम्बन्ध बरकरार है। आसपास वाले चाहे जितना ही चिल्लाकर उसे कुछ भी कहें या शोर करें, वह उनकी कुछ भी परवाह नहीं करता, किन्तु सम्मोहक की धीरे-धीरे कही गई बातों से वह परिचालित होता है।"*

वैज्ञानिक रूप से किये जाने पर भी इन प्रयोगों में यह देखा गया कि सम्मोहित के ऊपर सम्मोहक की शक्ति तथा नियन्त्रण अद्भुत होता है। "उदाहरण-स्वरूप वह सम्मोहित को आदेश (Suggest) कर

*Ibid, p. 794.

सकता है कि उसका अँगूठा दुःखबोधहीन होगा, किन्तु छोटी अँगुली अत्यन्त दुःखानुभूतिशील होगी, तो ऐसा ही होगा। इसके बाद यदि उसके अँगूठे में सुई भी चुभो दी जाय तो उसे कुछ भी पता न लगेगा, किन्तु छोटी अँगुली में सुई छुआते ही वह कष्ट से अँगुली हटा लेता है। एक या दोनों आँखों से अन्धे होने का उसे आदेश दिया जा सकता है, या उसे कहा जा सकता है कि उसका फलाना अंग पक्षाघातग्रस्त हो जाय। सबसे आश्चर्य की बात है कि केवल आदेश देकर कुछ सम्मोहितों के खास अंग में फफोले पड़ाये जा सकते हैं, या उसके शरीर का उत्ताप बढ़ाया या घटाया जा सकता है। ये सब काम ऐसे हैं जो जाग्रत अवस्था में भी व्यक्ति की इच्छा के परे होते है, इसलिए इस प्रकार होना और भी आश्चर्यजनक है।"

सम्मोहित अवस्था में सम्मोहित को ऐसा आदेश दिया जा सकता है कि वह फलांने समय पर फलाना काम करे, वह ऐसा ही करेगा। ऐसा देखा गया है कि सम्मोहन के एक साल बाद भी सम्मोहित ने ऐसी आज्ञा का पालन किया।

इन प्रयोगों के सिलसिले में मनुष्य-व्यवहार की एक खास दिशा पर बहुत महत्वपूर्ण रोशनी पड़ी है। अक्सर यह कहा जाता है कि फलाने व्यक्ति ने अपने काम के लिए जो कारण बतलाया वह सही कारण नहीं था, उसके मन में कुछ और कारण था। यह तो ढोंग की बात हुई। इसका तो विश्लेषण कुछ कठिन नहीं। हरेक आदमी अपनी बुद्धि के अनुसार ऐसी बातों का रोज के व्यवहार में थोड़ा-बहुत विश्लेषण कर लेता है। किन्तु मामला कठिन तो तब आकर पड़ता है जब कि एक आदमी अपने अनजान में किसी दूसरे उद्देश्य से ही परिचालित हो रहा है, किन्तु जब वह उस काम को करने लगता है तो उस पर एक उद्देश्य लादकर उसका बौद्धिकीकरण कर देता है।

---

*Ibid,

डाक्टर अर्नेस्ट जोन्स ने* लिखा है कि यदि एक व्यक्ति से पूछा जाय कि तुम फलां तरफ आज टहलने क्यों गये तो वह झट बता देगा कि उसकी इच्छा ऐसी हुई थी, किन्तु असली बात उसकी आदत, परिस्थिति तथा अन्य कारण होंगे। उदाहरणस्वरूप, यदि किसी व्यक्ति से पूछा जाय कि वह कड़ा कालर (Stiff collar) या टाई क्यों लगाता है, तो वह अवश्य ही कह देगा कि यह प्रश्न अजीब है, यद्यपि यदि वह टंग के मिज़ाज में हो तो वह शायद यह कहकर प्रश्नकर्त्ता को समझाने के लिये तैयार हो जायगा कि वह गरम रहने के लिये या शरीफ़ मालूम पड़ने के लिए ऐसा करता है।

सम्मोहन की अवस्था में ऐसा अक्सर हुआ है कि जब सम्मोहित आदेश के अनुसार काम करता है, तो वह उस कार्य का बौद्धिकीकरण (Rationalisation) कर लेता है। जैसे एक सम्मोहित से सम्मोहक ने कहा, "खिड़कियाँ खोल लो।" इस पर उसने खिड़कियों को खोलते हुए कहा "बड़ी गर्मी है, है न ?" असली बात यह थी कि वहां बिल्कुल गर्मी नहीं थी।† इस प्रयोग से मनुष्य-व्यवहार पर जो रोशनी पड़ती है, वह बहुत ही मार्मिक है। विचारधारायें किस प्रकार बनती हैं, उस पर भी इससे प्रचुर आलोकपात होता है। मार्क्स का कहना है कि विचारधारायें उत्पादन-प्रणाली से उत्पन्न होती हैं, फ्रायड का कहना है यौन-अनुभूति (Sex) से। हम इस पर बाद को विचार करेंगे।

सम्मोहन की प्रतिक्रिया के विश्लेषण से एक और बात का पता लगता है जो मनुष्य-व्यवहार के सही मूल्य-निर्णय के लिए बहुत जरूरी है। वह यह कि सम्मोहन में मालूम होता है सम्मोहित का व्यक्तित्व द्विधा-विभक्त हो जाता है, जिसे वैज्ञानिक भाषा में वियुक्ति (Disso-

*In 'An Outline of Psychoanalysis' edited by J. S Van Tesslar, p. 102. †Ibid, p. 794.

ciated) कहेंगे।" उसके व्यक्तित्व का वह हिस्सा जिसका सम्बन्ध सम्मोहक के साथ क़ायम रहता है, वह उसके बाक़ी व्यक्तित्व से सम्बन्धहीन हो जाता है। हमने जो उदाहरण दिया है कि सम्मोहन की अवस्था ख़त्म हो जाने पर भी उस दौरान में दिये गये आदेश का पालन होता रहता है, उससे यह स्पष्ट है कि व्यक्तित्व का यह विभाजन सम्मोहन से मुक्ति के बाद भी क़ायम रहता है। मन के यह द्विधा-विभक्त भाग इस अर्थ में द्विधा-विभक्त हैं कि वे अलग-अलग यहां तक कि एक दूसरे के विरुद्ध क्रियाशील रह सकते हैं, और एक के चैतन्य तथा दूसरे के चैतन्य में व्यवधान है। एक दूसरे के विषय मे अनभिज्ञ होते हुए भी वे एक दूसरे के ऊपर असर पैदा करते हैं।"* इस प्रकार व्यक्तित्व का विभाजन स्पष्ट है, किन्तु अभी इसके विषय में खोज जारी है। हमारी खोज की इस असम्पूर्णता का फ़ायदा उठाकर कुछ लोग रहस्यवाद में या ईश्वर में ले जाना चाहते हैं, किन्तु यह अपचेष्टामात्र है क्योंकि जितनी भी बातों का पता लगता जा रहा है वे सब भौतिक ही हैं। हमें इस अवचेतन (Subconscious) के जगत से जितनी भी आवाज़ आती है, वे सब भौतिक ही है। Hypnosis या सम्मोहन की प्रक्रिया एक भौतिक प्रक्रिया है। इसी सम्मोहन की अवस्था में हम उस जगत का पता पाते हैं जिसे रहस्यवादी मनोवैज्ञानिक अवचेतन कहते हैं। एच० जी० वेल्स, जुलियन हाक्सले तथा जी० पी० वेल्स ने इस अवचेतन की चार प्रधान वास्तविकतायें गिनाई हैं—(१) ऊपरी मानसिक वस्तु, जिससे हम सामयिक रूप से दूर हैं, (२) शरीर के अन्दर की स्नायविक क्रियायें, (३) अपरिदर्शित द्रव्य, और (४) स्मृतियों का कूड़ाखाना इसके अलावा जिन बातों को हम जान-बूझकर भूल जाते हैं, वे भी एक विभाग हैं। ये बातें ऐसी हैं जिन्हें हम याद रखना अवाञ्छनीय समझते हैं। इन विद्वानों के मतानुसार भूल जाना केवल एक निष्क्रिय Passive प्रक्रिया मात्र

*Ibid, p. 195.

नहीं है। कभी-कभी यह एक सक्रिय प्रक्रिया होती है। "ऐसी कई बातें होती हैं जिनके विषय में हम सोचना न तो सहन कर सकते हैं, न सोचने की हिम्मत कर सकते हैं, न सोचेंगे। ऐसी हालत में वे हमारे विचारों के बाहर चले जाते हैं। इस प्रकार से जिन विचारों तथा संवेदनों को हम जान-बूझकर निर्वासन देते हैं, उनका हम दमन करते हैं। हमारे बहुत से आदिम संवेदनों को इस प्रकार दमन कर दिया गया है। फ्रायड ने Ego and the Id में कहा है, साधारण आदमी इतना अनैतिक है जितना उसे ज्ञान नहीं है, और जिसे वह विश्वास नहीं करेगा, किन्तु साथ ही वह इतना नीतिवादी है जिसका उसे भान नहीं।" गेटे ने फ्रायड से बहुत पहले ही इस बात को यों कहा था, "तुम यदि अपने सबसे प्यारे दोस्त के गुप्ततम विचार को जान जाओ तो तुम उससे घृणा करने लगो। बाबू भगवानदास ने Science of Emotions में इस बात को उद्धृत करते हुए, उसके उत्तरार्द्ध को यों लिखा है. "तुम यदि अपने सबसे घृणित शत्रु के गुप्तम विचारों से परिचित हो जाओ तो तुम उसकी पूजा करने लग जाओ।" इस प्रकार मनुष्य-स्वभाव में दो स्वभाव साथ-साथ चलते रहते हैं। एक आदमी अच्छा है भी, नहीं भी है, बुरा है भी, नहीं भी है आपको प्यार करता है, नहीं भी करता है। ऐसे व्यवहार का कारण क्या है इस पर Behaviourist या प्रयोगवादी मनोवैज्ञानिक विशेष नामों का प्रयोग नापसन्द करता है। "उसे इस बात में कोई भी दिक्कत न होगी कि वह मान ले कि किसी हिस्से का Inhibition या निराकरण असम्पूर्ण हुआ होगा, और स्नायविक प्रतिक्रियाओं की एक गौण प्रणाली पैदा होकर काम में आई होगी और प्रचलित प्रणाली के साथ आकर मिल गई होगी या उसके साथ संघर्ष हुआ होगा। या ऐसा हुआ होगा, कि प्रतिक्रियाओं की प्रचलित प्रणाली विभिन्न प्रणालियों में विभक्त हो गई होगी और उन नई प्रणालियों में बराबर आदान-प्रदान घटता गया होगा, या रहा ही नहीं होगा। इस प्रकार से जो चीजें अभी समझ में नहीं आती-सी मालूम हो रही हैं, उनकी व्याख्या की जा

सकती है।* कहना न होगा यह सारी व्याख्या भौतिक है, और इसमें आत्मा वगैरह की बात को ले आना व्यर्थ है।

मार्टन प्रिन्स ने द्विधा-विभक्त व्यक्तित्व की बहुत दिलचस्प खोज की है। डाक्टर प्रिन्स ने यह दिखलाया कि एक व्यक्ति के अन्दर दो व्यक्ति हो सकते हैं, जो एक दूसरे से विभिन्न ही नहीं, परस्पर विरुद्ध हो सकते हैं। ऐसा हो सकता है कि व्यक्ति पहले प्रथम व्यक्तित्व का जीवन व्यतीत करे। फिर कुछ अर्से के बाद बिल्कुल ही दूसरे व्यक्तित्व का जीवन व्यतीत करे। हम इस सन्दर्भ में इसके ब्यौरे में नहीं जा सकते, हमारे मतलब के लिये इतना ही यथेष्ट है कि मनुष्य-व्यवहार में इस उपादान को समझ लें। डाक्टर प्रिन्स ने अपनी खोज के लिये मुख्यतः सम्मोहन से काम लिया है, इसलिये बहुत से लोग उनकी खोजों पर पूर्ण विश्वास नहीं करते, किन्तु जो कुछ भी हो इसके मान लेने में कोई हर्ज नहीं कि मनुष्य के आचरण में दो विभिन्न धारायें होती हैं।

मनुष्य-व्यवहार की आलोचना करते समय हमने अभी सम्मोहन की आलोचना की; इसी से मिलता-जुलता मनुष्य का स्वप्न-जगत है। १७७० के करीब जोसेफ ब्रायर का ध्यान इस बात की ओर गया कि कुछ स्नायविक रोगियों के लक्षणों में स्वप्न भी अर्थ रखता है, इसके पहले स्वप्नों को कोई वास्तविक महत्व प्राप्त नहीं था। हाँ, पुराने जमाने के राजाओं के दरबारों में स्वप्नों की व्याख्या करने वाले होते थे। प्रत्येक देश की पौराणिक कथाओं में स्वप्न-विशेषज्ञों की कथाओं की भरमार है। सिकन्दर के विषय में बराबर मालूम होता है कि विशेष-विशेष लड़ाई के पहले वह स्वप्न विशेषज्ञों की सलाह ले लेता था। 'मध्ययुग में यह सरल धारणा प्रचलित थी कि स्वप्न में स्वर्ग और नरक में तथा खुदा और शैतान में संघर्ष चला करता है।

*Ibid, p. 797.

यह देवासुर-संग्राम सदा से मनुष्यों की कल्पना के लिये एक प्रशस्त क्षेत्र प्रदान करता रहा। अय्यूब (Job) और ईसा से लेकर फौस्ट और पर्सिफाल तक कितने ही कवित्वपूर्ण चरित्र इस धारणा से उत्पन्न हैं।'* इस प्रकार स्वप्न को बिलकुल अर्थहीन तो किसी ज़माने में भी नहीं समझा जाता था। रहा यह कि इसके अर्थ को कोई सर्वजनग्राह्य नहीं समझता था। स्पष्ट है कि जब हमारी की हुई लिखने, बोलने तथा पढ़ने की ग़लतियों का अर्थ हो सकता है, तब स्वप्नों का क्यों न अर्थ निकाला जाता। "किन्तु फिर भी ग़लतियों में और स्वप्नों में एक प्रधान भेद यह है कि ग़लतियां फिर भी हमारी जाग्रत अवस्था के कार्य हैं, किन्तु जिस समय मनुष्य सो चुका है, और उसने अपनी सारी मानसिक क्रियायें स्थगित कर दी हैं, याने केवल वे ही मानसिक क्रियायें बाकी रह गई हैं जिनके ऊपर उसे कोई नियन्त्रण नहीं प्राप्त है। इस हालत में साधारण तौर पर यही समझ में आता है कि इन का कोई अर्थ शायद न हो।†" स्वप्नों को हम इस प्रकार की बातों द्वारा उड़ा देना चाहें तो भी स्वप्न होते ही हैं, और यदि हम उनको पहले ही कार्य-कारण सम्बन्ध से परे न मानकर चलें तो यह भी मानना पड़ेगा कि उनके कुछ उत्तेजक कारण होंगे। शायद कुछ उत्तेजनायें ऐसी हैं जो सोने पर भी मन का पीछा नहीं छोड़ती हैं। इतना यदि हम मान लें तो फिर स्वप्नों को समझने में आसानी हो सकती है। इसके बाद इसका निर्णय करना रह जाता है कि कौन से ऐसे कारण हैं जो स्वप्नों के लिये उत्तेजक सिद्ध होते हैं।

---

*The meaning of the dream symbolism by Dr. Wilhelm W. Stekel in an Outline of Psychoanalysis by Tesslar, p. 156.

†Introductory lectures on Psychoanalysis by Freud, p. 73.

उत्तेजना से कुछ स्वप्नों का सम्बन्ध तो स्पष्ट हो ही जाता है। फ्रायड ने लिखा है कि १७६१ में शेर्नर (Scherner) ने ज़ोरदार तरीके से इन्द्रियगत उत्तेजना से स्वप्नों का उद्भव बतलाया था। इन कारणों से हमें यह बात मान लेनी चाहिए कि बाहरी उत्तेजनाओं की तरह भीतरी उत्तेजनाओं से भी स्वप्न बनते हैं। सब स्वप्न नहीं, कुछ स्वप्न तो अवश्य ही भीतरी उत्तेजना से बनते हैं, किन्तु इससे भी सारा प्रश्न हल नहीं होता। जैसे बाहरी उत्तेजना से पूरे स्वप्न की व्याख्या नहीं होती, उसी प्रकार भीतरी उत्तेजना के बाद भी स्वप्न का बाकी हिस्सा बिना व्याख्या के ही रह जाता है।

ऊपर के उपसंहारों तक पहुँच जाने के बाद फ्रायड इस ओर हमारी दृष्टि ले जाते हैं कि स्वप्न में उत्तेजक कारण परिवर्तित होकर अन्य लवाज़मात के साथ प्रकट होता है। इस प्रकार स्वप्न में केवल उत्तेजक कारण प्रकट ही नहीं होता है, बल्कि वह अपने चारों तरफ एक कहानी गढ़कर इकट्ठा कर लेता है, उस में अपने को जोड़कर फिट कर देता है, या अपने को बदलकर कुछ न कुछ कर देता है। इस सम्बन्ध में एक सवाल यह भी उठता है कि स्वप्न में जो कुछ होता है वह दिखाई देता है, किन्तु दृष्टिसम्बन्धी तन्तुओं पर कोई खास उत्तेजक कारण असर करता होगा ऐसा तो ज्ञात नहीं होता। फिर हम स्वप्न में अक्सर बातचीत भी करते हैं, तो उसका उत्तेजक कारण के रूप में क्या यह दिखलाया जा सकता है कि इसके पीछे उत्तेजक कारण के रूप में कोई शब्द था। फ्रायड ने इस संभावना को बिना किसी सोच-विचार के ही परित्याग कर दिया।*

तो केवल उत्तेजक कारणों से स्वप्नों को पूर्ण रूप से समझा नहीं जा सकता। कुछ स्वप्न तो तुरन्त समझ में आ जाते हैं, क्योंकि उनमें रोजमर्रे की घटित घटना की पुनरावृत्ति मात्र होती है, किन्तु कौनसा स्वप्न

Ibid, p. 78.

पुनरावृत्ति मात्र है, और कौनसा नहीं है यह तो स्वप्न देखनेवाले से पूछने पर ही पता लग सकता है। इस उपाय से भी आगे बढ़ने में बड़ी दिक्कतें हैं, क्योंकि अक्सर स्वप्न देखने वाला कह देता है उसे कुछ नहीं मालूम, तो उस समय बड़ी आफ़त होती है। इस पर फ्रायड का कहना है कि बात ऐसी नहीं है जैसी स्वप्नद्रष्टा समझता है स्वप्न देखनेवाला स्वप्न का अर्थ जानता है, किन्तु वह जानता नहीं है कि वह ऐसा जानता है, और इस कारण सोचता है कि वह नहीं जानता है। मोहनिद्रा में (hypnosis) जो घटनायें घटित होती हैं वह भी इसी प्रकार व्यक्ति को याद नहीं रहती, किन्तु क्रमशः याद दिलाने पर यह याद आती है। फिर यह भी बात इस सम्बन्ध में सोचने योग्य है कि किसी एक शब्द का उच्चारण करते ही विभिन्न व्यक्तियों में विभिन्न विचारधारा चल निकलती है। इस प्रकार एक ही वस्तु से उत्पत्ति होने पर भी विभिन्न व्यक्तियों में स्वप्न विभिन्न हो सकते हैं। इस प्रभेद का भी कोई कारण होगा। वुन्ड नामक मनोवैज्ञानिक के नये तरीके की सृष्टि इसी विचार-साहचर्य के प्रयोग से हुई। इसमें प्रयोग के लिए चुने गये व्क्ति के सामने एक उत्तेजक शब्द कहा जाता है और उससे कहा जाता है कि वह जल्दी से जल्दी उन सब शब्दों को तथा विचारों को कह जाय जो इसके सुनने से उसके मन में आते हैं। इस प्रक्रिया में इस बात को नोट किया गया कि उत्तेजक-शब्द से कितनी देर बाद प्रतिक्रिया शब्द आया, प्रतिक्रिया शब्द की प्रकृति क्या है और उस प्रयोग की पुनरावृत्ति में क्या ग़लती होती है इत्यादि। इस प्रकार के विचार-साहचर्य के प्रयोगों का स्वप्नों के विश्लेषण के साथ सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है।

इस स्थान पर स्वप्नों के सम्बन्ध में पूरी आलोचना हम करें तो वह

---

*Ibid, p. 90.

अप्रासंगिक होगी। हमने दिखला दिया कि स्वप्न भी मनुष्य-व्यवहार के अन्तर्गत है, और वह भी कार्यकारण सम्बन्ध से बँधा हुआ है इतना ही हमारे वर्त्तमान मतलब के लिए काफ़ी है। हमने यह भी दिखला दिया कि स्वप्न का कारण भौतिक है, उसमें कुछ आध्यात्मिक नहीं है।

९

मनुष्य-व्यवहार की प्रधान व्याख्यायें

मनुष्य-व्यवहार का प्राथमिक उत्स क्या है इस सम्बन्ध में पहले की गई आलोचना से इतना तो स्पष्ट हो गया कि उसके कारण भौतिक हैं। हम जिन दो मतवादों की इस अवसर पर विशेषकर आलोचना करेंगे, स्मरण रहे कि इन दोनों में से एक भी आध्यात्मिक नहीं है। दोनों मनुष्य-व्यवहार के उत्सस्थल को भौतिक कारणों से ही खोजते हैं। इसलिए जो अध्यात्मवादीगण मार्क्सवाद के विरुद्ध फ्रायड के मतवाद को पेश करके खुश होते हैं कि मार्क्सवाद का खूब जवाब निकला उनको खुश होने का कोई कारण नहीं ज्ञात होता, क्योंकि प्रजनन-इच्छा, यौन आकर्षण (Sex) जिससे फ्रायड सब भावों को प्राप्त करते हैं वह मार्क्स वर्णित उत्पादन के साधनों से कहीं भद्दे रूप से भौतिक है। मार्क्सवाद के विरुद्ध विद्वेष भले ही किसी अध्यात्मवादी को फ्रायड के मतवाद को तरजीह दे, किन्तु यह तरजीह मूर्खतापूर्ण है। पैव-लौफ़ के कुछ शिष्य जो यह समझते हैं कि जिन उपस्वाभाविक प्रतिक्रियाओं (Reflexes) का वे कुत्तों में अध्ययन करते हैं, उनसे वे सब युद्धों, क्रांतियों, वर्गसंघर्षों तथा एक श्रेणी के लोगों के ऊपर दूसरी श्रेणी के शासन की व्याख्या की जा सकती है,* यह भी कोई अध्यात्मवाद नहीं है, बल्कि इसमें तो कहीं मन के उस खूंटे का पता भी नहीं है, जिसके बल पर वे अलगें मरा करते हैं।

फ्रायड के मतवाद के अनुसार जो सेक्स यौन-प्रवृत्ति (Sex) हमारी सारी क्रियाओं की पश्चाद्भूमि में है, उसको बहुत विस्तृत अर्थ में ही हम यौन-इच्छा

*Dialectical Materialism by M. Shiropov; p. 331.

कह सकते हैं। फ्रायड ने स्वयं यौन-प्रवृत्ति की बहुत साफ़ परिभाषा नहीं की। वे कहते हैं, "Sexual शब्द का क्या अर्थ है इस सम्बन्ध में किसी को क्या सन्देह हो सकता है? सबसे पहले तो इसका मतलब नाजायज़ लिया जाता है, याने ऐसा जिसका उल्लेख करना निषिद्ध है। मुझे एक प्रसिद्ध मनोरोगचिकित्सक के शिष्यों के विषय में बताया गया है कि उन्होंने अपने शिक्षक को यह समझाने की चेष्टा की कि अपस्मार (Hysteria) के लक्षणों में प्रायः मैथुनात्मक वस्तुओं का प्रकाश होता है। इस बात को समझाने के लिए वे अपने शिक्षक को अपस्मार रोगी को रोगिणी के पास ले गये और निःसन्देह रूप से दिखला दिया कि उसके अंग-संचालन प्रसव-क्रिया का अनुकरण मात्र हैं। शिक्षक ने कहा, 'प्रसव-क्रिया में मैथुनात्मकता क्या है?' सच बात तो है, प्रसव-क्रिया हमेशा नाजायज़ ही नहीं होती। मैं समझता हूं कि आप इतने गम्भीर विषय पर हमारा मज़ाक करना पसन्द न करेंगे। मैं यह बता देना चाहता हूं कि मैं कोई सरासर मज़ाक नहीं कर रहा हूं। गम्भीरतापूर्वक मैथुनात्मक (Sexual) शब्द के अन्दर क्या-क्या बात आती है यह कहना मुश्किल है। पुरुष और स्त्री के लिंगों के बीच जो प्रभेद है उनसे सम्बन्धित क्रियाओं को शायद मैथुनात्मक कहना कुछ ठीक होगा, किन्तु आलोचना करने पर ज्ञात होगा कि यह एक बहुत ही आम तथा अनिश्चित परिभाषा होगी। यदि मैथुन को मध्यम बिन्दु करके मान लिया जाय, तो मैथुनात्मक शब्द में वे सब क्रियायें आ जायेंगी जिनके द्वारा हम विरुद्ध लिंग (Opposite sex) युक्त व्यक्ति के शरीर से या विशेष कर उसके मैथुन के अंगों से आनन्द प्राप्त करें, याने संकुचिततम अर्थ में, वे सब बातें जो जननेन्द्रियों के सम्मेलन से या मैथुन-क्रिया से सम्बन्ध रखते हैं। किन्तु ऐसा करते हुए आप मैथुनात्मक और नाजायज़ को एक क़रार देते हैं, उस हालत में प्रसव-क्रिया इस परिभाषा के अन्दर न आयेगी। फिर दूसरी तरफ़ यदि आप प्रजनन को मैथुनात्मकता (Sexuality) का मुख्य भाग

मानेंगे तो उस हालत में आपको बहुत-सी क्रियाओं को जैसे हस्तक्रिया, यहाँ तक कि चुम्बन को मैथुनात्मक क्रिया के दायरे से निकाल देना पड़ेगा, किन्तु ये क्रियायें निश्चयात्मक तरीके से मैथुनात्मक हैं। ख़ैर, हमने यह पा लिया कि परिभाषा करने की चेष्टा से दिक्कतें पैदा होती हैं, इस विषय में इससे अच्छी परिभाषा करने की चेष्टा हम छोड़ दें। मैथुनात्मक शब्द की धारणा को कुछ ऐसा हो गया है कि इस शब्द की हालत वैसी हो गई है जिसे एच ज़िलबरर (H. Silberer) बहुत सुन्दर रूप से Covering error या भूल का ढक्कन कहते हैं। सच बात तो यह है हम मोटे तौर पर अच्छी तरह जानते हैं कि Sexual मैथुनात्मक शब्द का क्या अर्थ है।"*

ऊपर जो कुछ कहा गया उससे केवल इतना पता चला कि फ्रायड मैथुनात्मक शब्द की परिभाषा करते हिचकते हैं। यह बात उनके लिए स्वाभाविक है क्योंकि फ्रायड के अनुसार शिशु का भी मैथुनात्मक जीवन होता है। फ्रायड कहते हैं, "यह समझना बिलकुल ग़लत है कि शिशु का मैथुनात्मक जीवन नहीं होता, तथा मैथुनात्मक जीवन का सूत्रपात बालिग़ अवस्था से होता है, जब जननेन्द्रिय पूर्णता को प्राप्त कर जाते हैं। इसके विपरीत शिशु का मैथुनात्मक जीवन बहुत ही ऐश्वर्यशाली होता है। हां, यह कई बातों में उससे विभिन्न होता है जिसे बाद को स्वाभाविक कहते हैं। परिपक्व जीवन में मैथुनात्मक जीवन में अस्वाभाविकता इन उपायों से प्रकट होती है—(१) योनियों का ख्याल न करना (याने मनुष्य और मनुष्येतर प्राणी की स्वाभाविक खाई को लांघकर मैथुन-चेष्टा करना), (२) वीभत्सता (Disgust) के व्यवधान को लाँघ जाना, (३) अगम्यगमन याने नज़दीकी रक्त सम्बन्धियों से मैथुन करना, (४) अस्वाभाविक व्यभिचार (पुरुष पुरुष में और स्त्री स्त्री में), और (५) जननेन्द्रियों का स्थान शरीर के किसी दूसरे भाग को देकर तृप्ति

*The sexual life of man—20th lecture by Freud, p. 255-56.

कर लेना। ये सारी की सारी खाइयां शुरू से पैदा नहीं होतीं, किन्तु धीरे-धीरे विकास तथा शिक्षा के दौरान में पैदा होती हैं। शिशु के दिमाग में यह सब बाधायें नहीं होतीं, वह पशु और मनुष्य में कोई बड़ा व्यवधान नहीं पाता, जिस गुस्ताख़ी से मनुष्य अपने को दूसरे पशुओं से अलग करता है वह उसमें बाद को आती है। जीवन के प्रारम्भ में मल-मूत्र के लिए उसके मन में कोई घृणा नहीं होती, शिक्षा के प्रभाव में ही वह धीरे-धीरे यह घृणा सीखता है। पुरुष और स्त्रियों में वह कोई भेदभाव नहीं रखता, सच बात तो यह है कि उसकी समझ में पुरुष और स्त्री के जननेन्द्रियों में कुछ प्रभेद नहीं होता। वह अपनी प्राथमिक मैथुनात्मक इच्छाओं तथा कौतूहल को अपने चारों ओर के लोगों तथा विशेषकर उन लोगों में जो उसके विशेष प्रियमात्र हैं जैसे पिता-माता, भाई–बहिन या धाइयों में तृप्त करने की चेष्टा करता है। अन्त में हम उसमें एक चारित्रिक विशेषता देखते हैं कि वह प्रेम सम्बन्ध में इस बात को आविष्कार कर लेता है कि मैथुनात्मक तृप्ति केवल जननेन्द्रियों में ही नहीं प्राप्त हो सकतीं बल्कि शरीर के बहुत से ऐसे भाग हैं जिनमें वही तृप्ति है याने वे जननेन्द्रियों का काम दे सकते हैं। इस प्रकार शिशु Polymorphously perverse या विविधरूप से अस्वाभाविक है, और यद्यपि उसमें इन अस्वाभाविकताओं के केवल चिन्हमात्र मिलते हैं, किन्तु ऐसा एक तरफ़ तो उसमें इनके वेगों की निविड़ता में कमी के कारण होता है, और दूसरी तरफ़ शिक्षा के कारण शिशु में इनका प्रकाश अवरुद्ध हो जाता है। यह अवरोध केवल सैद्धान्तिक रूप से ही हो पाता है, कुछ की तरफ़ से तो बड़े मुंह फेर लेते हैं, और कुछ का ग़लत अर्थ लगाकर उसको उसकी मैथुनात्मक प्रकृति से इतना वंचित कर देते हैं कि अन्त तक सारी बात ही को अस्वीकार कर दिया जा सके। ये वे ही लोग हैं जो शिशुशाला (Nursery) में बैठकर बच्चों की मैथुनात्मक 'शरारत' की निन्दा करते हैं किन्तु जब लिखने की मेज़ पर पहुंच जाते हैं, तो लगते हैं बच्चों की

मथुनात्मक शुद्धता की हवा बांधने। यदि बच्चों को स्वतन्त्र छोड़ा जाय या उनको बहकाया जाय तो वे एक बड़ी हद तक मैथुनात्मक प्रवृत्तियों का इज़हार करते हैं। बड़े बुजुर्ग इन बातों का ज्यादा ख्याल नहीं करते और इन्हें बचकाना शरारतें या खेल कहकर छोड़ देते हैं यह ठीक ही है, क्योंकि बच्चे के ऊपर हम कोई राय नैतिक या कानूनी दृष्टि से क़ायम ऐसा मान कर नहीं कर सकते कि वह बालिग़ और पूर्ण जिम्मेदार है, फिर भी ये चीज़ें रहती हां हैं, और आन्तरिक बनावट की प्रवृत्तियों के साक्षी के रूप में तथा बाद के विकास के द्योतक हैं। उनसे बच्चों की तथा आमतौर से मनुष्यजाति के मैथुनात्मक जीवन का परिचय मिलता है।"

*"इन निषिद्ध इच्छाओं में अगम्यगमनात्मक इच्छाओं का विशेष उल्लेख करना चाहिए, याने जिनका सम्बन्ध माता-पिता, भाई तथा बहिन से मैथुनेच्छा से है। आप जानते हैं कि ऐसी बातों को मनुष्यजाति कितनी घृणा से देखती है, कम से कम ऐसा दिखाती है, और इनके निषेध पर कितना और देती है यह मालूम है। अगम्यगमन के प्रति इस घृणा के समर्थन में अजीब-अजीब प्रयत्न किये गये हैं, कुछ लोग कहते हैं कि यह उस प्राणी की जाति की रक्षा के लिए प्रकृति का एक तरीका है क्योंकि इस प्रकार के करीब के लोगों में प्रजनन में नसल की अवनति होगी, दूसरों ने कहा है कि बचपन से नज़दीकी रिश्ता होने के कारण मैथुनात्मक इच्छा उन व्यक्तियों से हटकर चलती है। यदि ऐसी हालत होती जैसा कि इन दो मतों में बताया गया है तो फिर इन तमाम कड़े निषेधों की ज़रूरत नहीं पड़ती, और स्वयं ही ऐसी बातें न होती। इन निषेधों का होना कुछ और ही तरफ इशारा करता है। मनोविश्लेषण की खोजों से यह निर्विवाद रूप से सिद्ध हो चुका है कि अगम्यगमनात्मक प्रेमपात्र का चयन ही सच देखा जाय तो पहला और

---

*Archaics and infantile features in dreams—13th lecture, p. 177.

नियमित प्रेम होता है, और बाद को जाकर ही इसके विरुद्ध विचार पैदा होते हैं, किन्तु ऐसा मनुष्य स्वभाव से नहीं बल्कि शिक्षा के कारण होता है।"

फ्रायड के मतानुसार केवल बच्चे का मैथुनात्मक जीवन होता है ऐसा ही नहीं, बल्कि उनके मतानुसार बच्चे का मैथुनात्मक जीवन ही परिणतवयस्क के अवचेतन में परिणत हो जाता है। "फ्रायड ने बारबार यह कहा है कि मन के अन्दर चलनेवाले संघर्षों की परिचालिका शक्ति सेक्स याने मैथुनात्मक प्रवृत्ति है, किन्तु सभ्यता के कारण मनुष्य ने अपनी मैथुनात्मक प्रवृत्तियों को दबाया या उनकी तृप्ति चेष्टा में देर कर दी जैसा कि कोई भी जानवर नहीं करता। उसके सामाजिक जीवन और मैथुनात्मक जीवन में बराबर अनिवार्य रूप से विरोध बना रहता है। आधुनिक नृविज्ञान (Anthropology) से इसका समर्थन होता है, किन्तु ऐडलर इस मैथुनात्मक प्रवृत्ति की जगह पर मुख्यतः शासनेच्छा (Will-to-power) को देते हैं। और इस क्षेत्र में उनको भी नृविज्ञान का समर्थन प्राप्त है। मनुष्य-प्राणी की किशोरावस्था ही केवल पिछड़ नहीं जाती, बल्कि उसकी स्वतन्त्रता भी मारी जाती है। ऐडलर के मतानुसार हमारे अन्दर जो मुख्य दमन (Repression) होता है वह मैथुनात्मक प्रवृत्ति का नहीं, बल्कि वह आत्मप्रसारण का दमन होता है। हां, मैथुनात्मक प्रवृत्ति का दमन भी एक प्रकार से आत्मप्रसारण या शासनेच्छा का दमनमात्र है। फ्रायड के लेखों में Libido (जिजीविषा) शब्द का प्रयोग जिस अर्थ में हुआ है वह आमतौर से समझी जानेवाली मैथुनात्मक इच्छा से कहीं व्यापक है। फ्रायड और ऐडलर का झगड़ा बहुत कुछ शाब्दिक है। कुछ जातियों तथा किस्मों के लिए फ्रायड की व्याख्या सही हो सकती है; और कुछ के लिए ऐडलर की सही हो सकती है। फ्रायड यह मानते हैं कि उन्होंने अपने अधिकतर उदाहरण ऐश्वर्यशाली विएना के यहूदियों से लिए हैं। युङ इस से भी आगे जाता है।

उन्होंने अवचेतन की हमारी धारणा को ही विस्तृत कर दिया। वे केवल इसमें हमारे संघर्ष और दमित इच्छाओं को ही नहीं पाते, बल्कि हमारी उच्च प्रवृत्तियां तथा अनुप्रेरणायें भी उन्हीं से प्राप्त करते हैं, इस प्रकार अवचेतन एक फ्रायड-विरोधी समालोचक की सुन्दर भाषा में कोई गन्दा तालाब नहीं बल्कि एक चश्मा है अर्थात् साधारण सभ्य भाषा में युङ इसे दमित इच्छाओं के कूड़ेखानों के अलावा और चीजों का बना हुआ मानते हैं।"*

इस प्रकार फ्रायड के सहयोगियों में कुछ मतभेद जरूर हुआ है, किन्तु फिर भी मनोविश्लेषण के क्षेत्र में सभी उनके पदांक के अनुसरण करने वाले हैं। हमने यह भी देख लिया कि यह मतभेद बहुत कुछ शाब्दिक तथा एक ही चीज़ के किसी खास पहलू पर जोर देने की बात का प्रभेद है। कट्टर फ्रायडवादी तो बच्चे के ऊँगली चूसने में भी अनिवार्य रूप से मैथुनात्मक चेष्टा देखते हैं। उनका कहना है कि प्रत्येक व्यक्ति साधारण जीवन के दौरान में एडिपस जटिलता (Oedipus complex) प्राप्त कर लेता है। एडिपस ग्रीक पुराण का एक व्यक्ति है जिसका फ्रायड ने अपनी चीज को स्पष्ट करने के लिए उपयोग किया था। एडिपस थिबिस के राजा लायस का बेटा था। एडिपस के जन्म के पहले ही ज्योतिषियों ने कहा था कि लायस उसके पुत्र के हाथों मारा जायगा। इसलिये राजा ने यह आज्ञा दी कि बच्चा पैदा होते ही मार डाला जाय, किन्तु उसकी माता जोकास्टा ने मोहवश ऐसा होने नहीं दिया और उसने बच्चे को एक विश्वस्त नौकर के हाथ पहाड़ पर फेंकवा दिया। वहां बच्चे को असहाय अवस्था में पाकर एक गड़रिया को दया आ गई और उसका पालन-पोषण उसने अपने लड़के की तरह किया। जिस समय वह बड़ा हुआ उस समय लायस के साथ उसकी घटनाचक्र से मुलाक़ात हो गई। ऐसा हुआ कि राजा लायस एक संकरे रास्ते से अपना रथ हांकते हुए आ रहे थे,

*Science of Life, p. 812.

उधर से गड़रिये का पुत्र एडिपस भी आ रहा था। राजा ने एडिपस से रास्ता छोड़ देने के लिये कहा, इस पर एडिपस अकड़ गया, और दोनों में चल गई। इस मुठभेड़ में राजा लायस मारा गया। इसके उपरान्त ऐडिपस थिबिस में गया और देखा कि वहां का सारा राज्य तथा प्रजा स्फिंक्स के अधीन हो रही है और चारों ओर हा-हाकार मचा हुआ है। इस स्फिंक्स को जुपिटर की स्त्री जुनो ने भेजा था कि वह आकर देश को बर्बाद कर डाले। उसने कुछ पहेलियां तैय्यार कर रक्खी थीं, जो इनका उत्तर नहीं दे पाता था वह मार डाला जाता था। शर्त यह रक्खी गई थी कि जो उसकी पहेलियों को सुलझा पायगा उसको राज्य तथा रानी मिलेगी तदनुसार एडिपस ने उसकी पहेलयों को सुलझा दिया। स्फिंक्स ने आत्महत्या कर ली। शर्त पूरी होने के कारण एडिपस को राज्य मिला और उसने रानी से याने अपनी असली माँ से शादी कर ली। इस पर देश में महामारी का प्रकोप हुआ। अन्त तक जोकास्टा तथा एडिपस को अपने असली सम्बन्ध का पता लगा। इस पर जोकास्टा ने फांसी लगा ली और एडिपस ने अपनी आंखें निकाल लीं।

फ्रायड का कहना है कि प्रत्येक लड़का इस प्रकार लड़कपन में मातृगामी एडिपस की अवस्था से गुज़रता है। इसी कारण पिता के साथ मैथुनात्मक ईर्ष्या के ज़रिये से भी उसे गुज़रना पड़ता है। लड़की भी इसी प्रकार पिता की प्रेम-प्रार्थिनी होती है, और वह माता से ईर्ष्या करती है। इस प्रवृत्ति का प्रकाश कई तरह से होता है किंतु इसके आधार में वही बात होती है। पिता-पुत्री तथा माता-पुत्र में जो अधिक पटती है, इस साधारण घटना का भी फ्रायड वही अर्थ लगाते हैं। सच बात तो यह है कि इस प्रवृत्ति से फ्रायड सारे चरित्र को ही प्राप्त करते हैं। मनुष्य जब इस एडिपस-जटिलता के अन्दर से गुज़रता है, उस समय के संघर्षों का भला-बुरा प्रभाव जन्म भर रह जाता है। बचपन में यह जो संघर्ष चलता है, उसीसे मनुष्य के चरित्र नामक वस्तु की सृष्टि होती है। मातृगमन तथा पितृहत्या की संभावना के अन्दर से गुज़रकर ही

अपने साधारण चरित्र को प्राप्त होता है। कहना न होगा कि मनुष्य-व्यवहार को समझने में उसके इस उत्स को समझना बहुत जरूरी है।

फ्रायड के इस कथन के कारण कि प्रत्येक व्यक्ति में पितृहत्या और मातृगमन की स्वाभाविक प्रवृत्ति तथा संभावना के अन्दर से होकर गुजरता है, फ्रायड का बहुत विरोध किया गया, किन्तु वे इसको अपने तरीके का सबसे महत्त्वपूर्ण अंश समझते हैं। फ्रायड के अनुसार दोषबोध (Sense of guilt) जिस से कि विकृत स्नायु (Neurotic) कष्ट पाता है, उसकी उत्पत्ति कारणों में एडिपस जटिलता को प्रमुख स्थान प्राप्त है। १९१३ में फ्रायड ने Totem and Tabu नाम से एक अध्ययन प्रकाशित किया था जिस में उन्होंने धर्म तथा सदाचार के प्राचीनतम स्वरूपों पर प्रकाश डाला था। इसमें उन्होंने लिखा था कि शायद मनुष्यजाति का सामूहिक दोषबोध ही अन्त तक जाकर धर्म तथा सदाचार का उत्पत्ति स्थल है, और यह दोषबोध एडिपस जटिलता के कारण है।*

फ्रायड ने लडके में इस एडपिस जटिलता का वर्णन करते हुए लिखा है "यह बात तो सहज ही ध्यानमें आजाती है कि यह छोटा-सा मनुष्य चाहता है कि मां के ऊपर उसी का अधिकार रहे, वह देखता है कि ऐसा होने में कोई बाधक है तो वह उसका पिता है। वह उस समय बेचैन हो जाता है जिस समय पिता मां का स्पर्श आदि करता है जिस समय वह चला जाता है उस समय वह चैन में हो जाता है। वह कई बार अपनी भावनाओं को शब्दों में सीधा व्यक्त कर देता है, और मां से वायदा करता है कि उससे शादी करेगा। एडिपस के कार्यों की तुलना में कुछ भी नहीं है, फिर भी यह काफी है। दोनों का मुद्दा एक ही है। कुछ बच्चे पिता से बहुत प्यार करते हैं, इससे निरीक्षण बहुत मुश्किल हो जाता है, इस प्रकार उनमें विरुद्ध बल्कि

*Lectures on psychoanalysis by Frued; p. 279.

द्वयर्थक भावनायें दीख पड़ती हैं। यह भी कहा जा सकता है कि छोटे बच्चे का यह व्यवहार अहमिका के कारण होता है न कि मैथुनात्मक प्रवृत्ति के कारण तथा मां बच्चे की देखरेख करती है और सब आराम पहुंचाती है, इसलिये बच्चा स्वार्थवश यह चाहता है कि माता का सारा ध्यान उसी पर रहे। यह बिलकुल सही है, किन्तु जल्दी ही यह साफ़ हो जाता है कि स्वार्थ की पूर्ति से वे मौके पैदा होते हैं जिनका आश्रय लेकर मैथुनात्मक प्रवृत्ति चलने लगती है। जब छोटा बच्चा अपनी माता के बारे में बहुत खुली मैथुनात्मक दिलचस्पी का प्रदर्शन करता है, उसके साथ रात को सोना चाहता है, जिस समय वह वस्त्र पहन रही है उस समय कमरे में रहने का हठ करता है, यहां तक कि शारीरिक रूप से उसको आकर्षित करना चाहता है, जैसा कि माता कई बार हंस कर बताती हैं, उस समय माता के प्रति उसकी आसक्ति की कामात्मक प्रकृति खुल जाती है। इसके अतिरिक्त इस बात को हमें भूलना नहीं चाहिये कि माता उसी प्रकार से छोटी लड़की की आवश्यकताओं के प्रति दृष्टि रखती है जैसे छोटे लड़के की आवश्यकताओं के प्रति, किंतु उसमें वह असर पैदा नहीं होता जो छोटे लड़के में पैदा होता है। साथ ही यह भी देखने लायक़ है कि पिता कभी-कभी पुत्र की देखरेख रखने में माता से होड़ करता है, किंतु पुत्र की आंख में वह उस महत्त्व को प्राप्त नहीं कर पाता जो माता को प्राप्त होता है। इस प्रकार विरुद्ध लिंग (Opposite sex)* को तरजीह देने की बात को हम किसी भी प्रकार की समालोचना से भुला नहीं सकते। लड़के के स्वार्थ की दृष्टि के ख्याल से तो यह अच्छा ही होता यदि बजाय एक के दो व्यक्ति उस की सेवा में तैनात हो जाते।"†

फ्रायड के कथनानुसार कई बार माता-पिता ही बच्चे-बच्ची में एडिपस

---

*लिंग शब्द का अर्थ संस्कृत में चिन्ह है अतएव इस अर्थ में उपयुक्त है।

† Ibid, pp. 279-80.

जटिलता को जाग्रत करने में मदद देते हैं। माता के द्वारा अवज्ञात होने पर लड़का अपनी बहिन को द्वितीय प्रेमपात्री के रूप में ले सकता है। इस प्रकार फ्रायड के मतानुसार एडिपस जटिलता एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति है जिसके बिना हम मनुष्य के व्यवहार को नहीं समझ सकते। फ्रायड ने यह दिखाने के लिए कि इस विचार से दुनिया अपरिचित नहीं थी किन्तु मानती भर नहीं थीं, कई प्रमाण यत्र-तत्र दिये हैं। वे बड़े ही मज़ेदार हैं, तदनुसार हम उनका उल्लेख किये बिना नहीं रह सकते। ग्रीक कवि सोफोक्लिस ने एडिपस की कहानी को लेकर एक नाटक लिखा है। कवि ने धीरे-धीरे एडिपस के कृत्य का उद्घाटन किया है। वह तो बहुत पहले ही किया जा चुका था, किन्तु धीरे-धीरे बड़ी खूबी के साथ कवि इसका उद्घाटन करते हैं। इस पर फ्रायड कहते हैं कि यह तरीका क़रीब-क़रीब मनोविश्लेषण का है। "नाटक की बातचीत में माता-पत्नी जोकास्टा की जानेवाली खोज के विषय में कहती है कि इसे जारी न रक्खा जाय, वह कहती है कि बहुत से लोगों ने स्वप्न में अपनी माता के साथ मैथुन किया है, किन्तु उनका कोई मतलब नहीं होता। फ्रायड उसी विकृता में अन्यन्त्र कहते हैं। आटो रैंक ने एक बहुत ही सुन्दर तथा महत्त्वपूर्ण पुस्तक में यह सिद्ध किया है कि समस्त युग के नाटककारों ने मुख्यतः अपना मसाला एडिपस तथा अगम्यगमन जटिलता से तथा उसके विभेदों से जिनमें उसके छिपे हुए रूप भी हैं लिया है।"* हिन्दुओं का महाभारत द्रौपदी के इर्दगिर्द है। द्रौपदी एक नारी है जो एक ही साथ पांच भाइयों की पत्नी है। एक भाई की स्त्री दूसरे भाई के लिए अगम्या है। रामायण में मन्दोदरी और तारा भी इसी प्रकार की नायिकायें हैं। वैष्णव कविता में राधा कृष्ण की लीला ही कवि का विषय है, राधा एक तो पर-स्त्री है, दूसरे वह कृष्ण की मातृस्थानीया मौसी या मामी है। यह तो मैंने मोटे तौर पर कहा, हिन्दू पुराणों को खोजने पर ऐसे बहुत से उदाहरण मिल सकते हैं।

*Ibid, p. 283.

फ्रायड, इस सम्बन्ध में और भी कहते हैं "यह बात ध्यान के योग्य है कि मनोविश्लेषण प्रक्रिया के बहुत पहले ही एडिपस के दो अपराध असंयत सहजात (Unbridled instinct) के शुद्ध स्वरूप हैं।" इसके बाद वे और भी इसके उदाहरण देते हैं, वे कहते हैं दिदेरो (Diderot) के le neveu de Rameau (रामो का भतीजा) जिसका स्वयं गेटे (Goethe) ने अनुवाद किया था एक मज़ेदार बातचीत मिलेगी। उसमें आप यह ध्यानयोग्य बातचीत पढ़ सकते हैं—Si le petit sauvage etait abandonne a luiemme, qu'il conserva toute son imbeciliteet qu'il reunit an peu de raison del'-enfant an berceau la violence des passions del' homme de trent ans, il tordrait lecou a son pire et coucherait anec sa mere."* याने यदि इस नन्हे से जंगली का वश चलता और साथ ही उसमें बच्चे की अल्पबुद्धि तो रहे किंतु ३० साल की उम्रवाले के मनोवेगों की प्रबलता हो जाय तो वह अपने बाप का गला काटकर अपनी मां के साथ सोवे।

स्वप्न को आम तौर पर स्वप्न या तुच्छ समझा जाता है, किन्तु नहीं। डाक्टर विलियम स्टेकेल ने† लिखा है "आनातोल फ्रांस ने यह ठीक ही लिखा है कि मैं इस विषय में पूर्ण रूप से निश्चित हूँ कि स्वप्नों की शक्ति वास्तविकता की शक्ति से कहीं बढ़कर है।" स्वप्न वास्तविकता तथा अतीन्द्रिय जगत् (Supersensory world) के बीच पुल है।

फ्रायडवादियों का कहना है कि यद्यपि सारी दुनिया की भाषा अलग-

---

*Ibid, p. 284.

†An outline of Psychoanalysis by J. S. Van Tesslar 155.

अलग है, फिर भी अवचेतन की भाषा सारी दुनिया में है, कम से कम जिन लोगों की सभ्यता, पुराण आदि एक है उनमें तो एक है। इस व्याख्या के अनुसार दुनिया में क़रीब-क़रीब हरेक वस्तु का मैथुनात्मक अर्थ है। फ्रायड ने इस प्रकार एक कोष-सा तैयार किया है, और उसके सहारे यह दावा किया जाता है कि प्रत्येक स्वप्न में जो चिंता छिपी हुई है, उसका उद्घाटन किया जा सकता है। स्वप्न कार्य-कारण सम्बन्ध के दायरे में होते हैं यह तो हम पहले ही बता चुके हैं, साथ ही यह भी बतला चुके हैं कि उनके कारण भौतिक ही होते हैं, किंतु फ्रायडवादियों के इस प्रतीक-कोष को बिलकुल सम्पूर्ण, और अन्तिम मानने के अधिकांश लोग पक्षपाती नहीं हैं। फिर भी फ्रायड की सैकड़ों इस प्रकार की व्याख्यायें अमल में सही उतर चुकी हैं। फ्रायड का तो इस अंश पर इतना ज़ोर है कि वे कहते हैं, "स्वप्न-विश्लेषण सम्बन्धी हमारे सिद्धान्त का सबसे प्रधान भाग प्रतीकवाद है।"* फिर भी Science of Life के विद्वान् लेखकगण (एच० जी० वेल्स, जुलियन हाक्सले) प्रतीकवाद में सत्य का अंश मानते हुए भी उसे पूरे तरीके पर नहीं मानते। उनके शब्द ये हैं— "प्रतीकवाद की धारणा में सत्य का उपादान है, किन्तु हम लोगों को ऐसा ज्ञात होता है कि फ्रायडवादीगण जो अक्सर फ्रायड से भी कहीं आगे बढ़े हुए नज़र आते हैं, और फ्रायड का मज़ाक उड़ाते मालूम पड़ते हैं, इस बात को बहुत आगे बढ़ा ले जाते हैं, और इसके लिए बहुत ही लम्बे-चौड़े दावे करते हैं।† फ्रायड के समय में भी स्वप्न में प्रतीकवाद को विशेष सन्देह की दृष्टि से देखा जाता था। उन्होंने स्वयं ही एक वक्तृता में कहा था, "बड़े-बड़े समझदार और बुद्धिमान व्यक्ति जो एक बड़ी हद तक हमारे मनोविश्लेषण का लोहा मानते हैं, इस जगह

---

*Ibid, p. 126.

†Science of Life. p. 813.

पर हमारा साथ छोड़ देते हैं। उनका यह व्यवहार हमें विशेषकर इसलिए खटकता है कि प्रतीकवाद केवल स्वप्न तक ही सीमित नहीं है।"* "फायस्तर-सलेबेन का कहना है 'सब कला ही प्रतीकवाद है। सुप्रसिद्ध कलाकार हेबेल ने कहा है 'मेरे जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य मेरे आभ्यान्तरिक जीवन को प्रतीकों में पेश कर देना है।' प्रतीकवाद हमारे सारे जीवन में फैला हुआ है। भाषा, रिवाज, विश्वास तथा विचार कम या अधिक गुप्त प्रतीक है।"†

प्रतीकवाद एक बहुत ही दिलचस्प विषय होने पर भी वर्त्तमान क्षेत्र में हम उसके ब्यौरे में नहीं जा सकते, किन्तु यदि हम उसका कुछ भी वर्णन यहां न करें तो यह समझना कठिन होगा कि फ्रायड किस प्रकार सारे मनुष्य-व्यवहार की तह में यौन चेष्टा या मैथुनात्मक प्रवृत्ति देखते हैं। फ्रायड का कहना है कि स्वप्न में मनुष्य मकान की शक्ल में दिखाई देता है। इस बात को फ्रायड के पहले के ए शर्नर (१८६१) ने कहा था—"मनुष्य स्वप्न में कभी तो मकान के सामने के हिस्से से उतरते हुए देखता है, ऐसा करते हुए कभी तो उसको भय मालूम होता है, कभी आनन्द। यदि मकान की दीवारें बिलकुल चिकनी हैं, तो उसका मतलब पुरुष से है, किन्तु यदि उसमें छज्जे आदि बने हैं जिनको पकड़ा जा सकता है तो उस मकान का मतलब स्त्री से है। पिता-माता स्वप्न में सम्राज्ञी, राजा, रानी या बड़े लोगों के रूप में दिखाई देते हैं, जहाँ तक इसका सम्बन्ध है स्वप्न का यह प्रतीकवाद बहुत ही कर्त्तव्यपरायण है; किन्तु बच्चे, भाई तथा बहिन स्वप्न में छोटे जानवर या कीड़े-मकोड़े के रूप में दिखाई पड़ते हैं। जन्म अनिवार्य रूप से

---

*Lectures on Psychoanalysis, p. 127.

†The meaning of the Dream Symbolism by Wilhelm Stekel M. D. in Outline of Psychoanalysis edited by J. S. Van. Tesslar.

जल से सम्बन्धित रूप में दीख पड़ता है। याने या तो हम जल में गिर रहे हैं या उससे किसी प्रकार निकल रहे हैं, किसी को उसमें से बचा रहे हैं या किसी के द्वारा उसमें से बचाए जा रहे हैं। इस प्रकार माता और बच्चे का सम्बन्ध प्रतीक रूप में दिखाई देता है। मरने की जगह पर हम सफ़र करना देखते हैं। कपड़े और वर्दियां नंगापन सूचित करती हैं।× पुरुष के लिंग को हम स्वप्न में लाठी, छाता, बल्ली आदि खड़ी चीज़ों के रूप में देखते हैं, साथ ही जिन चीज़ों में घुसने की और फलस्वरूप शरीर को कष्ट पहुंचाने की शक्ति है, जैसे पैने हथियार, छुरी, छुरे, बल्लम, तलवार आदि भी उसी के प्रतीक हैं। बन्दूक, पिस्तौल तथा तमंचे भी अपने आकार के कारण प्रतीक के रूप में आते हैं। नौजवान लड़कियां अक्सर ऐसा स्वप्न देखती हैं कि कोई आदमी छुरी या बन्दूक लेकर उसका पीछा कर रहा है। इस स्वप्न का अर्थ स्पष्ट है। फिर पुरुष की जननेन्द्रिय का जल निकलने वाली वस्तुओं जैसे नल, हज़ारा और चश्मों से तुलना समझ में आती है। इसी प्रकार जो चीज़ें भीतर से बाहर को जाती हैं जैसे खिंचनेवाली लालटेन (Pulley lamps), घटने-बढ़ने वाली पेन्सिल भी पुरुषेन्द्रिय के प्रतीक के रूप में आती हैं। पेन्सिलें, होल्डर, नह की रेती, हथौड़ा और दूसरे इस प्रकार के हथियार पुरुषेन्द्रिय के द्योतक हैं।"* माध्याकर्षण के नियमों के विरुद्ध पुरुषेन्द्रिय खड़ा हो सकता है, इस कारण बेलून, हवाई जहाज़, जेपलिन सब इसके प्रतीक का काम देते हैं। इस प्रकार उड़ने का मतलब मैथुनात्मक उत्तेजना से है। मि० फेडेर्न नामक मनोविश्लेषक ने इस बात की सत्यता निःसन्देह रूप से प्रमाणित कर दी है। मौरली बाल्ड नामक विद्वान ने पहले ही इस बात को

---

*Ibid, p, 130. प्रतीकवाद सम्बन्धी सारा ब्यौरा फ्रायड की वक्तृताओं से संकलित है।

अपने को देखते हैं, और चाहते हैं कि लोग हमें इसी रूप में देखें। यह एक तरह का छद्म-वेश है जिसको पहनकर हम केवल लोगों के सामने ही नहीं अपने सामने पेश होते हैं। किन्तु हम जितना भी दबावें यह प्राणीमात्रगत स्व बार-बार सिर उठाता है। यह जरूरी नहीं कि जिसको वैयक्तिक स्व कहते हैं वह सही ही हो, और प्राणीमात्रगत स्व नैतिक हो। ऐसा नहीं भी हो सकता है। संभव है सहजात प्रवृत्तियों का हमारा दमन अनैतिक भी हो, अस्वाभाविक भी हो सकता है। जिस समय प्राणीमात्रगत स्व विद्रोह करता है और उसका वैयक्तिक या मानवीय स्व से प्रबल संघर्ष होता है, उस समय स्नायविक गड़बड़ियां तथा मानसिक विक्षिप्तता हो सकती है। युङ ने इस प्राणीमात्रगत स्व का पुरुष और स्त्रियों में विभिन्न स्वरूप माना है। पुरुषों के लिये वे Anima नाम रखते हैं, किन्तु स्त्रियों के लिये Animus है। उनके इस प्रभेद का कारण वे यों बताते हैं कि पुरुष और स्त्रियों में दमन की प्रक्रिया तथा दमित प्रवृत्तियों का दायरा परम्परा, सामाजिक, आर्थिक तथा शारीरिक कारणों से विभिन्न है। स्त्रियां अधिकतर फैसलों (Judgments) को और अपने से आगे बढ़कर किसी काम को करने की प्रवृत्ति का दमन करती हैं, किन्तु भावुकता तथा ग्रहणशील उत्तरशीलता (Receptive response) को वे पुरुष से कम दमन करती हैं। यह विभाजन कुछ ढंग का मालूम नहीं होता। डाक्टर युङ ने इस प्रकार जिन नये पारिभाषिक शब्दों की वृद्धि की उनसे कुछ नये ज्ञान की वृद्धि हुई ऐसा तो नहीं ज्ञात होता। हां, उनका भी यह हक़ हो गया कि उनका एक अलग मतवाद (School) है ऐसा कहा जाय। युङ के अनुसार अच्छे आदमी का मतलब है कि उसका मानवीय स्व अच्छा है, और उसका प्राणीमात्रगत स्व उसके सामने कच्चा खाता है। बुरे आदमी का मतलब इसका उल्टा हुआ। कमज़ोर व्यक्ति का मतलब इस मतवाद के अनुसार यह हुआ कि उसका कभी मानवीय स्व ज़ोर पकड़ता है कभी प्राणीमात्रगत् स्व। शिक्षा का उद्देश्य इस प्रकार इस मान-

वीय या वैयक्तिक स्व को सामाजिक पंक्ति में ले आना है।

अलफ्रेड ऐडलर जैसा कि हम पहले बता चुके हैं फ्रायड के इस मत को नहीं मानते कि प्रत्येक मनुष्य-व्यवहार की तह में मैथुनात्मक प्रवृत्ति है। वे इस प्रवृत्ति की जगह पर Machttrieg या शासनप्रवृत्ति को बताते हैं। ऐडलर ने अपने सिद्धान्त को Neurosis याने स्नायविक विकृति की कसौटी पर कसकर सही उतारने का दावा किया है, याने उनके सिद्धान्त के अनुसार स्नायविक विकृतिवाले रोगियों का इलाज किया गया, और वे अच्छे हो गये। ऐडलर का कहना है कि बचपन में सभी बच्चे पिता-माता तथा और लोगों के मुकाबले में अपनी हीनता का अनुभव करते हैं। यह हीनताबोध (Inferiority Complex) विभिन्न व्यक्तियों में विभिन्न मात्रा में प्रकट होता है। जिन लोगों में कोई शारीरगठन सम्बन्धी त्रुटि होती है उन लोगों में विशेषकर यह हीनताबोध पैदा होता है। बच्चा होने के कारण ही उसे दूसरों पर निर्भर करना पड़ता है, उसे दूसरों का हुक्म मानना पड़ता है, दूसरों की इच्छा के अनुसार चलना पड़ता है। इस प्रकार बच्चे में आत्मग्लानि तथा आत्मश्लाघा का संघर्ष चला करता है। बहुत से लोग जिनको हम साधारण तौर पर बहुत गर्वित समझते हैं, असल में वे हीनताबोध के शिकार हैं। यह जो गर्व ऊपर से दिखाई पड़ता है, यह एक तरह का बचाव मात्र है। फ्रायड और ऐडलर के मतवादों में एक विशेष प्रभेद है। ऐडलर के सिद्धान्त में सामाजिक उत्पादन को खास विशेषता प्राप्त है। बोदुयाँ नामक लेखक के मतानुसार ऐडलर के सिद्धान्त की विशेषता ही यह है। फ्रायड के अनुसार स्नायविक विकृति (Neurosis) का कारण यह है कि अवचेतन में ऐडिपस जटिलता का ठीक-ठीक दमन नहीं हो पाता, किन्तु ऐडलर के अनुसार व्यक्ति के सामाजिक चरित्र में गड़बड़ी आने के कारण वह स्नायविक रूप से विकृत हो जाता है। ऐडलर ने इस प्रकार केवल स्नायविक विकृति के सिद्धान्त तथा उसके इलाज के क्षेत्र में ही फ्रायड से लोहा लिया है। ऐसा नहीं बल्कि

उन्होने स्वप्न की व्याख्या के क्षेत्र में भी फ्रायड की प्रतिद्वन्दिता में एक सिद्धान्त खड़ा कर दिया। फ्रायड का कहना है कि स्वप्न में बचपन की दमित इच्छाओं की तृप्ति होती है, किन्तु वह सीधे तौर पर नहीं, बल्कि प्रतीकों के ज़रिये से, किन्तु ऐडलर का कहना है कि ऐसी कोई बात नहीं। उनके अनुसार स्वप्न में मनुष्य केवल पहले से गिरा पत्ता प्राप्त करने की चेष्टा करता है। इस चेष्टा में प्रवृत्यात्मक रूप से श्रेणीबद्ध स्मृतियाँ काम में लाई जाती हैं. और इनसे बचपन की जिजीविषात्मक या मैथुनात्मक इच्छाओं का कोई सम्बन्ध नहीं है। बोदुयाँ ने यह खूब लिखा है कि फ्रायड के अनुसार स्वप्न भूतकालमुखी होते हैं और ऐडलर के अनुसार वे भविष्यकालमुखी होते हैं।*

यह हम पहले ही बता चुके हैं कि ऐडलर मैथुनात्मक चेष्टा को शासन-पिपासा की परितृप्त होती है, इस कारण वह भी शासन का एक रूप है, किन्तु यह रूप मुख्य प्रवृत्ति के मुक़ाबले में गौण ही है। इसको मुख्य समझना ग़लत है। इस बात के प्रमाण स्वरूप ऐडलर ने प्रमाण भी दिये हैं। ऐसे बहुत से मामले पाये गये हैं जिन में प्रेमपात्री पर प्रणय-विजय प्राप्त कर लेने पर ही तृप्ति हो गई, मैथुन की आवश्यकता नहीं रही। कुछ लोग इस कारण दुश्चरित्र या वेश्या हो गईं कि वे एक व्यक्ति के अधीन प्रणय में भी रहना पसन्द नहीं करती थीं, न कि यह कि उनमें कोई अधिक कामुकता थी। कोई-कोई स्त्री पुरुषोचित व्यवहार करना चाहती है, याने शरीरविज्ञान की दृष्टि से मैथुनकालीन निष्क्रियता याने कम सक्रियता उन्हें इतनी नापसन्द है कि प्रेम को ठुकरा देती हैं, और बच्चे जनने के पास नहीं फटकती। फिर शासन-पिपासा का प्रकाश इसमें स्पष्ट हो जाता है जब एक स्त्री ऐसे पति की

---

*As quoted in The Rape of the Masses by Dr. Chakotin, p. 55.

खोज में रहती है जिस पर वह हुकूमत कर सके, या एक पुरुष ऐसी स्त्री को चाहता है जिससे वह हर समय जैसा चाहे करवा सके।* इस प्रकार ऐडलर ने मनुष्य-व्यवहार की व्याख्या जिस प्रकार की है, उसमें फ्रायड से कुछ स्वतन्त्रता अवश्य है।

फ्रायड का मतवाद वही है जिसको कहेंगे cherchez la femme याने स्त्री को खोजो याने इस मामले की तह में कोई स्त्री अवश्य है, उसे खोज निकालो तो बस तुम उसकी तह तक पहुंच जाओगे। हमारी लोकप्रिय कहानियों तथा पुराणों से इस मतवाद को काफ़ी सहारा मिलता है। सीता के लिये रामायण हुई, द्रौपदी के लिये महाभारत हुआ, हेलेन के लिये ट्राय नगरी का ध्वंस हुआ, इत्यादि। इस मतवाद के पक्ष में जो कुछ कहा जा सकता हैं वह वैयक्तिक दायरे में फ्रायड ने कह ही दिया है, अतः उसके पुनरुल्लेख की आवश्यकता नहीं है।

अब हम मार्क्स के मतवाद की आलोचना करेंगे कि वे मनुष्य के व्यवहार के सम्बन्ध में क्या निदान करते हैं, किन्तु ऐसा करने के पहले हम मनुष्य-व्यवहार के सम्बन्ध में दो एक अन्य मतवादों का उल्लेख कर देंगे।

हाब्स (१५८८-१६७९) का कहना था मनुष्य-व्यवहार का उत्सस्वल भय है। इसको उन्होंने किसी प्रकार वैज्ञानिक रूप से स्थापित नहीं किया, और कर ही कैसे सकते थे। वह जमाना वैज्ञानिकों का नहीं था न उस जमाने में विज्ञान के इतने साधन ही थे। हाब्स के इस मतवाद पर जान डेवे (John Dewey) कहते हैं—"आजकल की क़रीब-क़रीब निश्चिन्तता तथा युक्ति-युक्त रूप से आराम की दुनिया में हाब्स का यह व्यापक भय एक

*Ibid, p. 56-57

अस्वाभाविक रूप से भयचकितव्यक्ति का ख्यालमात्र ज्ञात होता है, किन्तु यदि हाब्स जिस समय थे उस समय की अराजकताओं और गड़बड़ियों को ख्याल में रक्खा जाय और यह देखा जाय कि उस समय बड़े ज़ोरों से दिन-दहाड़े अन्धेरखाता और साजिशें चलती थीं, तो यह बात कुछ दूसरी दृष्टि में दिखाई पड़ेगी। सामाजिक परिस्थिति ऐसी थी जिस में भय का दौर-दौरा था प्राकृतिक मनुष्य के मनोविज्ञान के वर्णन के रूप में उनका यह सिद्धान्त सही नहीं है। हां, उस ज़माने की सामाजिक अवस्था के परिचायक के रूप में इस सिद्धान्त के विषय में बहुत कुछ कहा जा सकता है।"*

अठारहवीं सदी में तथा उन्नीसवीं सदी में जिस समय धीरे-धीरे सामन्तवाद की अट्टालिका ढह रही थी, और पूंजीवाद का अभ्युत्थान हो रहा था उस समय दलित तथा शोषित वर्ग की हितैषिता परोपकार के रूप में पहले पहल आई। उस समय के दार्शनिकों तथा लेखकों ने यह कहा कि परहितैषिता ही सारे मनुष्यव्यवहार के मूल में है। अध्यापक डेवे ने इस मतवाद को भी उस ज़माने की हालत का द्योतक बतलाया उन्होंने लिखा है कि परस्थितियां ऐसी नहीं थीं कि राजनैतिक रूप से कुछ ऐसा कार्य किया जाय कि दलित तथा शोषित वर्ग का कुछ भला किया जाय, अतः प्रचार-कार्य द्वारा यह चेष्टा की जाती थी कि कुछ भला हो जाय।† कहना न होगा कि इस प्रकार की व्याख्या कोई व्याख्या ही नहीं है। मान लिया दूसरों की भलाई-रूपी व्यवहार का उत्स परहितैषिता है, किन्तु अन्य व्यवहारों का उत्स क्या है? फिर ऐसे भी तो व्यवहार हैं जो न ठीक भले ही हैं, और न बुरे हैं, जैसे हम लिखने, बोलने, पढ़ने में कोई गलती कर जाते हैं, और उसका इस मतवाद अनुसार कारण क्या है?

---

*Human Nature and Conduct by John Dewey, p. 133.
†Ibid, p. 133.

यों तो मनुष्य-व्यवहार के सम्बन्ध में बहुत से और मत-मतान्तर हुए ह तथा हैं, किन्तु वे अधिकांश रूप में चाहिये पर जोर देते हैं न कि व्यवहार के उत्सस्थल की खोज करते हैं। इस प्रकार बेन्थाम, मिल, कोंत आदि के मत-मतान्तर हैं। फ्रायड तथा फ्रायड के शिष्यों के अतिरिक्त जिन में से कुछ प्रमुख का हम जिक्र कर चुके हैं, एक मार्क्स तथा उनके शिष्य ही ऐसे हैं, जो एक ही बात से सारे मनुष्य-व्यवहार के मूल का पता लगाते हैं। इस कारण हमारे विषय की दृष्टि से मार्क्स के मत को विशेष महत्व प्राप्त होता है।

मार्क्स पर विशेषकर तीन प्रधान विचारधाराओं का प्रभाव पड़ा-क्लासिकल जर्मन दर्शनशास्त्र, क्लासिकल अंग्रेज़ी अर्थशास्त्र और फ्रेंच समाजवाद जिस में फ्रांस के अन्य क्रान्तिकारी सिद्धान्त भ मौजूद हैं।* इस प्रकार यूरोप की व्यावहारिक सभ्यता से उद्भूत इस त्रिधारा से मार्क्सवाद का जन्म हुआ मार्क्सवाद के जिस भाग से विशेषकर हमारा यहां पर सम्बन्ध है वह है ऐतिहासिक भौतिकतावाद। भौतिकवाद का नाम सुनते ही लोग नाक-भौं सिकोड़ने लगते हैं। ऐसा लोग इस कारण करते हैं कि वे भौतिकवाद के अर्थ का अनर्थ समझते हैं। कोई भौतिकवाद से यह समझता हैं कि सभी बातों को इस मत में जड़ तथा उसकी गति में परिणत कर दिया जाता है, कोई समझता है इस का मतलब केवल खाओ, पियो, मौज करो है। हम यहां पर विस्तार के साथ इन बातों पर विचार नहीं कर सकते। भौतिकवाद का यह हर्गिज़ कहना नहीं है कि केवल जड़ ही जड़ वर्तमान है बल्कि इसका कहना है कि विश्व के विकास में जड़ पहले था। उस समय मन-उपादान का कहीं पता नहीं था। हजारों सालों के बाद विकास उच्च स्तर पर जाकर मन का जन्म जड़ ही एक विशेषता के रूप में हुआ। यह कहना कि भौतिकवाद मन के

---

*The Teachings of Karl Marx by V. I. Lenin.

अस्तित्व को ही नहीं मानता बिलकुल गलत है। बात सिर्फ इतनी है कि वह मन को शरीर से स्वतंत्र रूप से नहीं मानता। वह कहता है सोचना दिमाग का एक धर्म है, और दिमाग एक भौतिक वस्तु है। मार्क्सवाद विज्ञान से अलग एक कदम भी नहीं चल सकता। वह विकासवाद को मानता है। इसका अर्थ यह है कि वह मानता है कि मनुष्य का शरीर जैसे अत्यन्त आदिम अमीबा के शरीर से विकसित है उसी तरह उसके मानसिक यन्त्र का विकास भी सबसे आदिम मानसिक यन्त्र वाले प्राणी से हुआ है।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद यह मानता है कि विकास की विभिन्न सतह पर नये नये गुणों की उत्पत्ति होती है। सोचना भी इसी प्रकार का एक गुण है, जिसकी उत्पत्ति एक विकास की सतह पर हुई। अतिआधुनिक मनोविज्ञान भी तो मनुष्य—व्यवहार की व्याख्या करने के लिये किसी आत्मा वगैरह की आवश्यकता नहीं महसूस करता। आजकल का मनोविज्ञान शरीर और मन की द्वैतता को नहीं मानता, इसलिये वह न तो समान्तरालवाद को ही मानता है न पारस्परिक परिणामवाद को ही मानता है, वह यह देखता है कि विकास की एक खास सतह पर जाकर दिमाग नामक वस्तु की उत्पत्ति होती है, और उसके विकास की एक खास सतह पर जाकर प्राणी अपने व्यवहार को इस माने में नियन्त्रण करने लगता है कि उस में दूरदृष्टि हो जाती है, और जिसे उद्देश्य कहते हैं वह उसके व्यवहार में आता है।*

विकास की एक-एक सतह पर नये गुणों को उत्पत्तिवाली बात सर्वमान्य नहीं है। ईश्वरवादी या अध्यात्मवादीगण इस बात को नहीं मानते कि जीवन तथा मन की उत्पत्ति इस प्रकार एक-एक सतह पर नये गुणों की उत्पत्ति करती है। ऐसे लोगों का यह कहना है कि जीवन तथा मन इसके

---

*Dialectical Meterialism prepared by Leningrad Institute under M. Shirkov, p. 12.

पहले उस रूप में मौजूद था लेकिन वैज्ञानिक परीक्षा की कसौटी पर नहीं उतरता। जो कुछ भी हो हम यहां पर इस विषय में पड़ नहीं सकते। हम केवल यहां इतना ही कह सकते हैं कि मनुष्य-व्यवहार का कारणीभूत जो मानवीय मन है वह कोई एक दिन में पैदा होकर नहीं आया। धीर-धीरे हजारों वर्षों के दौरान में उसका विकास हुआ, और अब वह इस अवस्था में पहुंचा है जिस अवस्था में हम उसको पाते हैं। कहना न होगा कि यह दृष्टिकोण केवल बाल की खाल निकालने की प्रवृत्ति की परितृप्ति नहीं है, बल्कि इस दृष्टि से मनुष्य-व्यवहार पर अच्छी रोशनी पड़ती है। एक तो इससे एक साँस में यह मान लिया जाता है कि आधारगत रूप से मनुष्य का मन वही है जो पशु का मन है, किन्तु साथ ही यह भी पता लगता है कि वह उससे विभिन्न भी है।

मनुष्य-व्यवहार को मार्क्सवाद जैसा समझता है वैसे उसको समझने के लिए मन के इस विकास को कुछ समझा लेना होगा।

प्रत्येक जीवित वस्तु अपने इर्द-गिर्द की चोज़ों से प्रभावित होती है। प्राणी की बात दूर रही पौधे भी अपने पत्ते धूप की ओर और जड़ें रसीली जमीन की ओर फेंकते हैं। किन्तु क्या इसी से यह कहा जा सकता है कि उनमें सोचने की शक्ति है? स्लिपर ऐनिमाल्कुल (slipper animalcule) या पैरामेकियम नामक एक कोषी प्राणी जैसे तैरते तैरते जब किसी हानिकर वस्तु का सामना करता है तो अपना रास्ता बदल देता है, यह पहले ही बताया जा चुका है। पैरामेकियम के इस व्यवहार का अच्छी तरह निरीक्षण किया गया है। उसमें से एक और निरीक्षण का यहां ज़िक्र किया जायगा।* "पैरामेकियम जिस समय तैर रहा है, मान लीजिये कि एक पौधे का बचा टुकड़ा उसके रास्ते में आ जाता है। ज्योंही वह इस बाधा के सामने आ जाता

---

*जैसा कि Science of Life, p. 683 में उद्धृत है

है, वह पीछे हटता है, और एक नया रास्ता खोजता है। इस प्रकार नया रास्ता अख्तियार करने पर भी शायद बाधा से बचत होती, है उस हालत में फिर एक मुठभेड़ होती है और फिर उससे बचने की प्रतिक्रिया होती है, इस प्रकार होती ही जाती है जब तक कि वह उससे बचकर चल नहीं पाता। इस प्रकार जो वह टटोलते हुए सही रास्ता खोजता है, उसमें कोई तरीका नहीं है। यह बिल्कुल मनमाने तौर पर होता है। वह प्राणी पहले एक तरफ जाकर लौटता है, फिर दूसरी तरफ जाता है।" रोशनी के द्वारा पैरामेकयम के साथ प्रयोग करने पर यही परिणाम निकलता है। यदि उसके ऊपर एकाएक तेज रोशनी डाली जाय, या उसको ऐसे पानी में डाल दिया जाय जो उसके लिए अनुपयुक्त है, तो इन सब उत्तेजनाओं पर उसका एक ही उत्तर होता है। वह है टटोलते हुए सही रास्ता खोजना। ऐसा करने के दौरान में या तो वह विनष्ट हो जाता है या निरापद परिस्थितियों में पहुंच जाता है।* इससे यह तो ज्ञात होता है कि उसमें परिस्थितियों के प्रति प्रतिक्रिया करने की शक्ति है, किन्तु इससे यह नहीं प्रमाण मिलता कि उसमें स्मृति या दूरदृष्टि है। जिस समय उसका किसी बाधा से सामना बल्कि टक्कर होती है उस समय वह पीछे हट जाता है, किन्तु जिस समय किसी ऐसी चीज़ के पास वह आ जाता है जो उसका खाद्य है तो वह ठहर जाता है और खाने लगता है।

इस विषय को सोचने के लिए समझाने-समझने की क्रिया को Science of Life के विद्वान् लेखकों ने तीन हिस्सों में विभक्त किया है। पहली बात तो ग्रहणशीलता है याने बाहरी परिस्थितियों से प्रभावित होना। दूसरी बात है सक्रियता, जैसे दौड़ना, तैरना, बढ़ना, लजाना, पसीना पसीना हो जाना, इत्यादि। तीसरी बात है सब भावों को संयुक्त करना (Correlation)

---

*Ibid, p. 683. †Ibid, p. 663.

पहली बात, जैसा हमने देखा सभी प्राणियों में यहां तक कि पौधों में है। दूसरी बात भी बहुत कुछ छोटे प्राणियों तक में है। "यदि एक न्यूट Newt, नामक छोटे से कीड़े को पानी से उठाकर हाथ में रक्खा जाय तो वह अपने सारे चमड़े पर एक साफ लिबलिबा रसक्षरण करेगा, जिससे कि हाथ से फिसले और इस प्रकार हाथ से निकल जाय। इसके बाद यदि उसको हाथ में भद्देपन के साथ रक्खा जाय या ज्यादा देर तक पकड़ा जाय तो इसमें से एक दूसरे प्रकार का रस निकलेगा। अबकी बार का रस पहले से कम स्वच्छ तथा स्निग्ध होगा, किन्तु यह होगा, एक प्रकार का विष। एक लेडी ने न्यूट की दुम दाँत से मृदुता से दबाई तो उसे ज्ञात हुआ कि यह रस कड़वा है, इससे गला सूज गया और कई घंटे तक सिर-दर्द हुआ।* इसी प्रकार क्रिया के रूप में कई प्रकार के लक्षण छोटे से छोटे प्राणियों में देखे जाते हैं। निरीक्षण तथा प्रयोगों से ज्ञात हुआ है कि इस प्रकार पसीना छूटना, रंग बदलना आदि सब क्रियायें ग्रन्थि की हैं, इनमें मस्तिष्क या दिमाग का कोई परिचय नहीं। हां, ये सभी बातें पैवलौफ़ के स्वाभाविक प्रतिक्रिया (Unconditioned reflex या Absolute Reflex) के दायरे में मजे में आ जाती हैं

जब हम जीवन के सोपान में इससे आगे बढ़ते हैं, तब देखते हैं कि इस प्रकार ग्रहणशीलता और प्रतिक्रिया (Receptivity and response) में एक प्रकार का ह्रस्व क्षणस्थायी सम्बन्ध होने के बजाय अब उनमें जटिल तथा दीर्घ सम्बन्ध स्थापित होता है। ये जटिल सम्बन्ध उन्हीं प्राणियों में दिखाई पड़ते हैं जिनमें मस्तिष्क तथा रीढ़ का विकास हुआ है। थोड़े में कहा जाय तो यह यन्त्र ऐसा होता है जैसे टेलीफोन के तार। एक तरफ तो खबर मस्तिष्क तक पहुँचाना स्नायुओं का काम है, दूसरी तरफ केन्द्र से ग्रंथि, पेशी आदि के लिये हुक्म चलते हैं। †केन्द्रीय स्नायुपुंज में जो खबरें आती हैं

---

*Ibid, p. 671.

†Simple Science by Andrade & Huxley, p. 242,

उनको वज़न किया जाता है, फैसले किये जाते हैं, और उपयुक्त हुक्म भेजे जाते हैं।

एककोष प्राणी एमीबा को लिया जाय। उसमें ऊपर गिनाई हुई तीनों तरह की क्रियायें हैं, याने वह उत्तेजनाओं के प्रति ग्रहणशील है, उनके प्रति वह प्रतिक्रिया भी करता है, और उसका अंग उसके अनुसार कार्य भी करता है, किन्तु इन कार्यों में वह पारस्परिक सम्बन्ध नहीं होता जैसा कि उच्च प्राणियों में होता है याने उन प्राणियों में होता है जिनमें रीढ़ तथा मस्तिष्क का विकास हुआ है। हां, यह कहा जा सकता है कि व्यवहार के प्राथमिक ढंग को बहुत ही उप्त रूप से एमीबा में हम देख सकते हैं।

इस प्रकार मार्क्सवाद जो कुछ मनुष्य के मन के सम्बन्ध में कहता है वह विज्ञान के आधार पर अवलम्बित है।

इसी प्रकार विकासवाद के सिद्धान्त के अनुसार हम मार्क्सवाद के इस सम्बन्ध के दूसरे सिद्धान्त को समझ सकते हैं, वह यह है कि हमारे विचार हमारे अस्तित्व से उद्भूत होते हैं न कि यह कि हमारे विचारों से हमारा अस्तित्व बनता है। जैसा कि हम देख चुके हैं कि ऐतिहासिक रूप से यह मिथ्या है कि हमारा अस्तित्व हमारे विचार के द्वारा निर्मित या परिचालित होता है। इस बात को साबित करने के लिये यह साबित करना जरूरी था कि यह साबित किया जाता कि अस्तित्व के पहले विचार थे। सच बात तो यह है कि भौतिक अस्तित्व के बगैर विचार का वर्त्तमान होना ही असंभव है। न मन शरीर से स्वतंत्र हो सकता है न विचार अस्तित्व से। जो कुछ हम देख चुके हैं उसके अनुसार मन और शरीर का पृथकीकरण बिलकुल हास्यास्पद है। पैवलौफ़, फ्रायड, एडलर, युङ किसी को भी लीजिये उनमें से एक भी इस बात को नहीं मान सकते। मन और शरीर को बिलकुल एक दूसरे से

पृथक करने तथा दोनों को दो दुनिया की चीज़ मानने के दो ही ढंग हो सकते थे। एक यह कि शरीर है, मन है ही नहीं। ऐसा फ्रैंच भौतिकवादियों ने किया। उन्होंने कहा मन है ही नहीं, जो कुछ है सो शरीर ही शरीर है। बर्कले ने इसके विरुद्ध कहा मन ही मन है, मन चूँकि अपनी ही प्रतिच्छवि को ही जान सकता है, इसलिये मन के अलावा किसी बात का अस्तित्व ही नहीं है, यदि है तो वह चिरन्तन के मन में है। केवल स्पिनोज़ा ने ही इन दोनों धाराओं के साथ न्याय करने की चेष्टा की है, और कहा कि मन और पुद्गल matter दोनों एक उच्चतर वास्तविकता के दो पहलूमात्र हैं। देकार्त (Descartes) ने बहुत से दार्शनिकों के साथ द्वैतता मान ली थी, उसने कहा था एक तो ईश्वर स्वयं है, और एक उसके द्वारा सृष्ट विश्व है। देकार्त ने कहा था पूर्णता से सब चीजें आती हैं, स्पिनोज़ा ने कहा था कि यह तो एक गुण है, किन्तु काहे की पूर्णता ? स्पिनोज़ा ने कहा यह Substance है, जिसका यह गुण हो सकता है, कोई चाहे तो इसको परमेश्वर कह सकता है।

इन दार्शनिकों की उड़ानों के पीछे पड़ने के बजाय, क्योंकि ये सब उड़ानें ही हैं, हमें यह देखना चाहिए कि इस विषय में विज्ञान का क्या कहना है। करीब बीस लाख वर्ष पहले हमारे सूर्य के दायरे में एक बड़ा नक्षत्र आया। इस आगमन का परिणाम यह हुआ कि एक बड़े ज़ोर का उफ़ान सूर्य में आया। जिस समय यह आगन्तुक दूर हट गया, उस समय उसने इतने ज़ोर से खींचा कि वह जो उफना हुआ हिस्सा पहाड़ की शक्ल में था टूटकर टुकड़े टुकड़े हो गया। ये टुकड़े ही जाकर विभिन्न ग्रहों में परिणत हो गये

---

*Dialectical Materialism by Shirkoff p.44.

‡History of Philosophy by George Henry James p. 361.

अब सूर्य के ऊपरी हिस्से का उत्ताप ६,००० सेन्टिग्रेड है। सूर्य के अन्दरूनी हिस्से की गर्मी इससे भी कहीं अधिक है। जो सबसे गरम भट्टी अब तक तयार हो सकी है उसमें हम इससे आधी गर्मी को मुश्किल से पहुँच सकते हैं। फिर भी ये टुकड़े धीरे-धीरे शून्य के संस्पर्श में आकर ठंडे हो गये। धीरे-धीरे इसी पर जीवन का उद्भव हुआ। सर जेम्स जीन्स कहते हैं—"यह उद्भव कैसे हुआ और कब हुआ हम नहीं जानते। जीवन का सूत्रपात बहुत ही सरल शरीरपन के रूप में हुआ, याने वे केवल अपनी नस्ल को कायम रख सकते थे और मर सकते थे। × शून्य इतना ठन्डा है कि उसमें सभी प्रकार का जीवन जमे बगैर नहीं रह सकता, फिर पुद्गल इतना गर्म है कि उसमें जीवन असंभव है। ××× जिन क्षेत्रों में जीवन सम्भव है, उन सब का जोड़ मुश्किल से विश्व का $\frac{१}{१०००००००००००००००}$ भाग होगा।"‡ इससे ज्ञात हो गया कि अस्तित्व पहले से मौजूद था, पुद्गल पहले से मौजूद था, जीवन बाद को उत्पन्न हुआ। मानसिक यन्त्र उससे भी बाद को उन्पन्न हुआ होगा। इस प्रकार विचारों के पहले अस्तित्व का होना विज्ञान से प्रमाणित है।

अब देखा जाय कि जीवन है क्या? क्या हम इसको वस्तु या पुद्गल से परे कुछ कहेंगे? इस पर विज्ञान का मत सुन लिया जाय। "एक विचार के लोग यह कहते हैं कि जैसे-जैसे पृथ्वी ठण्डी होती गई, तैसे तैसे यह स्वाभाविक बल्कि अनिवार्य हो गया कि उस पर जीवन का उद्भव हो। दूसरे विचार के लोगों का कहना है कि जैसे एक आकस्मिक

---

*The Mysterious Universe by James Jeans, p. 1.

†Simple Science by Andrade & Huxley, p. 303.

‡The Mysterious Universe by Jeans, pp. 1-3.

कारण से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई, वैसे ही एक दूसरे आकस्मिक कारण से जीवन की उत्पत्ति हुई। जीवन के भौतिक उपादान साधारण रासायनिक अणु (Atom) है, जैसे कार्बन जिसे हम पानी में पाते हैं, नाइट्रोजन जिससे कि हमारे वातावरण का अधिकांश हिस्सा बना है, हाइड्रोजन और आक्सिजन जैसा कि पानी में हम पाते हैं। नवजात पृथ्वी पर जीवन के लिए जरूरी प्रत्येक अणु मौजूद रहा होगा। × एक सदी पहले तक यह समझा जाता था कि कोई न कोई जीवनप्रद शक्ति (Vital force) है जिससे जीवित शरीरयन्त्र का निर्माण होता है। इसके बाद वोलेर (Wohler) ने यूरिया ($CO(NH_2)2$ नामक शरीरोपादान की अपनी प्रयोगशाला में रासायनिक समन्वय की साधारण प्रक्रिया से सृष्टि की। इसी प्रकार जीवित शरीर के अन्य उपादानों की सृष्टि एक के बाद एक होती गई। आज एक के बाद एक उन तमाम लक्षणों (Phenomena) को जिनको पहले जीवन-प्रद शक्ति से उद्गत समझा जाता था, उनको मामूली रासायनिक समन्वय की प्रक्रिया से उद्भूत पाया जा रहा है। यद्यपि यह समस्या अभी हल नहीं हुई है, फिर भी इस बात की सम्भावना बढ़ती जा रही है कि जीवित शरीरयन्त्र के पुद्गल की विशेषता किसी 'जीवनप्रद शक्ति' के कारण नहीं है, बल्कि बिल्कुल साधारण उपादान कार्बन के कारण हैं, जो सर्वदा दूसरे अणुओं के साथ संयुक्त होकर बहुत बड़े मोलिक्युल (Molecule) बनाता है।"*

इस प्रकार विज्ञान ने जितना भी जाना है उससे कहीं पर भी मार्क्सवाद का मन तथा जीवन की उत्पत्ति सम्बन्धी सिद्धान्त कटता नहीं है, बल्कि पुष्ट ही होता जा रहा है। मार्क्सवाद इस प्रकार यह मानने पर भी कि विचार अस्तित्व से उद्भूत होते हैं, यह नहीं कहता कि विचारों की कोई शक्ति ही

*Ibid, p. 5.

नहीं होती, बल्कि मार्क्सवाद के अनुसार विचारधारा सामाजिक-आर्थिक कारणों से उद्भूत होने पर भी, जब वह एक बार उत्पन्न हो जाती है तो वह स्वयं एक शक्ति हो जाती है। उसकी यह शक्ति इतनी ज़बर्दस्त हो सकती है कि जिन सामाजिक-आर्थिक कारणों से उनकी उत्पत्ति हुई, उनका निराकरण होकर उनकी जगह पर दूसरी सामाजिक-आर्थिक अवस्था आ जाने पर भी वे क़ायम रहने के लिए चेष्टित होती हैं, और आगामी समाज को पीछे की तरफ़ घसीटती हैं। इस प्रकार मार्क्सवाद के विरुद्ध यह दोष लगाना कि वह विचारों को कोई महत्व नहीं देता ग़लत है। वह केवल कहता है कि विचारधारायें आर्थिक-सामाजिक कारणों से पैदा होती हैं, और उन्हीं के कारण उनका विलय होकर फिर दूसरी विचारधारा आती है।

विचार और अस्तित्व के सम्बन्ध में मार्क्सवाद के विचारों को एंगेलस ने ऐन्टी-ड्यूरिंग में अत्यन्त संक्षेप में बड़ी खूबी से व्यक्त किया है। "तार्किक परियोजनायें केवल विचारों के स्वरूप को जान सकती हैं किन्तु हम जिस बात पर यहा विचार कर रहे हैं वह है अस्तित्व का स्वरूप, याने बाहरी दुनिया का स्वरूप। बाहरी दुनिया के स्वरूप का विचार न तो अपने अन्दर से प्राप्त कर सकते हैं न निर्माण कर सकते हैं। बाहरी दुनिया से ही बाहरी दुनिया के स्वरूप प्राप्त हो सकते हैं। इस प्रकार सारा सम्बन्ध ही परिवर्तित हो जाता है, सिद्धान्त अब खोज का प्रारम्भविन्दु नहीं रह जाते, बल्कि उसके अन्तिम परिणाम ठहरते हैं। वे प्रकृति तथा मानवेतिहास पर लागू नहीं किये जाते हैं, बल्कि उनसे निकाले जाते हैं। प्रकृति तथा मानवता के क्षेत्र इन सिद्धांतों को मानकर नहीं चलते, बल्कि ये सिद्धांत वहीं तक सही होते हैं जहाँ तक कि वे प्रकृति तथा इतिहास का अनुसरण करते हैं मैटर या पुद्गल की यही एकमात्र भौतिक धारणा है। और महाशय ड्यूरिंग की विरुद्ध धारणा भाववादी है और चीज़ों को बिलकुल उनके सिर पर खड़ी कर देती है, वास्तविक जगत को विचारों, परियोजनाओं, योजनाओं

तथा श्रेणियों को विश्व की सृष्टि से पहले से, अनन्तत्व से, एक हेगेल की तरह प्राप्त करता है। ऐसा परिणाम इसलिए होता है कि वे स्वाभाविक तौर पर 'चेतना' 'बुद्धि' को पहले से दी हुई चीज के रूप में मान लेते हैं, ऐसी चीज जो पहले से अस्तित्व के तथा प्रकृति के आमने-सामने रख लेते हैं। यदि यह बात ठीक होती, तो विचार और अस्तित्व, चेतना और प्रकृति, विचार तथा प्रकृति के नियम इतने मिले जुले हैं यह एक ध्यानयोग्य बात है। किन्तु यदि इसके आगे यह प्रश्न उठाया जाय, विचार और चेतना हैं क्या, वे कहाँ से आते हैं, तो यह साफ़ हो जाता है कि वे मानवीय मस्तिष्क की उपज हैं, और मनुष्य स्वयं प्रकृति की उपज है, जो प्राकृतिक परिस्थितियों में और उनके साथ विकसित हुआ है। इससे यह साफ़ हो जाता है कि मनुष्य-मस्तिष्क की उपज भी अन्तिम विश्लेषण में प्रकृति की ही उपज है, बाक़ी प्रकृति के साथ उनका विरोध नहीं है, बल्कि वे उनके साथ सम्बन्धित हैं।"*

अब एक ठोस उदाहरण लिया जाय जिससे कि यह समझ में आ सके कि ऊपर कही हुई बातों का मनुष्य-व्यवहार के सम्बन्ध में व्यावहारिक प्रयोग क्या है। पहले ज़माने में संसार में किसी-किसी जाति में लड़ाई के क़ैदियों को मार डालने की प्रथा थी, और किसी में यह प्रथा थी कि लड़ाई के कैदियों को गुलाम बनाकर उनसे काम लिया जाता था। अब व्यवहार की इस विभिन्नता पर कोई भी अमार्क्सवादी यह कहेगा कि यह प्रभेद इस कारण था कि एक जाति के लोग दयालु थे और दूसरी जाति के लोग ख़ूँख्वार थे, इस कारण वे बन्दियों को मार डालते थे या खा डालते थे, किन्तु देखा जाय तो यह कोई व्याख्या ही नहीं है। व्यवहार में इस प्रभेद के सही कारण का पता लगाने के लिए उन जातियों की सामाजिक-

*Anti-Duhering, Part I.

आर्थिक अवस्था, तथा उनकी उत्पादन पद्धति की जाँच करनी पड़ेगी। ऐसा करने पर मालूम होगा कि जिस जाति में लड़ाई के क़ैदियों को मार डालने या खा डालने की प्रथा थी, उनकी उत्पादन पद्धति इतनी अनुन्नत थी कि वे बन्दियों को जीवित रख ही नहीं सकते थे। उनकी उत्पादन-पद्धति ऐसी थी कि उन्हीं का खाना-पीना या गुज़ारा मुश्किल से होता था। वे भला इन दुश्मनों का बोझा अपने समाज पर कैसे लादते। फलस्वरूप वे उनको मार डालने के लिये मजबूर थे। इसके विरुद्ध जिनमें उत्पादन-पद्धति उन्नत अवस्था में थी, और नये हाथों के आने से उनकी और उन्नति हो सकती थी, वे लड़ाई के बन्दियों को झट अपनी उत्पादन पद्धति के अन्दर कर लेते थे। इसमें दया और क्रूरता की कोई बात नहीं थी।

नैतिकता में लोग यौन-नैतिकता को ही सबसे महत्वपूर्ण समझते हैं, किन्तु यौन-नैतिकता की धारणा भी आर्थिक-सामाजिक कारणों से उद्भूत है। कहीं कोई रिवाज है, तो कहीं कोई और, किन्तु इन सबको खोजने पर हमेशा ये ही कारण प्राप्त होंगे। "विवाह के तीन प्रधान तरीके हैं, और ये तीन तरीके मुख्यतः अब तक मानव-विकास के जो तीन सोपान हैं, उन से मिलते हुए हैं। जंगलीपन की अवस्था के लिए सामूहिक विवाह था, उसके बाद के युग याने बर्बर युग के लिए जोड़े का विवाह (Pairing marriage) था, सभ्यता के युग के लिये एक विवाह हुआ किन्तु इसके साथ-साथ व्यभिचार और वेश्यावृत्ति लगी है। जोड़े के विवाह के युग तथा एक विवाह के बीच में जो युग था, उसमें पुरुष को दासी तथा बहुपत्नीत्व का अधिकार था।"* इस दृष्टि से देखने पर यह मालूम होगा कि स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध समाज में कैसा होगा या है यह सम्पूर्ण रूप से सामाजिक-आर्थिक

*The Origin of Family, Private Property and the State, Ch. II.

कारणों तथा अवस्थाओं पर निर्भर है। Sex तो हमेशा से मौजूद है, पुरुष और स्त्री को परस्पर की देह की लालसा तो चिरन्तन है, फिर दूर जाने की जरूरत नहीं, यौन-नैतिकता (Sex-morality) के सम्बन्ध में धारणायें इतनी बदली हुई क्यों हैं? कभी तो सामूहिक विवाह है, तो कभी एकविवाह है। इसकी फ्रायड के पास क्या व्याख्या है? स्पष्ट है कि जैसा कि फ्रायड के मत के बहुत ही विस्तार के साथ प्रतिपादन में भी देख चुके इसका कोई उत्तर फ्रायड नहीं देते। सच बात तो यह है कि फ्रायड मानव को सामाजिक प्राणी के रूप में कम देखते हैं। इस मामले में उनका शिष्य—सहयोगी—और फिर प्रतिद्वन्दी ऐडलर कहीं अधिक सामाजिक दृष्टिसम्पन्न मालूम होते हैं।

फ्रायड का इस सम्बन्ध में जो कुछ कहना हो सकता है, वह यही है कि एडिपस जटिलता के प्रति मनुष्य की प्रतिक्रिया बदलती गई, इसलिए उसके सुपरएगो (Superego) या नैतिक या आदर्शवादी स्व का विकास दूसरे तरीके से होने के कारण ही यह परिवर्तन हुआ है। किन्तु प्रश्न तो यह है कि ऐसा क्यों हुआ? इसका फ्रायड के पास कोई उत्तर नहीं है। फिर केवल आदर्शवादी स्व ही तो नहीं बदला, इड भी बदल रहा है, एगो भी। इसके उत्तर के लिए हमें आर्थिक-सामाजिक कारणों की शरण लेनी पड़ेगी। इस प्रकार विचार करने पर हमें ज्ञात होगा कि समाज की तह में जो परिचालिका शक्ति है, वह यौन प्रवृत्ति या मैथुनात्मक प्रवृत्ति नहीं हो सकती, चाहे हम इस शब्द को जितना भी विस्तृत अर्थ में ले लें, बल्कि वह शक्ति कुछ दूसरी ही है। मार्क्स तमाम इतिहास की छानबीन करने पर इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि इतिहास के पीछे यह परिचालिका शक्ति उत्पादन-प्रणाली में विकास है। यह विकास एक ऐतिहासिक तथ्य है, कोई कपोल-कल्पना नहीं। इसको तर्कों से प्रमाणित करने की आवश्यकता नहीं।

इतिहास के सम्बन्ध में मार्क्स की जो भौतिक धारणा है, उसको यदि हम प्रसारित करें तो उसका जो मतलब निकलता है वह यह है कि रहन-सहन के प्राप्त भौतिक साधन के प्रति जीव जिस प्रकार प्रतिक्रिया करता है, उसी पर उसका अगला विकास निर्भर है। मनुष्य की विशेषता यह जरूर है, बल्कि मनुष्य अपने को पशुओं से तभी विशिष्ट कर लेता है जब कि वह अपने जीवन धारण के साधन उत्पन्न करना प्रारम्भ कर देता है, और यह इसलिए सम्भव होता है कि मनुष्य के शारीरिक अवयवों का संगठन इस प्रकार हुआ था कि वह इस प्रकार की उन्नति कर सकता था। इस प्रकार अपने जीवन धारण के साधनों का उत्पादन कर मनुष्य परोक्ष रूप से अपने भौतिक जीवन को ही बनाता है।* पशु, पक्षी तथा अन्य प्राणधारी इस प्रकार अपने जीवन के साधन का न तो उत्पादन ही कर सकते हैं, न इसलिए उनके बारे में यह कहा ही जा सकता है कि वे प्रकृति पर काम करने के दौरान में प्रकृति को बदल देते हैं और साथ ही साथ स्वयं भी बदलते जाते हैं, किन्तु यह जरूरी है कि शरीर धारण के साधनों के उपलब्ध प्रति वे भीप्रतिक्रिया करते हैं, उसके लिए अपने को योग्य बनाते हैं (Adapt)। इस क्षेत्र में अपनी परिस्थितियों के प्रति अपने को योग्य बनाना यह उस प्रकार की क्रिया नहीं है जैसे मनुष्य एक मकान बनाकर धूप और वर्षा के लिए अपने को योग्य बनाता है, क्योंकि डैने का निकल आना, फेफड़े का ख़ास तरीके का बन जाना आदि कोई न तो वैयक्तिक इच्छा से ही होता है, और न एक आध पुश्त में ही होता है। फिर भी प्रत्येक जीव उपलब्ध साधनों के प्रति प्रतिक्रिया कर जीता है, और कितना भी असंगठित तथा आणविक तरीके से सही अपनी परिस्थितियों को प्रभावित करता है, याने सम्पूर्ण रुप से उनके आधीन नहीं रहता, और इस प्रकार कहा जा सकता है कि अपने को परिवर्तित करने में उसका भी हाथ

*German Ideology by Marx.

होता है। इस व्यापक तरीके पर जैसे हमने मार्क्सवाद की व्याख्या की है व्याख्या करने पर इतिहास की भौतिक व्याख्या मनुष्यमात्र तक सीमित न रह कर प्राणीमात्र पर लागू होती है, किन्तु फ्रायड की व्याख्या को कितना भी विस्तृत करके हम कल्पना क्यों न करें वह प्राणीमात्र पर लागू नहीं हो सकती।

टी० ए० जैक्शन ने अपनी Dialectics नामक पुस्तक में फ्रायडवाद को चार हिस्सों में बाँटा है : (१) मनोविकार तथा मानसिक रोगों की चिकित्सा करने का यह एक व्यावहारिक साधन है, (२) यह मानसिक प्रक्रियाओं के सम्बन्ध में एक अतिप्राकृतिक (Metaphysical) सिद्धान्त है जिसके द्वारा फ्रायड ने अपने मनोविकार चिकित्सा-सम्बन्धी उपाय के परिणामों को एक सिद्धान्त का रूप देने की चेष्टा की है, (३) यह मनुष्य समाज की प्राकृतिक तथा उत्पत्ति और समाज के अन्दर नैतिक सम्बन्धों के सम्बन्ध में एक अति प्राकृतिक सिद्धान्त है, (४) द्वितीय और तृतीय हिस्से में ज्ञान-सम्बन्धी तथा विचारों की प्रकृति और उत्पत्ति-सम्बन्धी एक सिद्धान्त भी अन्तर्निहित है। कहना न होगा कि इस रूप में फ्रायड के सिद्धांत विशेषतः उनके अन्तिम तीन साध्य हमारे लिए ग्रहणीय नहीं हो सकते। जैक्शन ने यह भी बतलाया है कि फ्रांस में जाने (Janet) तथा इंगलैंड में माँडस्ले (Maudsley) के सिद्धांत से भी मनोविकार की चिकित्सा उसी प्रकार सफलता के साथ हुई है, इससे फ्रायड के सिद्धांत को विशेषकर वे उस पर जो पुट देते है, उसे निर्भ्रान्त करके मानना सम्भव नहीं है। इसके अतिरिक्त जैसा कि हम देख चुके हैं फ्रायड के शिष्य ऐडलर और युंग उनसे बिलकुल अलग हो गये फिर भी उनके तरीके से मनोविकारों की चिकित्सा सफलतापूर्वक होती है, फिर इन शिष्यों के भी शिष्यगण अलग-अलग मत लेकर चलते हैं, फिर भी जहां तक मनोविकार की चिकित्सा का सम्बन्ध है वे सफल रहे। स्वयं मार्क्स पर फ्रायड का सिद्धांत लागू कर आटोरिले ने यह बतलाया कि चूँकि तीस साल उम्र के बाद

वे यकृत रोग से पीड़ित रहते थे, इसलिए उन्होंने मर्क्सवाद का प्रतिपादन किय हम इस मत की कुछ आलोचना करते किन्तु जैक्शन ने यह जो लिख दिया कि मार्क्स ने अपने मुख्य सिद्धांतों का प्रतिपादन २५-२६ साल उम्र के अन्दर किया, इससे इस तर्क में कोई दम नहीं रह जाता। फिर भी हम फ्रायड की आलोचना इतने विस्तार के साथ करने पर मजबूर हुए हैं, उसका कारण यह है कि बहुत से लोग इसे मार्क्सवाद की एक प्रतिद्वन्दी व्याख्या के रूप में खड़ी करने की अपचेष्टा करते हैं।

बहुत से प्राणियों में जिसे Sex या मैथुन कहते हैं, वह है ही नहीं। यह बात सच है कि अधिकांश प्राणियों में प्रजनन मैथुन से होता है, किन्तु ऐसे भी प्राणी हैं जिनमें प्रजनन अमैथुनात्मक (Asexual) तरीके से होता है। प्रजनन का आदिमतम तरीका अपने को दो में विभक्त कर देना है; इसको वैज्ञानिक भाषा में Binary fission या द्विधाकरण प्रक्रिया कहते हैं। ऐसी प्रक्रिया में जो पूर्वपुरुष (या स्त्री ?) है, वह नहीं मरता। वंशज पैदा हो जाता है, पूर्वपुरुष खतम हो जाता है, मरता नहीं, केवल दो हिस्सों में विभाजित दो विभिन्न व्यक्ति में परिणत भर हो जाता है। कीटाणु (Bacteria) इसी प्रकार बढ़ते हैं। प्रजनन की द्विधाकरण प्रक्रिया केवल एककोष-प्राणियों तक ही सीमित है ऐसा नहीं। बहुत से सामुद्रिक ऐनीमोन (anemone), पोलिप (polyp) तथा प्लैनारियन (planarians) इसी प्रकार प्रजनन करते हैं। द्विधाकरण के अतिरिक्त एक दूसरी प्रक्रिया है जिसे बहुधाकरण कहेंगे। इस प्रक्रिया के अनुसार प्रजनन करनेवाले प्राणी अपने को एक साथ बहुत से टुकड़ों में बाँट देते हैं, और इसमें से हरेक टुकड़ा एक अलग प्राणी हो जाता है। यह तरीका कई प्राणियों में जैसे फोरामिनिफेरा, बड़ा ऐमीबा तथा मैलेरिया के कीड़ों में प्रचलित है। एक अन्य तरीका अमैथुनात्मक प्रजनन का यह है कि द्विधाकरण तो होता है, किन्तु एक टुकड़ा बहुत बड़ा होता है और एक छोटा। पीछे का हिस्सा जो अलग

होता है वह छोटा होता है। इस प्रकार बड़ा हिस्सा अपना पूर्व व्यक्तित्व कायम रखता है; छोटा हिस्सा बड़ा होने के दौरान में अपना व्यक्तित्व विकसित कर लेता है। यह तरीका Flatworms तथा ऐनेलिड (Annelid) नामक कीड़ों में प्रचलित है। इसी प्रकार स्पंजों की उत्पत्ति अमैथुनात्मक तरीके से होती है।* हमें यहां इन सब के ब्यौरे में जाने की ज़रूरत नहीं।

मालूम होता है यह विचार कि बिना मैथुन के ही उत्पत्ति हो सकती है महाभारतकार को किसी न किसी रूप में ज्ञात था। शान्तिपर्व में भीष्मजी भगवान् विष्णु से विश्व की उत्पत्ति बताते हुए कह रहे हैं, "(सत्ययुग में) सन्तान उत्पन्न करने के लिए भी उन्हें मैथुन धर्म में प्रवृत्त होने की आवश्यकता नहीं थी। वे संकल्पमात्र से प्रजा की उत्पत्ति कर सकते थे। इसके बाद त्रेतायुग आने पर भी मैथुन धर्म का प्रचार नहीं हुआ। उस समय स्पर्श करने से ही प्रजा उत्पन्न हो जाती थी। द्वापर युग में मैथुन द्वारा प्रजा उत्पन्न होने लगी, और कलियुग में सब लोग दाम्पत्यपूर्वक रहने लगे।" अनुवाद गीता प्रेस पृ० १३१२) रक्तबीज जो कटने पर उतने हिस्सों में फिर से जीवित हो जाता था, जितने हिस्सों में वह काटा जाता था यह भी विचार इसी तरह का है। विष्णुपुराण में (१।१५ ७८-७०) यह लिखा है कि दक्ष के समय से ही प्रजा का मैथुन द्वारा उत्पन्न होना आरम्भ हुआ। उससे पहले तो अत्यन्त तपस्वी प्राचीन सिद्ध पुरुषों के तपोबल से उनके संकल्प, दर्शन अथवा स्पर्शमात्र से ही प्रजा उत्पन्न होती थी।

इस प्रकार जब हम देख रहे हैं कि बहुत से प्राणियों में Sex है ही नहीं, तो वह भला उनके व्यवहारों की कैसे व्याख्या कर सकता है। स्पष्ट है कि फ्रायड की यह व्याख्या वहां लागू नहीं हो सकती है, हां, यहाँ पर यह कहा जा सकता है कि जब आप मार्क्सकृत इतिहास की आर्थिक व्याख्या को

खींचकर भौतिक व्याख्या और फिर उसे खींचकर एककोष प्राणी तक लागू कर सकते हैं जिनमें न कोई आर्थिक पद्धति है न उसके होने की कल्पना ही की जा सकती है, तो फिर उसी प्रकार से क्या फ्रायड की व्याख्या को खींचा नहीं जा सकता? इसका साफ उत्तर है नहीं। जब मैथुनात्मक Sex है ही नहीं तो फिर उनके व्यवहार की मैथुनात्मक व्याख्या कैसी? हाँ, यदि हम तुल ही जायँ और कहें कि मैथुनात्मक प्रकृति तथा शारीरिक संगठन न सही, जब प्रजनन है तो हम उसी को लेकर चलेंगे, तो भी हमें निराशा का सामना होगा, क्योंकि फिर वहां जाकर हम एक ऐसी जगह पहुँच जाते हैं जहां फ्रायड की मैथुनात्मक व्याख्या इतिहास की भौतिक व्याख्या होकर रह जाती है।

प्राणीमात्र तक फ्रायड तथा मार्क्स दोनों के मतवादों को लागू करने की चेष्टा से यदि हम फिर एक बार मनुष्य जगत में लौटें तो हमें ज्ञात होगा कि फ्रायड न्युरोसिस या स्नायुविकृति की व्याख्या तथा इलाज करने में कितने भी सफल रहे हों, क्रान्तियां तथा लड़ाइयाँ क्यों हुई हैं तथा होती हैं यह तो उनकी व्याख्या के बाहर है। रामायण, महाभारत या ट्राय की लड़ाई को हम भले ही मैथुनात्मक तरीके से व्याख्या करने की अपचेष्टा करने में कुछ सफल भी हो सकें, किन्तु यह कौन कहेगा कि १९१४-१८ की लड़ाई, या १९०४ का रूस-जापान युद्ध या क्रीमियन युद्ध ऐसे किसी मैथुनात्मक कारण से व्याख्येय हैं? यह हमें मालूम है कि इन घटनाओं की मार्क्सवादी व्याख्या कितनी मार्मिक है, और अब करीब-करीब सर्वजनग्राह्य हो चुकी है। इस पर यह कहा जा सकता है कि न सही मनुष्य के सामाजिक आर्थिक जीवन में, व्यक्तिगत जीवन में सेक्स या मैथुनात्मक प्रवृत्ति ही सब कुछ है जैसा कि फ्रायडकृत स्वप्न की व्याख्या तथा स्नायुविकार के इलाज से प्रयोगात्मक तरीके से साबित है। इस सम्बन्ध में पहली बात तो यह है कि एडलर ने फ्रायड से अलग प्रवृत्ति को आधार मानकर प्रारम्भ किया, स्वप्न

की व्याख्या दूसरी पद्धति से की, फिर भी स्नायुविकार का इलाज करने में सफल रहे। इस प्रकार इतना तो हो ही गया कि फ्रायड की बात को स्वप्न तथा स्नायुविकार के क्षेत्र में भी निरवच्छिन्न एकमात्र सत्य मानने की आवश्यकता नहीं। फिर यह भी इस सम्बन्ध में याद रहे कि ऐडलर के अतिरिक्त फ्रायड के क्षेत्र में फ्रायड के अन्य प्रतिद्वंदी मौजूद हैं। हाँ, कोई कट्टर फ्रायडवादी यह कह सकता है कि मार्क्स के अनुसार स्वप्न की क्या व्याख्या है, क्या किसी मार्क्सवादी ने किसी स्नायुविकृतिग्रस्त व्यक्ति का अपनी पद्धति के अनुसार इलाज किया है? ये प्रश्न बहुत गंभीर हैं, और इनको भुलझाये बिना मार्क्सवाद अपने को एक सर्वाङ्गपूर्ण पद्धति करके स्थापित नहीं कर सकता।

जिन्होंने इसके पहले आये हुए मार्क्सवाद के विवरण को पढ़ा है, उनको स्मरण होगा कि मार्क्सवाद यह कभी भी नहीं कहता कि आर्थिक शक्तियों का ही शुरू से आखिर तक बोलबाला रहता है। दूसरी गौण शक्तियां उनसे उद्भूत होती हैं, और मनुष्य व्यवहार को नियन्त्रित करती हैं। सेक्स या मैथुन-प्रवृत्ति (चाहे आप उसे विस्तृत अर्थ में लें चाहे संकुचित अर्थ में) एक प्राकृतिक प्रवृत्ति है, किन्तु हमारे सामाजिक-आर्थिक ढाँचे में उसकी परितृप्ति बाधाग्रस्त होती है, सहज हो जाती, विलम्बित होती है। इसके दौरान में मन पर असर पड़कर मन विकृत हो सकता है, उस समय मन का इलाज मन के लिए उपयुक्त तरीके से करना पड़ेगा। एक उदाहरण लिया जाय, आर्थिक कारण से याने धन के विषम विभाजन के कारण एक आदमी के पास पैसे नहीं रह जाते, भूख के कारण वह ऐसे कीड़े मकोड़े खा लेता है जिससे उसको पेचिश हो जाती है। अब यदि कोई कहे कि उसकी पेचिश की तह में आर्थिक सामाजिक कारण है, तो वह ठीक है इसमें सन्देह नहीं, किन्तु साथ ही पेचिश का इलाज तब तक रोक रखना जब तक कि आर्थिक विषमता दूर होकर साम्यवाद की स्थापना न हो मूर्खता होगी। अवश्य ही पेचिश का इलाज चिकित्साशास्त्र के अनुसार होगा न कि मार्क्सवाद के अनुसार। कोई यदि यह जिद करे कि

नहीं मार्क्सवादी पेचिश का इलाज करे और उसको आराम करे, नहीं तो उसका कहना गलत है कि उसके कीड़े मकोड़े खाने के पीछे सामाजिक आर्थिक कारण है, बिल्कुल बचपन होगा, साथ ही एक व्यक्ति की पेचिश चिकित्साशास्त्र के अनुसार जरूर आराम की जा सकती है, किन्तु जिन हजारों आदमियों को किसी को पेचिश, किसी को रक्ताल्पता, किसी को अल्पायुता किसी को कुछ हुआ है, उनका सबका सामूहिक इलाज तभी संभव होगा जब कीड़ा खाने का मूल कारण दूर कर दिया जाय याने आर्थिक विषमता दूर कर दी जाय।

इसी प्रकार पहिले के उदाहरण को लिया जाय, एक स्नायुविकारग्रस्त (neurotic) को लिया जाय तो उसका मानसिक इलाज किया जाय, जैसा कि हम फोड़े का इलाज करते हैं। यह इलाज चाहे फ्रायड के तरीके के अनुसार हो चाहे ऐडलर या किसी प्रयोगामिक दूसरे तरीके से, जैसे पेचिश का इलाज हम होम्योपैथी से कर सकते हैं और यूनानी से भी इससे कुछ आता-जाता नहीं। इधर-उधर की बात न कर स्नायुविकार को ही लिया जाय। फ्रायड का इस रोग के सम्बन्ध में कहना यह है —"No neurosis—actual neurosis, I meant-is present where sexual life is normal. It is true that this statement ignores the individual differences in people rather too much and it also suffers from the indefinite connotation inseparable from the word "normal" but as a broad outline it has retained its value to this day." *याने "कोई भी स्नायुविकार—मेरा मतलब प्रकृत स्नायुविकार से है तब तक नहीं होता जब तक मैथुनात्मक जीवन सही हो।

*Ordinary Nervousness 24th lecture by Freud in Lectures on Psychoanalysis, p. 322.

यह सच है कि इस बयान में वैयक्तिक विभिन्नतायें बहुत अधिक अवज्ञात होती हैं, फिर इसमें सही शब्द के आ जाने से और भी गड़बड़ी पैदा हो गई है क्योंकि इसका अर्थ अनिश्चित है, किन्तु फिर भी मोटे तौर पर स्नायुविकार के बारे में यह बयान अब तक तो सही ही है।" अब यहां पर पूछा जा सकता है कि मनुष्य का मैथुनात्मक जीवन सही क्यों नहीं हो पाता? उसमें बाधाएँ क्या हैं? जैसा कि हम पहले देख चुके विवाह, एकपत्नीत्व आदि सब के पीछे कारण के रूप में आर्थिक कारण हैं। हम शरत् बाबू के देवदास से लेकर जिस भी पुस्तक को उठावें, जिसमें मनुष्य के प्रेम-जीवन में गड़बड़ी का चित्रण किया गया है, हम पायेंगे कि ये गड़बड़ियां अनिवार्य नहीं थीं, बल्कि इनके पीछे आर्थिक-सामाजिक कारण थे। भारतीय-समाज के प्रेम-जीवन में जातिभेद प्रथा अक्सर पुरुष और स्त्री के प्रेम-जीवन के मध्य में आ जाती है, किन्तु यह जातिभेद प्रथा आर्थिक कारणों से उत्पन्न है यह कौन नहीं जानता? इसी प्रकार खोजने से प्रेम-जीवन की गड़बड़ी की तह में हमेशा आर्थिक कारण मिलेंगे। यहां तक कि हम इस सम्बन्ध में जिन भावों, तथा मानसिक रूपों को चिरन्तन मान बैठे हैं, वे भी चिरन्तन नहीं हैं। जैसे प्रेम में ईर्ष्या (Jealousy) को हम एक चिरकालीन स्वाभाविक भावना समझते हैं, सैकड़ों हजारों उपन्यास, नाटक इसी भावना को केन्द्र बनाकर लिखे गये हैं। हमने एक तरह से मान-सा लिया है कि एक स्त्री को यदि दो पुरुष चाहें तो दोनों में झगड़ा ही होगा, तथा एक दूसरे को दुश्मन समझेंगे ही, किन्तु ऐसी बात नहीं। इस बीसवीं सदी में भी तिब्बत में बहुपतित्व प्रथा मौजूद है, और उसमें न तो कोई गड़बड़ी ही होती है, और न कोई ईर्ष्या ही होती है। यह प्रथा वहाँ इस कारण मौजूद तथा जीवित है कि वहाँ के लोग इतने गरीब हैं कि चार भाई तो चार बीवी नहीं रख सकते, इसलिए चार भाई के बीच में एक बीवी होती है। वहां के लोगों को इस कारण भ्रष्ट कहना कि वे चार भाई मिलकर एक बीवी

रखते हैं ग़लत होगा, याने उसका अर्थ केवल इतना ही होगा कि उनकी आर्थिक पद्धति पिछड़ी हुई है। बस इससे अधिक कुछ नहीं। इस प्रकार हमने पाया कि बहुपतित्व प्रथा आर्थिक पिछड़ेपन से उद्भूत है, साथ ही हमने यह भी देख लिया कि ईर्ष्या जैसी चिरस्थायी समझी जानेवाली भावुकता भी किसी ख़ास आर्थिक परिस्थिति में ही पाई जाती है। इससे स्पष्ट है कि सारे मनुष्य-व्यवहार की व्याख्या मार्क्सवाद ही कर सकता है, किन्तु यदि ऐसा करने का दावा फ्रायडवाद भी करे तो अपने दायरे में वह उपयोगी हो सकता है।

अब इस विषय पर दो एक अन्य विद्वान लेखकों के मतों को उद्धृत कर हम इस विषय को समाप्त करेंगे। जान डेवे लिखते हैं Romantic love as it exists to day, with all the varying perturbations it occasions, is as definitely a sign of specific historic conditons. as are big battle-ships with turbines, internal combustion engines, and electrically driven machines. It would be as sensible to treat the latter as effects of single psychic cause as to attribute the phenomena of disturbance and conflict which accompany present sexual relations as manifestations of an original single psychic force or libido. Upon this point at least a Marxian simplification is nearer the truth than that of Jung."* याने जिसे हम आज रोमैंटिक (काव्यमय) प्रेम कहते हैं, और जिसे फलस्वरूप तमाम गड़बड़ियां

*Human nature and conduct, p. 154.

होती हैं, वह निश्चित रूप से विशिष्ट ऐतिहासिक परिस्थितियों के परिचायक हैं वैसे ही जैसे टर्बाइन समन्वित रणतरी, भीतरी जलनेवाली एंजिनें तथा बिजली से परिचालित मशीनें हैं। पीछे गिनाई हुई चीजों को एकमात्र मानसिक कारण से उद्भूत समझना उतनी ही बड़ी अक्लमन्दी होगी जितना कि यह समझना कि आजकल की मैथुनात्मक जिन्दगी की सारी गड़बड़ी और संघर्ष एक मौलिक मानसिक शक्ति या जिजीविषा का प्रकाश है। इस विषय में युङ से मार्क्स का मत कहीं सत्य के अधिक क़रीब ज्ञात होता है।"

इस विषय पर सुप्रसिद्ध लेखक तथा विचार नेता बर्ट्रैंड रसेल का मत भी ध्यान देने योग्य है "इस जमाने में दो प्रभावशाली विचारवाले लोग हैं। उसमें से एक प्रत्येक बात को आर्थिक सूत्र से प्राप्त करते हैं, और दूसरा प्रत्येक बात को पारिवारिक या मैथुनात्मक सूत्र से प्राप्त करता है। इनमें से पहला मार्क्स का विचार है, दूसरा फ्रायड का है। इनमें से मैं किसी भी विचार का कायल नहीं हूँ, क्योंकि मैं समझता हूं कि आर्थिक कारण तथा मैथुनात्मक प्रवृत्ति पारस्परिक रूप से विजड़ित हैं, और इनमें से कौन कारण रूप में पहला है, कौन दूसरा यह साफ़ नहीं है। उदाहरण-स्वरूप इसमें सन्देह नहीं कि औद्योगिक क्रांति का मैथुनात्मक सदाचार पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा है और पड़ेगा, किन्तु इसके विपरीत यह भी तो बात सही है कि प्युरिटनों (puritans) के मैथुनात्मक सदाचार का मानसिक रूप से औद्योगिक क्रांति पर आंशिक कारण के रूप में प्रभाव पड़ा था। मैं इन दोनों में से किसी की मूल कारण के रूप में तरजीह देने को तैयार नहीं हूँ, सच बात तो यह है कि इन दो को बिल्कुल स्पष्टता के साथ अलग ही नहीं किया जा सकता।"*

*Marriage and Morals by Bertrand Russel, p. 9.

कुछ विद्वान् ऐसे हैं जो इस प्रकार एक ही मौलिक कारण से सभी बातों को प्राप्त करने की चेष्टा करना ज्यादती समझते हैं। डाक्टर सर्ज चैकोटिन एक ऐसे ही विद्वान हैं। उन्होंने बजाय एक के चार सहजात माना है ऐसा हम पहले ही पर दिखा आये हैं। वे इस सम्बन्ध में लिखते हुए और भी लिखते हैं "यह बहुत ही दिलचस्प है कि मनुष्य-व्यवहार की जो विभिन्न व्याख्यायें की गई हैं, और उनके फलस्वरूप जो विभिन्न दार्शनिक मतों का प्रतिपादन हुआ है, उन सबकी तह में हम वे ही चार सहजात पाते हैं। ईसा का धर्म इन्हीं में से एक को अपना आधार बनाकर चलता है और आधुनिक युग में एक तरफ फ्रायड तथा ऐडलर ने और दूसरी तरफ मार्क्स ने अपने सिद्धान्तों का निर्माण बाकी तीन सहजातों पर किया है। ईसा की पद्धति सम्पूर्ण रूप से मातृत्व के सहजात पर निर्भर है क्योंकि दया, अपने पड़ोसियों का प्रेम यह सब मातृत्व के सहजात का ही विस्तृत रूप है। फ्रायड का कहना है कि मनुष्य की सारी विशेषता तथा उसकी प्रतिक्रियाओं का आधार मैथुनात्मक जीवन है। वे कहते हैं कि मनुष्य के तरह-तरह के काम मैथुनात्मक मूल (जो बचपन से ही स्पष्ट होते हैं) से उत्पन्न जटिलताओं या (Complexes) से उद्भूत हैं। ×××कार्ल मार्क्स या यों कहा जाय कि सुधारवादी मार्क्सवाद आर्थिक कारणों को ही सारे मनुष्य-व्यवहार के आधार के रूप में मानते हैं, याने यह भूख को (Nutrition) या पुष्टि को आधारभूत मानता है। आखिर में वैयक्तिक मनोविज्ञान के निर्माता मनुष्य-व्यवहार का मुख्य आधार अपने गुरु की तरह मैथुनात्मक प्रवृत्ति को नहीं बल्कि हुकूमत की पिपासा को मानता है। इसको हमने संघर्ष का सहजात माना है।"

"यदि हम इन सिद्धान्तों को लेकर प्राणीविज्ञान की और थोड़ी गहराई तक जायें, तो हमें ज्ञात होगा कि उनकी मौलिक गलती इस बात में है कि वे अपनी सारी पद्धति को मनुष्य के एक व्यवहार से प्राप्त करना

चाहते हैं। यह विशेषकर फ्रायड पर लागू होता है। सारे मनुष्य-व्यव. को केवल एक मैथुनात्मक दृष्टिकोण से देखने की चेष्टा करने के कारण फ्रायड के सिद्धान्तों को हानि पहुँचती है, यद्यपि उनमें बहुत-से ऐसे तथ्य तथा विचार हैं जो बहुमूल्य हैं। इस कारण अक्सर फ्रायडवाद को बिलकुल ही रद्दी की टोकरी में डाल दिया जाता है।"*

मार्क्स के बारे में कहते हुए डाक्टर चाकोटिन जो राय जाहिर करते हैं वह भी ध्यानयोग्य है। वे लिखते हैं, "मार्क्स ने विकासवाद के वैज्ञानिक सिद्धान्त को (जो डार्विन को धन्यवाद है अभी-अभी प्राणीविज्ञान में जयश्री-मण्डित हो चुका था और उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध के सारे विचारों पर एक गहरा प्रभाव डाल चुका था) समाजशास्त्र में तथा इतिहास और राजनीति की धारणा में फैला दिया। इसके पहले इन क्षेत्रों में एक अव्यवस्थित प्रयोग-वाद (Chaotic empiricism) का बोलबाला था। उन्होंने बहुत ही ढंग से यह दिखलाया कि उत्पादन की शक्तियों में विकास के कारण कैसे विशेष तरीके का समाज संगठन उससे उन्नततर तरीके में विकसित होता है। × × × × × × × मार्क्स ने समाजविज्ञान के विषय में जो भौतिक दृष्टिकोण ग्रहण किया है, उसके सम्बन्ध में कुछ विशेष कहने की जरूरत नहीं। विज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति के साथ यह तो एक आम बात हो गई। मार्क्स की प्रतिभा की यह असाधारणता है कि उन्होंने इसकी संभावना को देखा और उसको इस बुद्धिमत्ता के साथ समाजशास्त्र में प्रयोग किया। डार्विन ने जिस विस्तृत दृष्टि को प्राणीविज्ञान में प्रयोग किया था, उसी को मार्क्स ने समाजशास्त्र के क्षेत्र में प्रयोग किया था, डार्विन और मार्क्स की सफलतायें अमर हैं।"†

---

*Rape of the masses by Serge Chakotin D. Sc. p. 51 et seq. †Ibid, p. 59 et seq.

इस प्रकार यह भी स्पष्ट हो जाता है कि हमने जो मार्क्सवाद के सिद्धान्त को खींचकर तथा उसका विस्तृत अर्थ लगाकर उसको प्राणीमात्र पर लागू किया है, उसमें हमने कोई ज्यादती नहीं की। उसका विस्तृत रूप संभव है। कम से कम डाक्टर चाकोटिन के निकट यह असंभव नहीं जंचता। फ्रायड के सिद्धान्त का ऐसा कोई विस्तार संभव नहीं, जैसा कि हम दिखला चुके हैं।

फ्रायड का सिद्धान्त समाज की शक्तियों की व्याख्या करने में सम्पूर्ण रूप से असमर्थ है। रहा सेक्स वह अपनी जगह पर एक शक्ति है, और वैयक्तिक जीवन में इसका जबर्दस्त असर है, इसे अस्वीकार करना असम्भव है। लेनिन ने क्लारा जेटकीन से बातचीत करते हुए यह बतलाया था कि "फ्रायड का सिद्धान्त आधुनिक फैशन में शुमार किया जाता है। उसको विस्तार और व्याख्या करने की कोशिश विद्वत्तापूर्ण और वैज्ञानिक समझी जाती है, परन्तु दरअसल वह एक मूर्खतापूर्ण गड़बड़झाला है।"* यदि वैज्ञानिक समाजवाद को छोड़ भी दिया जाय तो भी शुद्ध मनोविज्ञान के क्षेत्र में फ्रायड के सिद्धान्त के जो अन्य प्रतिद्वन्दी सिद्धान्त—उदाहरणार्थ एडलर के सिद्धान्त—जब तक मौजूद हैं, तब तक फ्रायड के सिद्धान्त की यदि अधिक से अधिक प्रशंसा भी की जाय तो यही कहा जा सकता है कि वह एक हद तक लागू Hypothesis मात्र है, इससे अधिक कुछ भी नहीं।

———

*लेनिन के संस्मरण, पृ० ५०

३

जीवन में सेक्स का महत्व तथा उसकी प्रकृति

यह न मान सकने पर भी कि सेक्स या मैथुनात्मक प्रवृत्ति ही मनुष्य-व्यवहार का एकमात्र और अद्वितीय मूल कारण हैं, हमें यह मानने में कोई भी आपत्ति नहीं ज्ञात होती कि यौन प्रवृत्ति मनुष्य की एक प्रधान प्रवृत्ति हैं और मनुष्य व्यवहार का प्राथमिक न सही द्वितीय कारणों में उसका बड़ा भारी महत्त्व हैं। थेरायड (Thyroid) ग्रंथी तथा एड्रेनल ग्रंथी का यदि अध्ययन करना मार्क्सवादी दृष्टिकोण से गर्हित नहीं है, तो यौन प्रवृत्तियों का अध्ययन करना और उन्हें समझना भी उचित है। फिर सभी विज्ञान प्राथमिक कारणों को लेकर होंगे ऐसी कोई बात नहीं। मार्क्सवाद ने समाज की शक्तियों का उद्घाटन कर दिया, वे परस्पर एक दूसरे पर क्यां प्रभाव डालते हैं, उनकी गति कैसी है, किधर होना अधिक संभव है इत्यादि। उसमें जो न्यूनतायें हैं, उन पर बराबर खोज हो रही है, होती जायगी, किन्तु इसलिये मैलेरिया, जलातंक, पोलिश, स्वप्न, स्नायुविकार आदि पर या प्राणीविज्ञान, शरीरविज्ञान मनोविज्ञान, पर कोई खोज ही नहीं होगी या गवेषणा ही नहीं होगी, यह मार्क्सवाद का न तो उद्देश्य ही है न मन्शा। प्राथमिक कारणो के अलावा द्वितीय कारणों का अध्ययन बहुत उपयोगी ही नहीं अपरिहार्य है। हम इसी दृष्टि से यौन प्रवृत्तियों तथा उसके यन्त्रों का अध्ययन करेंगे!

फिर यौन प्रवृत्तियां कोई मामूली प्रवृत्ति नहीं हैं। उनका महत्त्व तो इसीसे साबित है कि फ्रायड ऐसे शुध्द वैज्ञानिक ने उसको मनुष्य-व्यवहार का एकमात्र उत्सस्थल करके स्थापित करने के लिये एक पूरा शास्त्र ही खड़

कर दिया, और ऐसा करने में वे एक बड़ी हद तक समर्थ भी रहे। इससे बढ़कर इसकी महत्ता का प्रमाण और क्या हो सकता है। टामस एच गैलोवे ने अपनी पुस्तक Biology of sex में यौन प्रवृत्ति का मनुष्य जीवन में कितना महत्त्व प्राप्त है यह बहुत सुन्दर तरीके से कहा है। वे कहते हैं "जीवन में मैथुनात्मक प्रवृत्ति का कितना अपार तथा अपरिहार्य प्रभाव है, वह इस बात से भली भाँति ज़ाहिर हो जायगा कि इसके बग़ैर बाद में गिनाये हुए शब्दों का कोई अर्थ ही नहीं होता—पुरुषता, स्त्रीत्व, प्रेम, विवाह-पूर्व प्रेमपरिचय (courtship) विवाह, घर, पिता, माता, पारिवारिक जीवन, पिता-माता का स्नेह तथा शिक्षा-दान, लड़के, लड़कियां, भाई, बहिन, पितृमातृ भक्ति मातृत्व। ये तथ्य, सम्बन्ध तथा उनके साथ लगे हुए विचार, उनके साथ विभिन्न रूप की हमारी प्रतिक्रिया तथा इस प्रकार हमारे मन में उनके सम्बन्ध में जो सदसत् की धारणा पैदा हो गई है, इन में से एक भी न होती यदि जिसे हम यौन प्रवृत्ति कहते हैं, वह न होती। हमारे जीवन से तथा मन से वे सब बातें निकाल दी जायँ जो इन शब्दों से व्यक्त होती हैं तो हमारी सभ्यता, साहित्य, कविता तथा सुख में कोई भी ऐसी बात नहीं रह जायगी जिनके लिये जीना ज़रा भी अच्छा लगे।"

गैलोवे साहब की बात से मैथुनात्मक प्रवृत्ति का जीवन में क्या महत्त्व है यह भली भाँति स्पष्ट हो जाता है। इसको मानने के साथ ही हमारा यह बता देना कर्तव्य है कि इस कथन में कुछ अत्युक्ति है। गैलोवे ने जो कुछ यौन प्रवृत्ति के सम्बन्ध में कहा है, वह उसी सत्यता के साथ किसी भी प्राथमिक प्राकृतिक प्रवृत्ति के विषय में कहा जा सकता है। गैलोवे के कथन में जहां सेक्स शब्द का उपयोग हुआ है, उसकी जगह पर भूख या नींद शब्द बैठाकर पढ़ें तो वह सत्य हो जायगा। बल्कि भूख शब्द के साथ यह कथन और भी अधिक सत्य हो जायगा। खाना न मिले

या नींद न आवे तो सभ्यता तो दूर रही, जीवन ही असंभव हो जाय। प्राणीविज्ञान की दृष्टि से भी भूख की तृप्ति नस्ल को कायम रखने के मुक़ाबले में प्राथमिक आवश्यकता है। नस्ल कायम रहे या न रहे पेट भरते रहने पर जीवन तो कायम रहेगा। इस कारण गैलोवे साहब की बात को यदि हम पूर्ण सत्य समझकर चलेंगे तो वह एक बड़ी ग़लती होगी। हम चाहते हैं कि सेक्स का महत्त्व समझा जाय तथा मान लिया जाय, किन्तु यह बात भी चाहते हैं कि वह महत्त्व कहीं वास्तविकता से अधिक न हो।

इसी विचार का मानों अनुसरण करते हुए डाक्टर एम० जे० एक्सनर एम० डी अपनी पुस्तक Sexual Side of Marriage में लिखते हैं, "The sex motif runs like a golden thread through the entire woof of the pattern of life," याने "जीवन के सारे तानेबाने के ज़रिये से एक सुनहरे धागे की तरह मैथुनात्मक प्रवृत्ति दौड़ती है।" कहना न होगा कि यह भी कथन उसी प्रकार अत्युक्तिपूर्ण है जैसे गैलोवे की उक्ति है। इसमें भी उसी प्रकार एकदेशीयता दोष है, जैसे उनकी उक्ति में हमने देखा है। फिर भी जैसा कि हमने बार-बार कहा है यौन प्रवृत्ति का महत्त्व बहुत है।

हम इस बात का ज़िक्र पहले ही कर चुके हैं कि मैथुन के बिना द्विधाकरण तथा बहुधाकरण की प्रक्रिया से भी नस्ल क़ायम रहती है। इससे यह स्पष्ट है कि नस्ल को क़ायम रखने की दृष्टि से मैथुन सभी क्षेत्र से अपरिहार्य नहीं। सच बात तो यह है कि आदिम सृष्टि में यह बात अपरिज्ञात थी। पहले ऐसा था कि पूर्वपुरुष के शरीर का एक हिस्सा कटकर अलग हो जाता था, फिर वह हिस्सा समय प्राप्तकर पूर्णावयव प्राणी हो जाता था। मैथुनहीन उत्पादन के दिये हुए उदाहरणों के अलावा और भी उदाहरण हैं। हम पहले जो कीटाणु आदि के उदाहरण दे चुके हैं, उनमें पुरुष-स्त्री का भेद तो होता ही नहीं था। किसी कीटाणु के सम्बन्ध में जो बहुधाकरण की प्रक्रिया से

अपनी नस्ल को क़ायम रखता है, उसके लिए हम यह नहीं कह सकते कि फलाना कीटाणु पुरुष है या फलाना कीटाणु स्त्री है। ऐसा कहना बिल्कुल बेमानी होगा। जिन प्राणियों में कोई लिंगभेद नहीं है उनमें द्विधाकरण, बहुधाकरण आदि उपायों से वंशरक्षा तो समझ में आती है, किन्तु आश्चर्य तो तब होता है जब लिंगभेदयुक्त प्राणियों में मैथुनहीन वंशरक्षा-प्रक्रिया पाई जाती है। मालूम ऐसा होता है उस प्राणी में एक बार तो मैथुनात्मक वंशरक्षा जारी हुई, और फिर प्राकृतिक कारण से पहले के उपाय से वंशरक्षा फिर जारी हो गई। कुछ प्राणियों के बारे में यह स्पष्ट हो जाता है कि उनमें मैथुनात्मक वंशरक्षा प्रक्रिया जारी होकर फिर बन्द हो गई। ऐसी नस्लों में स्त्रियां पुरुष के बग़ैर सहायता के ही अंडा देती हैं, और इस प्रकार ये अंडे बाद को जाकर उस प्राणी में परिणत हो जाते हैं। इस प्रक्रिया को Parthenogenesis या कुमारी-उत्पादन प्रक्रिया कहते हैं। यह प्रक्रिया नीली मक्खी (greenfly) जलकीट (waterfleas), रोटीफेर तथा अन्य प्राणधारियों में प्रचलित है।

कुमारी-उत्पादन-प्रक्रिया कृत्रिम रूप से प्रयोगशाला के अन्दर भी की गई है। जे० लोयब (J. Loeb) ने पहले पहल यह दिखलाया कि समुद्र के एक प्राणी Sea-urchin के अंडे को जिस पानी में वे रक्खे जाते हैं उसमें कई तरह के लवणों को मिलाकर प्राणी उत्पन्न किया जा सकता है। आर० हेरट्वीग तथा जी० हेरट्वीग Hertwig यह दिखाने में समर्थ हुए कि ज़ोर से रगड़ने पर इन अंडों में से कुछ हिस्से विकसित होते हैं। इसके बाद फ्रेंच वैज्ञानिक बताइयों (Bataillon) मेंढ़क के अण्डों को बारीक सुई से छेदकर मेढ़क उत्पन्न करने में समर्थ हुए। इनमें से कुछ काफ़ी दिनों तक

---

*Anatomy of Science by Dr. Bernard Bevink, p. 338.

जीवित भी रहे।* इसी प्रकार स्त्री प्राणी के बग़ैर केवल पुरुष प्राणी के द्वारा ही कई क्षेत्र में उन प्राणी का उत्पादन सम्भव हुआ है। इसे Androgenesis या कुमार-उत्पादन-प्रक्रिया कहते हैं। इस प्रक्रिया को जिस प्रकार कार्यरूप में परिणत किया गया है उसका डाक्टर बेर्विक के अनुसार विवरण यों है। एक्स रश्मियों के द्वारा आघात प्राप्त एक अंडे के अन्दर एक अनाहत वीर्यकोष (Sperm cell) को इस प्रकार घुसने दिया जाता है कि वीर्यकोष के असर के पहले ही वह अंडा मर जाता है, इस हालत में जो प्राणी पैदा होता है उसको थोड़ा से जरूरी प्रोटोप्लाज्म तो प्राप्त होता है, क्योंकि इसके अतिरिक्त वीर्यकोष किसी प्रकार विकसित नहीं हो सकता। किन्तु बस यहीं तक। उस प्राणी को बिल्कुल अपने पिता का ही स्वभाव प्राप्त होता है।*

मौलिक द्विधाकरण प्रक्रिया से इस प्रक्रिया में कई भेद हैं। एक तो प्रभेद यह है कि इन प्राणियों में यह जो द्विधाकरणवत् प्रक्रिया है, यह मौलिक नहीं है, बल्कि एक बार लुप्त होकर दूसरी प्रक्रिया हुई, और फिर वह मौलिक प्रक्रिया आई। दूसरा प्रभेद यह है कि अब की बार सृष्टिशक्ति केवल बीच में जो स्त्रियां हो गई थीं, उनमें ही आई, पहले की तरह प्रत्येक व्यक्ति को सृष्टिशक्ति हासिल न रही।†

लिंगभेदयुक्त प्राणियों के सम्बन्ध में एक दिलचस्प प्रश्न यह उठता है कि सन्तान में लिंगभेद की उत्पत्ति कैसे होती है। क्या इसका निर्णय माता की स्त्रीवस्तु करती है, या पिता की पुरुषवस्तु करती है, या यह यों ही एक आकस्मिक घटना है? अब इस प्रश्न पर विज्ञान की राय क़ायम हो चुकी है, और वह यह है कि गर्भाधान के मुहूर्त से ही नया प्राणी पुरुष होगा अथवा स्त्री यह तय हो जाता है तथा गर्भाधारण के बाद माता पर

*Ibid, p. 339.

†Physiology of Sex, p. 19.

उपचार या इलाज कर सन्तान के लिंगपरिवर्तन की चेष्टा व्यर्थ है। आम तौर पर स्तनपायी प्राणियों में पुरुष की पुरुषवस्तु दो तरह की होती है xउत्पादक तथा y उत्पादक। स्त्रियां केवल x उत्पादक स्त्रीवस्तु पैदा करती हैं। यह स्त्रीवस्तु दोनों तरह की पुरुषवस्तु द्वारा उर्वरीकृत हो सकती है। यदि x उत्पादक पुरुषवस्तु उससे आकर मिले तो सन्तान xx या स्त्री होगी, किन्तु y उत्पादक आकर उससे मिले तो वह xy या पुरुष होगा। पुरुष वस्तु का यह प्रभेद उनके क्रोमोसोमगत या बनावट की वजह से है, याने सम्पूर्ण रूप से भौतिक है, उसमें कोई रहस्य की बात नहीं है। कुछ दूसरी तरह के प्राणियों में जैसे चिड़ियों, तितलियों तथा कुछ कीड़ों (Moth) में पुरुषवस्तु की क्रोमोसोमगत बनावट एक होती है, किन्तु स्त्री दो तरह की स्त्रीवस्तु पैदा करती है, और इसी से लिंग का निर्णय होता है।* लिंग गर्भाधान के साथ ही साथ तय हो जाने पर भी भ्रूण की कुछ परिणत अवस्था में हो हम जान सकते हैं कि नया प्राणी पुरुष होगा अथवा स्त्री। १८९९ में जाकस लोएब (Jacques Loeb) नामक विद्वान् ने पूर्वोल्लिखित अजीबोगरीब आविष्कार किया जिसके द्वारा अब तक प्रकृति स्त्री-अंश को क्रियाशील बनाकर उसमें प्राण-प्रतिष्ठा का जो काम पुरुष से लेती थी, अब मनुष्यकृत उपाय से सिद्ध होने लगा। इस प्रकार उन्होने कृत्रिम रूप से कुमारी-उत्पादन-क्रिया का प्रवर्तन किया। इस प्रकार प्रकृति ने जिस कुमारी-उत्पादन-क्रिया को अपनाया था, उसका रहस्य मनुष्य पर खुल गया, केवल यही नहीं अब मनुष्य विज्ञान की सहायता से उस काम को अंजाम देने में समर्थ हुआ। सबसे मजेदार बात जो इस सिलसिले में मालूम हो गई, वह यह कि पुरुष का वीर्य स्त्री-अंश को क्रियाशील बनाकर उससे प्राण-प्रतिष्ठा का जो काम करता था, वह कोई जटिल काम नहीं था, और उसे कृत्रिम उपाय से आसानी से किया जा सकता था। यह कृत्रिम प्रक्रिया सभी प्राणियों में एक

*Physiology of Sex, p. 23.

तरह से अंजाम दी जा सकती हो ऐसी बात नहीं। स्टारफिश के स्त्री-अंश या अण्डे को गर्मी देने से ही काम निकल सकता है, यह गर्मी हिलाकर अथवा साधारण तरीके से गर्मी पहुँचाकर दी जा सकती है। मेढ़की के अण्डे को यदि हम रक्त से सनी हुई सूई से कोंच दें तो उसमें प्राण-प्रतिष्ठा हो जाती है। इस प्रकार जो बच्चे अप्राकृतिक रूप से बिना बाप के पैदा किये जाते हैं देखा गया कि वे बापवाले बच्चों की ही तरह हट्टे-कट्टे होते हैं, और उनकी तरह दीर्घ जीवन भी प्राप्त करते हैं। किन्तु जाक्रस लोएब का यह प्रयोग एक जगह पर आकर रुक गया। वह यह कि कुछ ही प्राणी ऐसे थे जिनका स्त्री-अंश* वैज्ञानिक को अपनी कला के प्रदर्शन के लिये उपलब्ध हो सकते थे, किन्तु बाकी क्षेत्रों में प्रकृति ने पितृस्पर्शरहित स्त्री-अंश को प्राकृतिक अवस्था में प्राप्त करने की गुंजाइश ही नहीं रक्खी थी। स्तनपायी प्राणियों (Mammal) में स्त्री-अंश वैज्ञानिक के लिये अलभ्य है, याने यदि वह लब्ध हो सकता है तो अप्राकृतिक अवस्था में, ऐसी हालत में विज्ञान यह कहने में असमर्थ है कि उसमें पुरुष का जो काम है वह कृत्रिम उपायों से अंजाम दिया जा सकता है या नहीं, और यदि दिया जा सकता है तो वह उपाय कोई सरल उपाय होगा या जटिल। कोई यह जरूरी नहीं कि हजरते इन्सान बहुत जटिल प्राणी हैं, इसलिये उनके स्त्री-अंश की पुरुष वीर्यकृत प्राण प्रतिष्ठा कोई बहुत जटिल हो। प्रकृति की जटिलताओं के बावजूद विज्ञान ने अभी इस सम्बन्ध में आशा की पतवार छोड़ नहीं दी है। कोई ऐसा कारण नहीं कि यह समझा जाय कि जिस कुमारी-उत्पादन-

---

*अण्डा शब्द के मुकाबले में हमने स्त्री-अंश इस कारण पसन्द किया है कि अण्डा शब्द से सर्वत्र बिना बाप का बोध नहीं होता, किन्तु अण्डा शब्द इस अर्थ में बिल्कुल अप्रयुक्त है ऐसा भी नहीं जैसे खाकी अण्डा शब्द में अण्डा यही अर्थ रखता है।

क्रिया के कृत्रिम उपाय अन्य प्राणियों के बारे में (जिनके स्त्री अंश प्राकृतिक अवस्था में मिल सकते थे) सफल रहे, तो वह मानव के लिये लागू न हो सके। बहरहाल अभी खोज जारी है। इस बीच में वैज्ञानिक की मेज़ पर सामुद्रिक अर्चिन (sea-urchin), स्टारफिश, घोंघे (snail) आदि कृत्रिम कुमारी-उत्पादन-क्रिया से पैदा किये ही जा सकते हैं।*

वैज्ञानिक ने सृष्टि के क्षेत्र में और भी तरीक़े से हाथ आज़माये। उसने यह निरीक्षण कर रक्खा था कि कुछ प्राणी द्विधाकरण तथा बहुधाकरण की प्रक्रिया से अपनी नस्ल को कायम रखते हैं। वैज्ञानिक ने सोचा कि इस मामले में ऐसा क्यों न किया जाय कि जितना काम प्रकृति करती है, उसका कुछ हिस्सा वह स्वयं करे। कई कीड़ों पर यह प्रयोग किया गया कि सर्जन को छुरी से उनको अलग कर दिया गया, इस पर यह पाया गया कि वह अलग किया हुआ हिस्सा एक नवीन प्राणी में उसी प्रकार परिणत हो जाता है जैसे प्रकृति द्वारा अलग किया हुआ हिस्सा द्विधाकरण प्रक्रिया में होता था। लुम्ब्रीक्युलस (lumbriculus) नामक कीड़े को यदि कई टुकड़ों में बेंड़ा काटा जाय तो उनमें से हरेक का एक नया सिर तथा पूँछ निकल आती है प्लैनारियन नामक कीड़ों (planarians में तो यह गुण और भी अधिकमात्रा में है, उनको आड़ा-बेड़ा जैसे भी काटा जाय बशर्ते कि वे टुकड़े बहुत ही छोटे न हों, वे नये प्राणी में परिणत हो जाते हैं, इसी प्रकार coelentrates, protozoa आदि कीड़ों को इस उपाय से बढ़ाया जा सकता है। पौधों को काट कर कलम कर दिया जाता यह सभी जानते हैं, पर वैज्ञानिकों ने प्राणियों को भी काट-काटकर कलम कर दिये, फिर भी इससे कहीं आश्चर्यजनक प्राणी-उत्पादन की कृत्रिम प्रक्रिया वह है जिसका वर्णन अब हम करने जा रहे हैं। कुछ

---

*The Physiology of Sex by Dr. Kenneth Walker, p. 14.

प्राणी ऐसे हैं जिनको लेकर यदि पतली रेशमी चलनी में घिस दिया जाय, तो उसके फलस्वरूप जो बहुत ही बारीक टुकड़े में छनकर निकलेंगे उनमें से प्रत्येक एक नया प्राणी हो जायेगा। पुराणों में जो रक्तबीज की कहानी है वह इस प्रकार सत्य हो जाती है।* इन प्राणियों की अमर प्राणशक्ति को देख कर हैरान हो जाना पड़ता है। कुछ हद तक जमीन पर के प्राणियों जैसे newt नामक छोटे मेल के गिरगिट की सृष्टि कृत्रिम रूप से नियन्त्रित की जा सकती है। न्यूट के अंडे को जब कि उस में प्राण-प्रतिष्ठा हो चुकी है, एक बाल से दो टुकड़े में बाँटा जा सकता है, और वे दोनों फिर अलग-अलग गिरगिट में परिणत हो जायेंगे।*

पहले ही हम बता चुके हैं अमीबा नामक एककोष प्राणी द्विधाकरण प्रक्रिया से अपनी नस्ल को कायम रखता है, फिर भी ऐसा मालूम होता है कि इस उपाय से वंशवृद्धि की उसकी ताकत असीम नहीं है। एक जगह पर जाकर यह शक्ति थक जाती है ऐसा मालूम होता है। उस समय फिर द्विधाकरण-प्रक्रिया से काम चलता नहीं मालूम देता याने द्विधाकरण की सामर्थ्य ही लुप्त हो जाती है। उस समय फिर दो अलग-अलग प्राणी एकत्र होते हैं, और उनमें घनिष्ठ सहयोग होता है जिसके फलस्वरूप सारवस्तुगत (nuclear) तथा अन्य-अन्य परिवर्तन होते हैं। इस आदान-प्रदान का कार्य समाप्त हो जाने पर वे दोनों जीव फिर अपना-अपना रास्ता पकड़ते हैं, किन्तु अब की बार उनकी लुप्त शक्ति लौट आ चुकी होती है, और वे फिर द्विधाकरण की प्रक्रिया से वंशवृद्धि शुरू कर देते हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि उस प्राणी को नवयौवन प्राप्त हो जाता है, किन्तु उसके क्षेत्र में यौवन उसी की प्रजनन-शक्ति के दायरे में काम करता है। डाक्टर बोरोनौफ मनुष्य-प्राणी में जिस

*Ibid, p. 275

प्रकार का परिवर्तन ला देते थे, उसी प्रकार का परिवर्तन प्रकृति अमीबा में इस आदान-प्रदान की प्रक्रिया से ला देती है यदि प्राकृतिक परिस्थितियाँ अमीबा के लिये ठीक हो तो उसे कभी भी इस प्रकार नवयौवन प्राप्त करने की जरूरत न हो, किन्तु प्रकृति में सर्वदा सम्पूर्णता कायम नहीं रहती, अतएव अमीबा को समय-समय पर अपनी द्विधाकरण-शक्ति को कायम रखने के लिये इस प्रकार दूसरे अमीबा के शरीर से आदान-प्रदान करना पड़ता है।* इस आदान प्रदान की प्रकृति पर जब हम विचार करते हैं तो वह हमें एक अजीबोगरीब प्रक्रिया ज्ञात होती है । यह मैथुन नहीं है, क्योंकि इससे गर्भाधान नहीं होता । जब गर्भ ही नहीं तो गर्भाधान का सवाल ही कैसे उठ सकता हैं। अमीबा में लिंगभेद तो है ही नहीं फिर इस प्रक्रिया की तुलना डाक्टर वोरोनौफ़ प्रवर्तित नवयौवन प्राप्ति प्रक्रिया से हमने की है वह भी सही नहीं है, । जिस समय मनुष्य की ग्रंथी के स्थान पर बन्दर की ग्रंथी लगाई जाती है, उस समय मनुष्य को ही फिर से यौवन प्राप्त होता हैं न कि बन्दर को भी, किन्तु अमीबा के क्षेत्र में जब कोई दो अमीबा घनिष्ठ संपर्क में आते हैं, और उनमें सारवस्तुगत तथा अन्य परिवर्तन होते हैं, उस समय उसके फलस्वरूप दोनों की प्रजनन-शक्ति याने द्विधाकरण-शक्ति फिर एक बार जाग्रत हो जाती है ।

इस प्रकार आदिम प्राणी अमीबाओं में जो पारस्परिक घनिष्ठ संपर्क के द्वारा अपनी द्विधाकरण शक्ति को पुनः प्राप्त करने का तरीका है, क्या हम इसमें लिंगभेद का प्रारंभ देख सकते हैं? डाक्टर वाकर का कहना है कि इस प्रश्न का उत्तर कठिन है । किसी प्रक्रिया को किसी दूसरी प्रक्रिया का विकसित रूप तब तक कहना कठिन है जब तक बीच की कड़ियाँ साफ न हों ।

*The Physiology of Sex by Dr. Kenneth Walker p. 14.

अमीबा में जैसे प्रजनन होता है वह तो बता दिया गया, किन्तु अब भी हमें इस बात का उत्तर देना बाकी ही हैं कि क्या इसमें हम सेक्स या मैथुन वा सूत्रपात देख सकते हैं ? इस पश्न का सीधा उत्तर देना कठिन है, किन्तु यदि हम जान लें कि प्राणीविज्ञान की दृष्टि से मैथुन किसे कहते हैं तो शायद इस प्रश्न को समझना हमारे लिए आसान हो जाय। सेक्स के प्राणीवैज्ञानिक तत्त्व क्या है इसका उत्तर देते हुए डाक्टर एम० जे० एक्सनर कहते हैं "(१) एक ही प्राणीजाति की दो किस्म के व्यक्तियों के अवयव के गठन में एक पूरक विभिन्नता एसी हो जिस का नतीजा यह हो कि (२) इन व्यक्तियों में गहरा आकर्षण पैदा हो और फिर जिसका नतीजा यह हो कि (३) इन व्यक्तियों में सहवास हो। यह जो सहवास है यह प्राणीविज्ञान की दृष्टि से इस कार्य का सारभाग है। पूरक विभिन्नता कम से कम सहवास के प्रधान कारणों में हो जाती हैं, और आकर्षण के कारण वह तरीका तय हो जाता है कि किस प्रकार यह सहवास होगा। पुरुष तथा स्त्री शब्दों का इस्तेमाल दो तरह के परस्पर संयुक्त होनेवाले व्यक्तियों के लिये होता है।"* लिंग या मैथुन की इस परिभाषा से स्पष्ट है कि अमीबाओं का का सम्पर्क में आने का जो जिक्र हम कर चुके हैं. वह सेक्स के अन्तर्गत नहीं माना जा सकता।

डाक्टर वाकर ने इस प्रश्न पर दूसरे दृष्टिकोण से विचार किया है। वे कहते हैं "मैथुनात्मक प्रजनन का मतलब है कि दो विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों के सारभाग (neucleus) का एकीकरण हो।"† अमीबा के सहवास में इस शर्त की पूर्ति नहीं होती। वहां तो दो तरह के व्यक्ति होते ही नहीं। फिर जो सारभाग है उसका एकीकरण केवल इसी अर्थ में होता है कि उनका आदान

---

*The Sexual Side of Marriage, pp. 30-31.

‡Physiology of Sex, p. 14.

प्रदान होता है। इस कारण यह स्पष्ट है कि अमीबाओं का सहवास लैंगिक मैथुन से गुणगत रूप से विभिन्न है। अब रहा प्रश्न यह कि अमीबा के सहवास का ही विकसित रूप लैंगिक मैथुन को माना जा सकता है कि नहीं, इस पर कोई अन्तिम उत्तर दिया नहीं जा सकता, किन्तु विकासवाद के साधारण सिद्धान्त को देखते हुए हमें इसको सिद्धान्त रूप से मानने में कोई हर्ज नहीं ज्ञात होता कि मैथुनहीन प्रजनन से ही मैथुनात्मक प्रजनन विकसित हुआ होगा।

इस आखिरी बात को हमने जितनी आसानी से कह दिया, वह इतनी आसान नहीं है। उदाहरणस्वरूप यह पूछा जा सकता है कि क्यों साहब आपने इतनी आसानी से स्वतःसिद्ध के तरीके पर मान कैसे लिया कि मैथुनात्मक प्रजनन द्विधाकरण या बहुधाकरण के मुकाबले में विकसित रूप है? कोई चीज़ बाद को आई इससे यह तो मान लिया जा सकता है वह बाद की चीज़ है, किन्तु वह उसका विकसित रुप है यह कैसे समझ लिया गया? साथ ही यह भी प्रश्न उठता है कि जब बिना लैंगिक मैथुन के ही प्रजनन का काम चल रहा था, तो उस हालत में लिंग की उत्पत्ति की क्या ज़रुरत थी। अन्तिम प्रश्न ऐसा है जो पूछने के ढंग के कारण विज्ञान के दायरे से बाहर चला जाता है, फिर भी विज्ञान इस बात का उत्तर तो दे ही सकता है कि प्रकृति ने क्यों मैथुनात्मक प्रजनन को अपनाया। हमारे कहने का अभिप्राय यह नहीं है कि प्रकृति किसी उद्देश्य को लेकर चल रही है तथा उसमें बुद्धि है। सच बात तो यह है कि प्रकृति की ऐसी जड़बुद्धि चीज़ शायद ही कोई दुनिया में हो। वह तो हज़ारों गलतियां करके तब कहीं एक सही पग ले पाती है। प्रजनन के दिये हुए विवरण को ही स्मरण किया जाय कुछ प्राणियों में जो हमने बतलाया कि पहले जनन का द्विधाकरण प्रक्रिया थीं, फिर उनमें लिंगभेद तथा मैथुनात्मक प्रजनन हुआ, किन्तु फिर एक बार वह प्राणी लौटकर द्विधाकरण प्रक्रिया में पहुंचा। अब इस प्राणी

प्रजनन के इतिहास की दृष्टि से देखें तो मैथुनात्मक प्रजनन इस प्राणी के हक में साबित न हो सका, और उसे फिर एक बार द्विधाकरण प्रक्रिया की शरण में जरना पड़ा। यदि कहीं इस प्राणी के इतिहास की पुनरावृत्ति मनुष्यों के क्षेत्र में हो तो इसका अर्थ यह है कि मनुष्य आगे चलकर लिंगभेद क़ायम रखते हुए भी द्विधाकरण या बहुधाकरण प्रक्रिया से प्रजनन कर सकेगा। यह बात पुराणों में कतई अप्राप्य है ऐसा नहीं। अगस्त्य ऋषि बिना माता के केवल पितृवीर्य से ही पैदा हुए थे। कथा ऐसी है कि एक ऋषि कहीं ध्यान करते हुए बैठे थे, इतने में कोई अप्सरा आकाश मार्ग से जा रही थी, बस क्या था ऋषिवर का वीर्यस्खलन हो गया, किन्तु उन्होंने मानवता का ख्यालकर एक घड़े में रख दिया। बस उसी से अगस्त्य ऋषि पैदा हो गये, इसीसे वे घटसंभव भी कहलाते हैं। पार्वती के बारे में एक ऐसी ही कथा है कि उनको मातृत्व की इच्छा हुई पर महादेव जी भंग गाँजे की साधना में चूर पड़े रहते थे। उनको किसी प्रकार की फ़िक्र नहीं थी। पार्वती क्या करती, उन्होंने रगड़-रगड़कर अपने बदन के मैल का गुड्डा बनाया पार्वती चूँकि कैलास में, याने तिब्बत के पास रहती थी, इसलिये कभी नहाती नहीं थी। उनके बदन से इतना मैल तो निकल आया कि उससे गुड्डा बन गया, किन्तु उसके सिर के लिए बदन का मैल कम पड़ गया। इस पर महादेव जी नशे से जगाये गये तो उन्होंने नशे में अपने नौकर नन्दी से कहा कि जाओ जो भी व्यक्ति उत्तर तरफ़ सिर करके लेटा हो उसका सिर काट लो। वहां कैलास के बीहड़ प्रान्त में कोई आदमी तो कहीं दिखाई न पड़ा, एक हाथी दिखाई पड़ा, सो नन्दी ने नशे में उसीका सिर काट लिया। इस प्रकार जब वह सिर कटकर आया तो महादेवजी के सामने लाया गया, उन्होंने कहा जाओ इसी को उस गुड्डे में फिट कर दो। तदनुसार यह सिर फिट कर दिया गया, और उससे गणेश पैदा हुए। इस प्रकार गणेश का जन्म मैथुनहीन तरीक़े से हुआ। पार्वती के शरीर के मल को

सारवस्तु (nuclear) कहें तो कह नहीं सकते, किन्तु गात्रमल शब्द है अर्थ-पूर्ण। ये बातें कुछ अवान्तर ज़रूर जँचीं, किन्तु नहीं पुराणों की कहानियों में बहुत से ऐतिहासिक तथ्य भेष बदलकर मौजूद हैं। बहुत से लोग जो यह अफ़सोस करते नज़र आते हैं कि मनुष्य प्राणी धीर-धीरे प्रजनन के प्रति उदासीन होता जा रहा है उनको घबड़ाने की कोई ज़रूरत नहीं। यदि मनुष्य प्राणी ने प्रजनन से कतई इन्कार भी कर दिया तो भी उसमें दूसरे किसी उपाय का विकास नहीं होगा ऐसी कोई बात नहीं।

हाँ, तो हम इस बात की आलोचना कर रहे थे कि मैथुनात्मक प्रजनन को हम द्विधाकरण प्रक्रिया के मुकाबले में उन्नत समझें ऐसा कोई कारण है कि नहीं। यह भी हमने देख लिया एक पद्धति का बाद में आना इस बात का प्रमाण नहीं हो सकता कि बाद में आई हुई पद्धति हमेशा उन्नति की सूचना करती है। कहना न होगा कि इस प्रश्न पर सही रोशनी डालने के लिए इस बात की ज़रूरत है कि हम इस प्रश्न को पहले एक दृष्टिकोण से सीमित कर लें। हम इस प्रश्न पर प्राणविज्ञान की ही दृष्टि से आलोचना कर सकते हैं। याने हमारा प्रश्न यों होगा कि सेक्स की यह जो जटिलता है जिसमें पूरक तरीके से विभिन्न कोषों का अनिवार्य एकीकरण होता है, उससे नवजात शरीर को क्या फ़ायदा पहुँचता है? यह एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण प्रश्न है, और इसका उत्तर देने पर हम अब तक आये हुए कई प्रश्नों का एक ही साथ उत्तर दे चुके होंगे।

पहले ही हम बता चुके हैं कि प्रकृति एक अत्यन्त जड़बुद्धि पद्धति है। हज़ार बार एक के बाद एक ग़लती करने के बाद प्रकृति सही रास्ते पर चलती नज़र आती है। अमीबा से लेकर मनुष्य के विकास तक जो करोड़ों प्रयोग हुए हैं उनकी ग़लतियों को देखकर कौन सहृदय वैज्ञानिक रो नहीं पड़ेगा? किन्तु इन्हीं ग़लतियों के ज़रिये से होकर जो प्रकृति विकास के रास्ते पर जा रही है उसी को हम विकासवाद कहते हैं। विकासवाद के

अनुसार वंशज प्राणी अपने पूर्वज प्राणी के साथ समता भी रखता है, और विभिन्न भी है। यदि वंशज प्राणी बिलकुल प्राणी-विज्ञान की दृष्टि से वही होता जो उसका पूर्वपुरुष था, तो फिर विकास कैसे होता? विकास तो एक तथ्य है। उसमें तो किसी तर्क की गुंजाइश नहीं। यह भी धारणा गलत है कि सभी विकास या नई विशेषतायें जो वंशज में पैदा होती हैं वे उस प्राणी के प्राणधारण के लिये अधिकतर उपयोगी होती हैं। सच बात तो यह है कि इस प्रकार के अधिकतर परिवर्तन अनुकूल होते हैं। मैथुनहीन पद्धति से उत्पन्न होनेवाले प्राणियों में तो इस प्रकार के परिवर्तन या तो नस्ल को खतम ही कर देंगे, या तो इनके कारण उसे भयंकर विपत्ति का सामना करना होगा।* फिर भी तथ्य यह है कि इस तरह हजार गलतियों तथा हजार बार पीछे हटने के बावजूद कुछ परिवर्तन ऐसे होते हैं जिनके कारण वह प्राणी अपनी परिस्थितियों में प्राणधारण के लिए अधिक उपयुक्त हो जाता है। ऐसी हालत में ये नये नमूने के प्राणी रह जाते हैं, और पुराने पिछड़े हुए प्राणी धीरे-धीरे नष्ट हो जाते हैं। प्रकृति के अन्दर चलनेवाली इसी प्रक्रिया को प्राकृतिक निर्वाचन कहते हैं। इस प्रक्रिया को समझते हुए जे० आर्थर टामसन ने Biology and Human Progress नामक लेख में कितने अच्छे तरीके से कहा है कि, प्रकृति के अन्दर जितने भी प्रकार के झाड़ने-बुहारने की क्रिया चलती रहती है, उन सबको इस निर्वाचन के अन्तर्गत मान लिया गया है। इसके कई प्रकार हो सकते हैं। इसका ऐसा रूप हो सकता है कि एक प्राणी में ऐसी नवीनता आ गई हो, जिसके कारण दूसरा प्राणी उसके सामने अब लोहा न ले पाकर खतम हो जाय। एक प्राणिजाति की नई तथा पुरानी किस्मों में यह निर्वाचन

*Sex by F. A. E. Crew in Outline of Modern Knowledge, p. 263.

प्रक्रिया काम कर सकती है, या यह नवीनता कतई तौर पर अप्रतियोगिता-मूलक हो सकती है, याने इस नवीनता के कारण प्राणी प्रतिकूल परिस्थितियों के विरुद्ध अधिक सफल तरीके से लड़ने की शक्ति प्राप्त कर गया हो ऐसा हो सकता है। यह निर्वाचन मारणात्मक हो सकता है, याने उसके फलस्वरूप योग्यतर जीवित रहे और बाकी शीघ्र मर जाएँ। निर्वाचन का एक तरीका यह भी हो सकता है कि वह किस्म रह जाय जो जल्दी-जल्दी वंशवृद्धि कर सके चाहे और सब तरीके से वह दूसरों के बराबर हो। इस प्रकार निर्वाचन में कौन ठहरेगा यह प्रत्येक मामले में विभिन्न है।* संक्षेप में यही प्राकृतिक निर्वाचन का स्वरूप हैं। यदि हम इस सिद्धांत को मान गये, जैसा कि हमें मानना पड़ेगा, तो यह बात स्पष्ट हो जाती है कि जिन प्राणियों में अनुकूल नवीनता का उद्भव (emergence) हुआ हो, वे निर्वाचन में आ जाएँगे, अर्थात् जीवन-संग्राम में विजयी होंगे।

हमने जिस विषय के सिलसिले में विकासवाद के प्राकृतिक निर्वाचन सिद्धांत की अवतारणा की, उस पर यदि इस सिद्धान्त को लागू करें तो डाक्टर केनेथ वाकर के शब्दों में यह हमारी समझ में आ जायगा कि वे प्राणी जो जीवनधारण की दिशा में अधिक से अधिक प्रयोग कर सकते हैं, बहुत ही सम्भव है कि वे उन प्राणियों के मुकाबले में जो कम प्रयोग कर पाते हैं जीवनधारण के लिये किसी न किसी उन्नततर उपाय में पहुंचें, जिससे वे निर्वाचन में आ जाएँ और दूसरे धीरे-धीरे विनष्ट हो जाएँ। एक दफे हम यदि इस सिद्धांत को मान लें कि जीवनधारण की दिशा में प्रयोगबहुलता की सम्भावना उसे उस प्राणीजाति पर सुविधायें देती हैं, तो इसी के साथ यह भी समझ में आ जायगा कि यदि दो व्यक्ति यह तय कर लें कि वे अपने जीवनधारण सम्बन्धी प्रयोगों को एकत्र करके चलेंगे, तो

---

*In Outline of Modern Knowledge, pp. 246-247.

†The Physiology of Sex by Kenneth Walker, p. 15.

उनके परिणाम स्वरूप उन दोनों को ही फ़ायदे रहेंगे और उनके वंशजों को दोनों के प्रयोगों के फ़ायदे प्राप्त हो सकते हैं।† मैथुनात्मक प्रजनन में इस प्रकार जो अधिकतर सुविधा है वह स्पष्ट हो जाती है। विकासवादी इस विषय में इससे अधिक कुछ नहीं कह सकता। मैथुनात्मक प्रजनन की श्रेष्ठता हम एक और प्रकार से भी समझ सकते हैं, वह यह कि सभी उच्च प्राणियों में यही प्रथा प्रचलित है। अवश्य यह प्रमाण केवल गौण प्रमाण के रूप में मुख्य प्रमाण के समर्थन के लिये ही दिया जा सकता है।

विकासवाद के सोपान में इस प्रकार मैथुनात्मक प्रजनन या सेक्स की श्रेष्ठता समझ लेने के बाद अब हमे इस अध्याय में एक ही बात और कहनी है। वह यह कि मनुष्यजाति में सेक्स केवल एक शारीरक तक़ाज़े की पूर्ति नहीं रह गई, अब उसके साथ उसकी भावना-जगत के ग्रंथित हो जाने से वह एक ऐसी वस्तु हो गई जिसके कारण उसे पहचान सकना असंभव नहीं तो मुश्किल ज़रूर है। हर्बर्टसन ने कैसे सुन्दर शब्दों में कहा है, "पहले जहाँ सिर्फ़ एक ऊबड़खाबड़ ख़ाका मात्र था, अब मनुष्य ने उसके इर्दगिर्द प्रेम-सम्बन्ध का एक मनोहर तानाबाना बुन डाला है। जहां पहले काम की एक कड़ी, आंख में दर्द पैदा करनेवाली ललाई थी, अब वहां मनुष्य ने बहुत से बारीक रंग पैदा कर दिये।"*

लिंगभेद का चरित्र या स्वभाव पर भी प्रभाव अपरिमेय है। यदि एक जानवर के अंडकोष निकाल लिए जाएँ तो उसका स्वभाव पुरुष से भिन्न हो जाता है। उसमें चर्बी इकट्ठी हो जाती है, तथा उसकी सींगें गाय और बैल के बीच एक तीसरी ही तरह की हो जाती हैं। उससे हम काम भी आसानी से ले सकते हैं। ऐसा ज्ञात हुआ कि कुछ ग्रंथियां (endocrine glands) रसक्षरण करती हैं, जैसे पिट्युटरी, थायरयड, सुप्रारेनल, इनके

*Quoted in "The Sexual Side of Marriage", p. 41.

साथ ही अण्डकोष ग्रंथियां (testes) तथा स्त्री-अंग (ovary) रसस्राव करता है या होर्मोन (hormones) अर्थात् रासायनिक दूत रक्त-प्रवाह में भेजता है जिनसे शरीर पर प्रभाव पड़ता है। पुरुष द्वारा स्रवित इस प्रकार के होर्मोन का testoserone तथा स्त्री द्वारा स्रवित होर्मोन को oestrin कहते हैं। पुरुष के विशेष अंगों का विकास अंडकोष-स्रवित होर्मोनों के बग़ैर नहीं हो सकता, किन्तु बालिग अवस्था तक स्त्री-अङ्गों का विकास ओवारीनि:सृत होर्मोनों के बग़ैर जारी रह सकता है। अब रासायनिक रूप से इन दो होर्मोनों का उत्पादन हो सकता है। वैज्ञानिक के कौतूहल की कोई सीमा थोड़े ही है। चूहियों में पुरुष होर्मोन का इन्जेक्शन दिया गया तो ज्ञात हुआ उसकी clitoris बढ़कर लिंग हो गई, याने थोड़े में चूही में चूहे की विशेषता पैदा हो गई। नर में तो केवल अंडकोष ग्रंथि निकाल देने पर ही उलटी तरफ़ उसका विकास होने लगता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि आधारगत रूप से मनुष्य नारी है, पुरुष उससे अलग हटा हुआ एक प्रकार-भेद मात्र है। "प्रकृति ने पहले स्त्री को बनाया फिर उससे हटकर पुरुष को बनाया।"* आदि प्रकृति के रूप में महादेव के बनिस्बत दश-महाविद्या की पूजा अधिक तात्विक ज्ञात होती है। इस प्रकार यह भी सिद्ध है कि पुरुष और स्त्री मूलतः एक हैं, इस कारण पुरुष के स्त्रीत्व तथा स्त्री के पुरुषत्व पर अधिक आश्चर्य न होना चाहिये।

---

*Physiology of Sex, p. 28.

४

सेक्स का स्वरूप

पहले ज़माने में और अब भी धर्मध्वजियों में सेक्स एक ऐसी चीज़ समझी जाती है जिसके सम्बन्ध में बात न की जाय, या जितनी ही कम बात की जाय उतनी ही अच्छी है। सेक्स के प्रति इस रहस्यवादी प्रवृत्ति के कारण कुछ भलाई तो हुई नहीं, उसका असर और भी बढ़ गया। जितना ही लोगों ने इस पर पर्दा डालना चाहा उतना ही वह पर्दे की आड़ से शिकार खेलता रहा। तमाम धर्मों में लिंग-पूजा का प्रादुर्भाव हुआ। साथ ही योनिपूजा भी इतिहास में मिलती है। सच बात तो यह है कि धार्मिक कला तथा अनुष्ठानों में यह छिपे रूप से सर्वत्र वर्त्तमान है। "प्राचीन मिश्र में जहां ऐसा ज्ञात होता है कि मातृप्रधान युग के अन्त के पहले ही कृषि का उदय हुआ था, धर्म में मैथुनात्मक उपादान पहले लिंगपूजा के रूप में नहीं था, बल्कि उस समय योनिपूजा का प्रादुर्भाव था। यह समझा जाता था कि कौड़ी का आकार योनि का प्रतिनिधित्व कर सकता है, इस कारण उसको रहस्यमय शक्ति का आधार समझा जाता था और क्रमशः मुद्रा के रूप में उसका प्रचलन हुआ। जो कुछ भी हो धीरे-धीरे सामाजिक अवस्था में परिवर्तन हुआ, और बाद को सब प्राचीन सभ्यताओं की तरह मिश्र में लिंगपूजा का बोलबाला हुआ"* हिन्दुओं में शिवलिंग की पूजा तो सर्वत्र प्रसारित है। कौड़ी की लक्ष्मी के प्रतीक के रूप में बनियों में पूजा भी अर्थपूर्ण है। दक्षिण की देवदासियों को किस प्रकार देवता के साथ ब्याही हुई समझा जाता था, किन्तु किस प्रकार वास्तविक

*Marriage and Morals by Bertrand Russel, p. 32.

जगत् में उनसे वेश्या का काम लिया जाता था यह सभी भारतीयों को मालूम है। कैथराइन मेयो की तरह भाड़े की प्रचारिका ने देवदासियों के किस्से को यह दिखाने के लिये अपनी कुख्यात पुस्तक Mother India में इस कारण लिखा था कि भारतीयगण स्वराज्य के हकदार नहीं, किन्तु अपनी धुन में देवदासियों की निन्दा करनेवाली यह चिरकुमारी भूल गई कि अभी तक रोमन कैथलिक चर्च में भिक्षुणियां (nuns) ईसा की बीवी समझी जाती हैं।* मध्ययुग में भिक्षुणी-निवास किस प्रकार व्यभिचार के केन्द्र थे, यह उस जमाने के साहित्य से भली भाँति प्रकट है। अस्तु, इन बातों से स्पष्ट हो जाता है कि सेक्स को किस प्रकार हटा-हटा देने पर भी बराबर उसने मनुष्य जाति के सबसे पवित्र गढ़ धर्म में अपना झंडा गाड़ दिया। धर्मोत्पत्ति के सम्बन्ध में एक ऐसा सिद्धान्त है जो समस्त देवताओं को लिंगपूजा तथा योनिपूजा से उत्पन्न मानता है, यह सिद्धान्त सत्य तो नहीं है, किन्तु प्रत्येक धर्म में लिंगपूजा और योनिपूजा का एक प्रधान उपादान है इसमें सन्देह नहीं। वेद में लिंगपूजकों का जिक्र है। पौराणिक हिन्दू धर्म में शिवलिंगपूजा तथा तांत्रिक पूजा लिंग तथा योनिपूजा पर ही पूरा अवलम्बित है। मोहेनजोदारो की सभ्यता में लिंगपूजा का परिचय मिला है। मिश्र, ऊर, खाल्दिया की सभ्यताओं में लिंग तथा योनिपूजा थी। काबा के पत्थर के विषय में एक सिद्धान्त यह भी है कि वह अरब के आदिम निवासियों के द्वारा पूजित एक लिंग का प्रतीक था। लिंगपूजा से योनिपूजा प्राचीनतर है, यह भी ज्ञात हुआ। बात यह है पहले समाज में माता अधिक महत्त्वपूर्ण होती थी क्योंकि यौथ विवाह के युग में मां का ही पता लोगों को होता था बाप का नहीं।

इस प्रकार सेक्स के प्रति एक अस्वास्थ्यकर और अप्राकृतिक रुख अख्तियार करने के कारण प्रबल हानि हुई है, प्रदमन (repression) हुआ है, और

*Ibid, p. 38.

उसके फलस्वरूप अनेक मानसिक शारीरिक व्याधियों की सृष्टि हुई है। कहां तक गिनाया जाय यौथविवाह या आदिम समाजवाद के युग के अतिरिक्त किसी भी धर्म में या किसी भी जमाने मे सेक्स के प्रति स्वास्थ्यकर रुख नहीं अख्तियार किया गया, जहां लोग सेक्स से नहीं घबड़ाये, वहां लोग इतना बहक गये कि वाममार्गी होकर रह गये। सेन्ट पाल ने कोरिन्थियनों के प्रति प्रथम पत्र में विवाह के सम्बन्ध में अपने मत को व्यक्त किया, उससे स्पष्ट हो जाता है कि सेक्स के प्रति उनका रुख क्या है। उनके नजदीक ब्रह्मचर्य ही आदर्श है, किन्तु विवाह इस माने में करने दिया जा सकता है कि व्यभिचार से रक्षा हो। कहना न होगा कि यह रुख बिल्कुल ही अजीब है। बौद्धों में भी यही हाल रहा। वहां भी उपासक याने गृहस्थ बौद्ध भिक्षु से कम दर्जे का समझा गया है। इसाइयों के प्रोटेस्टेन्ट सम्प्रदाय ने इस सम्बन्ध में सेन्ट पाल के रुख से अपने को अलग कर लिया। प्रोटेस्टेन्ट सम्प्रदाय के प्रवर्तक मार्टिन लूथर को यह बात बहुत अच्छी लगी कि दग्ध होते रहने के बजाय शादी कर लेना अच्छा है। बात यह है कि लूथर का एक भिक्षुणी से प्रेम हो गया था। उन्होंने इस बात पर यह राय कायम की कि भीतर-भीतर दग्ध होते रहने के बजाय उनको तथा उस भिक्षुणी को अपने चिरब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा के बावजूद विवाह करने का अधिकार है। इसी कारण प्रोटेस्टेन्ट सम्प्रदाय में ब्रह्मचर्य की प्रशंसा छोड़ दी गई।* कैथलिक सम्प्रदाय में पादरियों को विवाह करने का अधिकार न होने के कारण क्या-क्या गड़बड़ियां हुईं उसका इतिहास बड़ा ही अद्भुत है। बड़े-बड़े बिशप और आर्कबिशप खुल्लमखुल्ला पाप-जीवन व्यतीत करते थे। बर्ट्रेंड रसेल ने इसका जो वर्णन दिया है हम उसको यहां उद्धृत करते हैं। "बिशप लोग अपनी लड़कियों के साथ पाप-जीवन व्यतीत करते थे, आर्कबिशपगण अपने पुरुष कृपापात्रों को पड़ोस के धार्मिक जिले (secs) में तैनात करते थे। ×× हम

*Ibid, p. 49

चाहें तो पोप जान तेइसवें के अपराध को न गिनें यद्यपि उनको अगम्यगमन के लिये सज़ा दी गई थी, हम चाहें तो कैंटरबरी के सेन्ट अगस्टीन के भिक्षु पति (abbot) के अपराधों को न देखें, ११७१ में एक ही गाँव में खोज करने पर उनके १७ लड़के पाये गये थे। ११३० में स्पेन के सेन्ट पेलायो के भिक्षुपति के विषय में यह प्रमाणित हुआ था कि उसने कम-से-कम ७० रखैलियां रक्खीं, तथा लीज़ के विशप को इस कारण निकाल दिया गया कि उसके ६५ लड़कों का पता लगा था। रिफार्मेशन के पहले बार-बार ज़ोरों से इसकी शिकायत की गई कि रोमन कैथलिकों में पाप-स्वीकार के लिये जो एक कमरा उपयोग में आता था, उसका उपयोग व्यभिचार में होता था। मध्य-युग के लेखकों की पुस्तकों में सैकड़ों ऐसे भिक्षुणीनिवासों का हाल मिलता है जो चकलों की तरह थे, उनमें भ्रूणहत्या तथा शिशुहत्या का ज़ोर रहता था, साथ ही पादरियों में अगम्यगमन का बड़ा ज़बर्दस्त प्रसार था।"

जिस प्रकार सेन्ट पाल के दृष्टिकोण का अनुसरण होता था वह तो स्पष्ट है। सेक्स के अतिदमन का नतीजा इन उदाहरणों से स्पष्ट है। बच्चों से बराबर इन बातों को झूठ बोलकर छिपाया जाता है, किन्तु जैसा कि सभी अपने तजर्बे से जान जाते हैं, बच्चे भी शीघ्र ही जान जाते हैं कि उनकी उत्पत्ति किस प्रक्रिया से हुई। बच्चों से यह कहा जाता है कि वे अपने जननेन्द्रियों को स्पर्श न करें, इस प्रकार उन्हें जीवन के उषाकाल में इतना तो ज्ञात हो ही जाता है कि ये इन्द्रिय नाक कान आदि के मुकाबले में विशेषता रखते हैं। यह कहा जा सकता है कि ऐसा तो उनको बताया जाय या न बताया जाय वे उनको विशेषता देने ही लगते हैं, क्योंकि उन्हीं के ज़रिये से निकले हुए मलमूत्र को त्याज्य तथा घृणित समझा जाता है। पहले ही हम बता चुके हैं कि मलमूत्र के लिए बच्चे की यह घृणा स्वाभाविक नहीं है, बल्कि दीर्घकालीन शिक्षा से पैदा होती है। दूसरी बात यह है कि नाक से निकली हुई नाक भी मूत्र से कम घृणित नहीं होती, किन्तु उसे छूने आदि

के लिए कोई मना तो नहीं करता। इस कारण यह निषेध सेक्स के प्रति अस्वास्थ्यकर दृष्टिकोण ही से पैदा होता है, बच्चों में इस बात को स्वाभाविक रूप से जानने की इच्छा होती है कि उनके छोटे भाई एकाएक कहां से आये। इस पर उनको कहीं कुछ कहीं कुछ बात बताई जाती है। विलायत में बच्चों को यह बताया जाता है कि उनके छोटे भाइयों को गूजबेरी फल की झाड़ी के नीचे से खोदकर बरामद किया गया या सारस उन्हें दे गया। भारतीय माता-पिताओं में बच्चों को कहने के लिये ऐसा कोई सर्वमान्य झूठ नहीं है। कहीं कुछ कहा जाता है कहीं कुछ। एक माता का मुझे पता है कि उसने बच्चे से कहा कि उसका छोटा भाई उसके पेट से आया, इस पर बच्चे ने फिर पूछा कि वह पेट से निकला कैसे, तो इस पर माता ने कहा पेट चीरकर निकाला गया। इस पर बच्चा न ठहरा, और इस बात पर तैयार हो गया कि देखें पेट कहां से चीरा गया। इस पर मां को उसे धमकाना पड़ा।

आखिर बच्चा सभी बातें जान ही जाता है, किन्तु जिस कारण तथा जिस रूप में उन्हें जानता है, उससे हानि ही हानि होती है। एक तो वह समझता है कि वह गन्दे तरीके से पैदा हुआ और पिता माता ने गन्दा काम किया, दूसरा वह समझता है कि पिता माता उसे बराबर धोखा देते रहे, उससे झूठ बोलते रहे, इस प्रकार वह एक तो माता पिता को झूठा समझता है, और दूसरा यह भी उसके दिमाग में बैठ जाता है कि सब मामलों में नहीं तो कम से कम ऐसे मामले में झूठ बोलने का अधिकार है। इस प्रकार एक धोखेबाजी के कारण उसकी सारी पद्धति ही कलुषित हो जाती है, और इसके फलस्वरूप जिन कुटेवों का तथा अप्राकृतिकता का वह शिकार हो जाता है वह सभी व्यक्ति को मालूम है। बर्ट्रेंड रसेल ने अपने सात वर्ष के बच्चे से उसके जन्म के सारे भेद बता दिये, इस पर न तो उस बच्चे में कोई जिज्ञासा रही न उसने किसी अस्वाभाविकता का इजहार किया। उसने सब सुन लिया

फिर खेलने चला गया। सच तो है जन्म की प्रक्रिया में क्यों कोई बच्चा अधिक दिलचस्पी का इजहार करेगा यह बात समझ में नहीं आती।

अतः स्पष्ट है कि सेक्स के स्वरूप के सम्बन्ध में पूरी जानकारी स्वास्थ्यकर शिक्षा का एक अंश होना चाहिये। इसके बगैर कोई भी शिक्षा सर्वांगपूर्ण नहीं हो सकती। सोवियट रूस ही एक मात्र देश हैं जहां इस सम्बन्ध में सामाजिक पैमाने पर अधिक से अधिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण अख्तियार किया गया है। समाजवाद का इस सम्बन्ध में दृष्टिकोण बहुत ही स्पष्ट है, वह यह कि हमें सुख से मुंह नहीं मोड़ना है, सामाजिक पैमाने पर सुख की अधिकाधिक वृद्धि हमारा ध्येय है, साथ ही हमारी अगामी नस्ल अच्छी से अच्छी, सहीदिमाग तथा बलवान हो यह हमारे प्रजनन का ध्येय हैं। हमें किसी भी हालत में अपने सुख की बलिवेदी पर भविष्य की सन्तानों को चढ़ा देने का अधिकार नहीं है यह समाजवाद का सुचिन्तित मत है। हम इस अध्याय में सेक्स के स्वरूप के विषय में आलोचना करेंगे।

हम अपने चारों ओर सेक्स या मैथुन को जिस प्रकार देखते हैं उससे हममें यह धारणा सहज ही में हो जाती है कि खैर मैथुनहीन उत्पादनों में न सही, किन्तु जहां भी पुरुष और स्त्री की सृष्टि हो चुकी है, और उन दोनों के सहयोग से एक तृतीय सृष्टि होती है, वहां इस प्रक्रिया का एक ही रूप है याने स्त्री और पुरुष शारीरिक सहयोग में आते हैं, और पुरुष स्त्री के गर्भ में कोई वस्तु जमा कर देता है जो समय पाकर अंडे के रूप में या नये जीव के रूप में निकलता है। गर्भ में जमा की हुई इस वस्तु को वैज्ञानिक भाषा में spermatozoon (sperma का अर्थ बीज तथा zoon का अर्थ प्राणी के हैं), तथा इस सृजन कार्य में स्त्री प्रदत्त अंश को ovum या अंडा कहते हैं। फिर भी सेक्स की सर्वत्र यह विशेषता हो ही ऐसी बात नहीं। ऐसी हालत में सेक्स क्या हैं यह एक गूढ़ प्रश्न हो जाता है। एफ०

ए० ई० क्रू के शब्दों में जैसे पदार्थ वैज्ञानिक यह नहीं जानता कि मैटर या पुद्गल क्या है, उसी प्रकार प्राणवैज्ञानिक सेक्स के विषय में बातें तो करता है किन्तु वह बता नहीं सकता कि सेक्स है क्या। फिर भी वह इस बात की अवज्ञा कर उचित रूप से उन तमाम लक्षणों की खोज तथा वर्णन करता है जिनको वह व्यक्ति का मैथुनगत समझता है।*

मैथुन में स्त्री तथा पुरुष दो की जरूरत है। इनमें क्या प्रभेद होता है यह तो सभी जानते हैं। एक तो उनका जननेन्द्रिय विभिन्न तरीके का होता है, मैथुनकारी प्राणियों में पुरुष का जननेन्द्रिय ऐसा होता है जो घुस सके। मादा और स्त्री का जननेन्द्रिय ऐसा होता है जिस में कुछ घुस सके। नर प्राणी में नारियों के pelvis तथा shoulder girdles पुरुषों के मुकाबले में विभिन्न तरीके का होता है। फिर चमड़े के नीचे जो चर्बी होती है उसका विकास तथा विभाजन में स्त्रियों में विभिन्न तरीके से होता है। स्त्री के स्तनों के नीचे, पेटी के निम्न हिस्से में नितम्बों की चारों तरफ तथा रानों में अधिक चर्बी होती है। यह एक प्राकृतिक जरूरत है। वह जरुरत बच्चे की संभावना तथा उसकी तैयारी के लिये है, जैसे लाल बालटियों में भरा हुआ पानी आग लगने की संभावना में काम आने के लिये रहता है। इस लिये जो स्त्री ख्वामख्वाह दुबली बनती है वह प्रकृति के साथ धोखा करती है। अन्त तक ऐसा करने में उसी को धोखा होगा। बालों के विभाजन में स्त्री और पुरुष में भी फ़र्क है। यह एक ध्यानयोग्य बात है कि गंजापन करीब-करीब पुरुषों तक सीमित है। स्त्री मूँछ, दाढ़ियों से वञ्चित होती है। स्त्री के स्वर-यन्त्र (larynx) तथा पुरुष के स्वरयन्त्र में प्रभेद होता है। बालिग़ अवस्था के बाद स्त्री का स्वरयन्त्र ज्यों का त्यों अपुष्ट रह जाता है, किन्तु पुरुष का विकसित हो जाता है। इसलिये उसकी

---

*In Outline of Modern Knowledge, p. 255.

आवाज़ गम्भीर हो जाती है। इनके अतिरिक्त स्त्री और पुरुष में कोई शारीरिक भेद नहीं है।

हम प्रजनन को जिस रूप में अपने चारों ओर लिंगभेदयुक्त प्राणियों में देखते हैं (बाकी को तो हम चर्मचक्षु से देखते नहीं हैं) प्रजनन का रूप कहीं-कहीं उससे सम्पूर्ण विभिन्न है। प्रजनन में पुरुषवस्तु तथा स्त्रीवस्तु का संयोग अवश्य होता है, किन्तु पुरुष और स्त्री का शारीरिक संयोग तो क्या वे एक दूसरे को देखते भी नहीं, उनका कोई साबका ही नहीं पड़ता। कुछ छोटे मेल की गिरगिटों में ऐसा होता है कि पुरुष अपनी पुरुषवस्तु को नदी के नीचे एक कोष में बन्द अवस्था में डाल देता है। स्त्री गिरगिट मानो इसकी टोह में रहती है, वह झट इसे अपनी योनि के गर्त (vaginal orifice) ले लेती है। इस प्रकार उसकी गर्भाधान-क्रिया बिना पुरुष के सीधे संस्पर्श में आये ही सम्पन्न हो जाती है। एक तरह की छोटी कटल मछली होती है, इसमें पुरुष का वीर्य एक प्रकार से उसके बाहु में जाकर स्थिर हो जाता है। फिर वह अंग कटकर अलग हो जाता है, और पानी में तैरने लगता है। यह तैरना उसका तब तक जारी रहता है जब तक कि कोई स्त्री-देह उसे न मिल जाय, ऐसा होते ही वह स्त्री-देह में प्रविष्ट हो जाता है।* इस प्रकार यह स्पष्ट है कि लिंगभेदशील प्राणियों में भी गर्भाधान के लिए यह जरूरी नहीं कि पुरुष और स्त्री का सहवास हो, या वे किसी प्रकार के संस्पर्श में आवें। इस प्रकार ज्ञात होगा कि गर्भाधान के लिये मैथुन की प्रक्रिया अपरिहार्य नहीं है, फिर इस तरीके की क्यों उत्पत्ति हुई, और अधिकांश प्राणियों में जहां देखो तहां प्रजनन की यह पद्धति क्यों प्रचलित हो गई? कहना न होगा कि यह प्रश्न ठीक-ठीक वैज्ञानिक नहीं है, फिर भी हम इसका उत्तर प्राणविज्ञान की दृष्टि से यानी प्राकृतिक निर्वाचन के नियम को सामने रखकर देने की चेष्टा करेंगे।

---

*Ibid, p. 256.

हमने ऊपर जो उदाहरण दिये हैं उन्हीं से इस विषय पर विचार किया जाय तो ज्ञात होगा कि ये उपाय सृष्टि के लिये उपयोगी नहीं हो सकते थे, तथा उनमें जाति की सृजनशक्ति का बहुत घाटा होता था। अब पुरुष ने अपनी पुरुषवस्तु को कोष में बन्द अवस्था में समुद्र के नीचे डाल दिया, अब क्या पता कि उसका क्या हश्र होगा ? शायद कोई जानवर उसे खा जाय, शायद कोई स्त्री गिरगिट उधर से गुजरे ही नहीं, इत्यादि। अब गिनाई हुई इन सारी प्रक्रियाओं में एक बात बहुत ही अपरिहार्य है, वह यह कि स्त्रीवस्तु (ovum) पुरुषवस्तु (spermatozoon) द्वारा उर्वरीकृत हो। इसका सबसे निरापद उपाय तो यही है कि इस प्रकार समुद्र की मर्जी पर न छोड़ कर पुरुषवस्तु प्रत्यक्ष रूप से स्त्रीवस्तु को उर्वर करने के लिये पहुंच जाय। ऐसा तभी हो सकता है जब अंडकोष-इलाके में पैदा होने वाली पुरुषवस्तु स्त्री के योनि-गर्त में सीधी पहुंच जाय। ऐसा होने पर उर्वरीकरण बहुत ही निश्चित हो जाता है। कई मछलियां प्रजनन-ऋतु में करोड़ों स्त्रीवस्तु की इकाइयां समुद्र में छोड़ देती हैं, इनमें से अधिकांश की भेंट वाञ्छित पुरुषवस्तु की इकाई से नहीं हो पाती है, नतीजा यह होता है कि वे सब खराब हो जाती हैं। इस दृष्टि से स्तनपायी तथा अन्य प्राणियों में प्रचलित मैथुन का तरीका कहीं अधिक निरापद तथा प्राण-विज्ञान की दृष्टि से श्रेष्ठ है। जिस प्रश्न को हमने अभी अपने सामने रक्खा था प्राणविज्ञान की दृष्टि से मैथुन की श्रेष्ठता प्रमाणित कर देने के बाद उसका उत्तर हम दे चुके, फिर भी यहां एक बात और बता देने की जरूरत है, वह यह कि मैथुन से साधनों की जो बचत हुई है, उससे केवल स्त्री को ही फ़ायदा पहुँचता है। पुरुष अब भी एक बार मैथुन के दौरान में लाखों पुरुषवस्तु की इकाइयों को योनिगर्भ में मुक्त कर देता है। यदि इनको मौका मिले तो वे लाखों स्त्रीवस्तु की इकाइयों का उर्वरीकरण करते, किन्तु साधारण तौर पर एक ही स्त्रीवस्तु की इकाई इन सबके लिये उपलब्ध

होती है। इस प्रकार मैथुन की प्रक्रिया में स्त्रीवस्तु की तो बचत होती है, किन्तु पुरुषवस्तु का उसी प्रकार अपव्यय जारी है। इस प्रकार फिर एक बार हम एक प्रश्न के सामने आकर टकराते हैं, पुरुषवस्तु का यह घोर अपव्यय क्यों? पहली बात तो इस सम्बन्ध में यह है कि प्रकृति आगे भी विकसित हो रही है, होगी, दूसरी बात यह है कि कौन जाने इस प्रकार लाखों पुरुषवस्तु की इकाइयों के अपव्यय में ही उस प्राणी जाति की भलाई हो। जब पुरुषवस्तु की इकाइयां योनिगर्भ में मुक्त हो जाती हैं, तो स्त्रीवस्तु की इकाई की खोज में उनमें एक दौड़-सी होती है। इस दौड़ में जो सबसे आगे स्त्रीवस्तु की इकाई के पास पहुँचती है, वह झट पूंछ त्यागकर उसके साथ एकाकार हो जाती है, और फिर स्त्रीवस्तु की इकाई का द्वार रुद्ध हो जाता है। मालूम होता है स्त्री-वस्तु की इकाई बड़ी सती होती है, एक को छोड़ करके वह दूसरों को नहीं भजती, किन्तु प्रश्न तो यही है कि ऐसा करके क्या उसने लाखों में सबसे अच्छी, तेज, स्वस्थ पुरुषवस्तु की इकाई को ही अपनाया? यदि उसने ऐसा किया है तो क्या पुरुषवस्तु की इन लाखों इकाइयों के अपव्यय का समर्थन नहीं निकल आता? अभी यह बात समझ में नहीं आई।

एक बात फिर भी सारी सेक्स-सृष्टि को देखने से लोगों के मन में उठने लगती है। वह यह कि सेक्स या मैथुन का उद्देश्य है क्या? फिर एक बार स्मरण रहे कि हम इस प्रश्न का उत्तर विज्ञान से नहीं चाहते, न विज्ञान इसका उत्तर हो दे सकता है। प्रश्न यह है हमें इस सम्बन्ध में कितना और क्या मालूम है। यह बात तो स्पष्ट है कि उच्च प्राणियों में मैथुन का सम्बन्ध प्रत्यक्ष रूप से प्रजनन से रहता है, याने मैथुन के फलस्वरूप प्रजनन करीब-करीब सभी क्षेत्र में होता है, फिर यह क्यों न समझा जाय पुत्रार्थे क्रियते भार्या तथा प्रजनन के बिना मैथुन समझ में नहीं आता? यह प्रश्न केवल एक कृत्रिम प्रश्न नहीं है, जब से मनुष्य सोचने लगा तब से उसके धार्मिक

नेताओं ने यह नारा दिया है। हमें इससे यहाँ कोई मतलब नहीं होता, यदि ऐसा प्राणविज्ञान की गवाही के सहारे नहीं कहा जाता। जैसा हमने लिखा, यह बात तो सच है कि सारे लिंगभेदवान प्राणी-जगत् में मैथुन के साथ-साथ प्रजनन लगा हुआ है, किन्तु यह भी सच है कि मनुष्यजाति में मैथुन की संख्या के साथ प्रजनन की संख्या की कोई समता नहीं रह गई। कभी जब मनुष्यजाति में प्रजनन के मौसिम का दौरा (periodicity) होता होगा, उस समय भले ही एक बार मैथुन से एक सन्तान की उत्पत्ति होती रही हो, किन्तु अब ऐसा नहीं होता यह एक तथ्य है। क्यों अब ऐसा नहीं होता सम्भव है यह जानना एक दिलचस्पी का विषय हो, किन्तु वर्त्तमान क्षेत्र में हम इस तथ्य को मानकर ही आगे बढ़ सकते हैं। शोपेन-हौएर ने यह जो कहा है कि प्रेम तथा मैथुन से प्रकृति केवल प्रजनन का काम करवाती है, इस बात के सिलसिले में हमें यह बात स्मरण रखना चाहिये कि प्रकृति के मन में क्या है, वह तो प्रकृति के ऊपर मन का आरोप करनेवाले ही जानें, किन्तु प्रकृति ने ही (उनकी भाषापद्धति का अनुसरण करते हुए) मैथुन को आत्यंतिक सुखकर बनाया। फिर इसके लिये कोई प्रमाण नहीं कि तमाम लिंगभेदशील प्राणी सुख के अलावा या एक कंडूयननिवृत्ति के अलावा प्रजनन मैथुन के लिये करते हैं। वे तो सुख के लिये करते हैं, किन्तु उसके गौण या यों कहिये प्राकृतिक परिणाम के रूप में प्रजनन होता है। यदि मनुष्य प्राणी भी ऐसा करता है, याने सुख के लिये मैथुन में प्रवृत्त होता है, तो उसे विशेष रूप से दोषी क्यों समझा जाय? पशुओं की तो बात दूर रही, बहुत-सी आदिम जातियां, जिनमें आस्ट्रेलिया तथा दक्षिण समुद्र के टापुओं की जातियां प्रमुख थीं, ऐसी थीं जो मैथुन के साथ प्रजनन के सम्बन्ध से कतई अपरिचित थीं। इन लोगों के नज़दीक स्त्री का गर्भवती होना एक देवता की देन थी, और मैथुन के साथ पितृत्व का कोई सम्बन्ध नहीं था।* ऐसी हालत में यह कहना कि मैथुन के साथ प्रजनन

का सम्बन्ध है प्राणीविज्ञान की दृष्टि से लिंगभेदशील प्राणियों के लिये सच होते हुए भी यह नहीं कहा जा सकता कि कहीं भी कोई प्राणी सिवा सुख प्राप्ति के और किसी कारण से मैथुन करते हैं। फिर सुखप्राप्ति को अत्यन्त गौण करार देकर प्रजनन को ही सब कुछ करके दिखाने की चेष्टा एक अपचेष्टा मात्र नहीं तो क्या है? यह केवल एक धार्मिक विचार को विज्ञान के सिर पर जबर्दस्ती लादना है। हम यह नहीं कहते कि केवल सुख का अनुसरणकर मनुष्य को यत्र-तत्र जब-तब मैथुन करने का हक है, हम केवल यही कह रहे हैं कि यह एक सामाजिक प्रश्न है, इस पर उसी दृष्टि से आलोचना कर हम किसी नतीजे पर पहुँच सकते हैं। केवल इतना ही नहीं इसमें चिकित्साशास्त्र, मनोविज्ञान प्रत्येक को कुछ न कुछ कहना है। हमें इस जगह पर इस प्रश्न से कोई सरोकार नहीं है, किन्तु एक बात हम साफ़ कर देना चाहते हैं कि मैथुन का एक प्रधान उद्देश्य सुख की प्राप्ति है, और इस बात को मानने में मनुष्य की मर्यादा में कोई हानि होगी हम ऐसा नहीं समझते हैं। इस नतीजे पर पहुँच जाने से मैथुन सम्बन्धी हमारा दृष्टिकोण धार्मिकों के दृष्टिकोण के सम्पूर्ण विरुद्ध पड़ जाता है, किन्तु साथ ही सुख से हमारा मतलब केवल क्षणिक वीर्यस्खलनजनित सुख से नहीं है, बल्कि स्थायी परितापहीन शुभ परिणामयुक्त सामाजिक सुख से है।

सुख तथा मैथुन के सिलसिले में यह स्मरण रखना चाहिये कि मैथुनात्मक अनुभूति जननेन्द्रियों से शुरू होकर अब सारे शरीर में व्याप्त हो गई है। पुरुष के सारे अंगों में ही मानो पुरुषत्व फैल जाता है, और वह स्त्री-अंग को पकड़कर उसके सहवास के लिये लालायित हो जाता है। जिस समय मैथुनात्मक इच्छा

*Creation & Evolution in Primitive Cosmogonies by Fraser, pp. 58-59.

साधारण रहती है, उस समय ये अंग जिन तक यह प्रसारित हो गई है, मैथुन की तृप्ति को और भी समग्रतर बनाती है, किन्तु अक्सर जब मैथुनेच्छा बहककर पथभ्रष्ट हो जाती है तो ये अंग इस गुमराही के केन्द्र बन जाते हैं। मैथुन तो केवल जननेन्द्रियों का याने पुरुष और स्त्री की जननेन्द्रियों के एक सुज्ञात तरह के सम्मेलन को कहेंगे, किन्तु चुम्बन को ही लिया जाय, यह क्या है? प्रजनन से इसका कोई सम्बन्ध नहीं अक्सर जानवरों में चुम्बन की तरह की कोई क्रिया नहीं है। इस दृष्टि से देखा जाय तो चुम्बन एक गुमराह मैथुन है। फ्रायड कहते हैं "चुम्बन को हम किसी कद्र एक गुमराह मैथुन (Perverse act) कहेंगे, क्योंकि इसमें जननेन्द्रियों के मिलन के बजाय दो व्यक्ति के मुँहों के कामानुभूतिशील (Erotogenic) हिस्सों का सम्मेलन होता है। कोई भी इसे गुमराह मैथुन करके दोष नहीं देता, बल्कि थियेटरों में मैथुन की सुरुचिपूर्ण अभिव्यक्ति के रूप में इसे होने दिया जाता है। फिर भी चुम्बन एक ऐसी क्रिया है जो बिल्कुल गुमराह मैथुन का रूप धारण कर सकता है याने तब जब कि वह इतनी तेजी से होता है कि उसी से मैथुन पूरा होकर स्खलन हो जाता है। दूसरे लोगों में स्पर्शन तथा दर्शन मैथुनात्मक ढंग की तृप्ति का कारण रूप धारण कर सकता है, ऐसे क्षेत्रों में मनुष्य या तो काट लेता है या खरबोटता है।* इस प्रकार कामात्मक प्रवृत्ति की तृप्ति सारे शरीर के किसी शरीर के किसी भी अंग को आश्रय बनाकर अपना कार्य कर सकती है। इसमें कोई बुराई नहीं है किन्तु जब उन अंगों में तृप्ति तथा कामात्मकता इतनी हद को पहुँच जाती है कि लैंगिक मैथुन बिल्कुल छोड़ ही दिया जाता है, उस समय वह गुमराह मैथुन का रूप धारण करता है। उस समय वह केवल प्राणविज्ञान की दृष्टि से ही नहीं मनोविज्ञान तथा शरीरविज्ञान की दृष्टि से

*Lectures on Psychoanalysis, p. 271.

एक गुमराह क्रिया का रूप धारण करता है। जननेन्द्रियों को छोड़कर काम क्षेत्र शरीर के अन्य क्षेत्रों में प्रसारित हो गया है, इस तथ्य का उपयोग जब लैंगिक मैथुन को पूर्णतर, और परितृप्ति को समग्रतर बनाने के लिये होता है, तब तक तो वह जायज और सही है, किन्तु ज्यों ही वे स्वयं एक अन्तिम लक्ष्य बन जाते हैं, वे निषिद्ध राज्य में प्रवेश कर जाते हैं। हम आगे गुमराह कामक्रिया में इसका समग्रतर विवेचन करेंगे।

कामात्मक प्रवृत्ति इस प्रकार केवल शरीर के विशेष अंगों पर विशेष रूप से तथा प्रत्येक अंग पर आम तौर पर ही अपनी विजयपताका फहराकर साँस नहीं लेती, बल्कि मन के राज्य पर भी उसने अपनाकर सहसू रूप से प्रसारित कर दिया। जैसा पहले ही कहा जा चुका है जहां पहले काम की एक कड़ी, आंख में दर्द पैदा करनेवाली ललाई थी, अब वहां मनुष्य ने इन्द्रधनुष के सारे रंग जगमगा दिये हैं। हम पहले ही बता चुके हैं कि फ्रायड कामात्मक प्रवृत्ति से मनुष्य के सारे मनोविज्ञान की उत्पत्ति बतलाते हैं, हम इसको अत्युक्ति भले ही माने जैसा कि हम मानते हैं किसी व्यक्ति के सही दिमाग होने के लिये एक बहुत बड़ी शर्त यह है कि उस व्यक्ति के यौन जीवन में सन्तुलन हो। यदि एक व्यक्ति अन्य सब तरह से सुखी है, किन्तु उसे अपनी स्त्री पर सन्देह है, या वह समझता है कि वह अपनी स्त्री को सन्तुष्ट नहीं कर पाता तो वह कभी सुखी नहीं हो सकता। डाक्टर जी० बी० हैमिल्टन ने A research in marriage में लिखा है "जब तक कि मैथुन कम से कम १०० में बीस मौकों पर पूर्ण परितृप्ति की पराकाष्ठा में अवसित नहीं होता तब तक यह समझना चाहिये कि आगे चलकर विपत्ति रहेगी। इस सम्बन्ध में सबसे कम जो हो सकता है वह यह है कि एक स्थायी खींचा हुआ असंतोष तथा बेचैनी मन में घर कर जाती है।" जीवन तथा मैथुनात्मक जीवन में सामंजस्य मानसिक स्वास्थ्य के लिए अपरिहार्य है।

इस सम्बन्ध में एक प्रश्न विशेषकर भारतीयों के लिये उठता है, वह यह कि आमरण ब्रह्मचर्य का वैज्ञानिक दृष्टि से क्या स्थान है। पहली बात तो इस सम्बन्ध में यह है कि यह अप्राकृतिक है, प्राणविज्ञान की दृष्टि से ब्रह्मचर्य एक अजीबोगरीब बात है जिसकी केवल मनुष्यों में ही कल्पना की जा सकती है। कामात्मक प्रवृत्ति का उदात्तीकरण (Sublimation) या उर्धरेता बनने की बात बहुत पुरानी है। हिन्दू शास्त्रों में इसकी भरमार है, फिर भी देखा जाय तो पुराणों में चिरब्रह्मचारी कुछ इने-गिने बताये गये हैं। अधिकांश पौराणिक वीर तथा ऋषि बड़े ही हजरत थे। हैवलाक इलिस का कहना है कि कामात्मक प्रवृत्ति के उदात्तीकरण की बात अरस्तू और अफलातून के लेखों में पाई जाती है। "अफलातून का कथन है प्रेम एक दिव्य पौधा है जिसकी जड़ें तो पृथ्वी में हैं और जिसके फूलों का रुख सूर्य की ओर है। कम कविहृदय तथा अधिक वैज्ञानिक होने के कारण अरस्तू ने इसी विचार को और भी स्पष्ट शब्दों में अदा किया है। उन्होंने इसको Katharsis या काम को पुण्यात्मक प्रवृत्ति में परिणत करने के दार्शनिक सिद्धान्त के साथ संयुक्त कर दिया है। सद्योजात इसाई धर्म इस विचार को और भी दूर ले गया।"* ब्रह्मचर्य से अधिक पुण्य प्राप्त होता है यह विचार सभी प्राचीन धर्मों में है। केवल इस्लाम में ऐसा नहीं है, किन्तु बाद को जाकर उसमें भी संसार-त्यागियों की अधिक कद्र होने लगी।

डाक्टर मारेस्ताँ नामक फ्रेंच वैज्ञानिक ने पूर्ण ब्रह्मचर्य के विषय में यों लिखा है "पूर्ण ब्रह्मचर्य शारीरिक या मानसिक किसी भी दृष्टि से हितकर नहीं है। जिस व्यक्ति में यौन इच्छा अवदमित रहती है, वह दिन-रात मैथुनिक विषयों के सम्बन्ध में सोचा करता है। जिस प्रकार भूख से पीड़ित लोग खाने के विषय में अधिक सोचा करते हैं, उसी प्रकार ब्रह्मचारी व्यक्ति

*The Physiology of Sex, p. 77 et seq.

जो साहित्य पढ़ता है, इस प्रकार के विपरीत आचरण करता है, इस प्रकार की अश्लील बातचीत करता है जो विवाहित व्यक्ति के लिये अकल्पनीय है। ये अभागे दिन में चौबीस घण्टे कामोत्तेजक विचारों, स्वप्नों तथा उड़ानों में निमग्न रहते हैं, इनको अपनी सारी शक्ति इसी शक्ति के प्रतिरोध में लगाना पड़ता है, इसलिये किसी गम्भीर कार्य में लगने के लिये न तो इनके निकट समय रहता है न शक्ति। ब्रह्मचारियों को ही इस बात का अधिक खतरा है कि वे कहीं अत्याचारी या ऊधमी भावनाओं में फँस न जाय। प्रकृति कभी अपने हकों का त्याग नहीं करती है, और यदि कोई उनका प्रतिरोध करे तो वह अक्सर भयानक बदला लेती है।"

मनोविज्ञान में उदात्तीकरण प्रक्रिया मानी गई है। उसका अर्थ है किसी प्रवृत्ति का मुँह मोड़ देना, याने उसकी धारा को उच्चतर दिशा में बहा देना। जिस व्यक्ति में झूठ की प्रवृत्ति है उसे राजदूत की नौकरी (Diplomatic service) में रख लिया, कहा जाता है कि इस प्रकार उसकी प्रवृत्ति का उदात्तीकरण हो गया। इसी प्रकार समझा जाता है मैथुनेच्छा का उदात्तीकरण हो सकता है, किन्तु हैवलाक एलिस का कहना है कि इस प्रक्रिया में प्रचुर शक्ति की जरूरत पड़ती है, और ऐसा कर लेना इसके विषय में बात बनाने से कहीं कठिन पड़ता है। हिर्शफेल्ड का तो यहां तक कहना है कि चिरकुमारगण अधिक अच्छे साहित्यिक, वैज्ञानिक या कलाकार होते हैं ऐसा समझने के लिये कोई कारण नहीं है। केवल यही नहीं, वे समझते हैं केवल धार्मिकगण तथा आत्यंतिक शारीरिक संचालन-क्रिया (Motor activities) में लगे हुए लोगों में सेक्स के उदात्तीकरण की कल्पना की जा सकती है। डाक्टर केनेथ वाकर का मत है कि इतना

---

*Quoted in War and Immorality, p. 123.

ही नहीं, केवल धार्मिक व्यक्ति ही ऐसा कर सकते हैं। हमारा मत यह कि धर्म एक तरह की धुन है, इसलिये किसी भी तरह की धुन में लगा हुआ ईमानदार कार्यकर्त्ता इस अवस्था को प्राप्त कर सकता है। फिर भी हम यहां अपने को साफ़ कर दें, इस अवस्था में अपने को पहुँचा सकने वाला उदाहरणस्वरूप लिया जाय क्रान्तिकारी का काम। सन्तुलनयुक्त विवाहित जीवन में स्थित क्रान्तिकारी के काम से किसी भी प्रकार श्रेष्ठ होगा ही ऐसा समझने के लिये हमारे पास कोई कारण नहीं है।

यहां हमें यह भी समझ लेना चाहिये कि उदात्तीकरण का मतलब यह नहीं कि किसी प्रकार लँगोट बन्द करके दाँत किटकिटाकर कोई पड़ा रहे। यह तो कोई सन्तुलन प्राप्त करना नहीं हुआ, और इसमें स्नायविक यहां तक कि हर प्रकार के शारीरिक-मानसिक विकार पैदा होने की सम्भावना है। ऐसे लोग पागल हों या न हों समाज के लिये बड़े खतरनाक हैं। न मालूम बालू द्वारा बना हुआ उनके संयम का कृत्रिम बांध कब ढह जाय, और अपने साथ न मालूम क्या-क्या बहा ले जाय। मध्य युग के पादरियों तथा हमारे यहां महन्तों की करतूतें इसके प्रमाण हैं। उदात्तीकरण का मतलब यह भी नहीं कि सेक्स से एक विजातीय घृणा पैदा हो जाय, और मनुष्य एक तरह से विकृत हो जाय। जो लोग दाँत किटकिटाकर किसी तरह ब्रह्मचर्यपालन करते हैं, वे अक्सर हस्तमैथुन तथा नारकिससवाद का आश्रय लेते हैं। नारकिससवाद शब्द को फ्रायड के पहले पी० न्येके (P. Nacke) ने इस्तेमाल किया था, इसका अर्थ यह है कि एक व्यक्ति अपने शरीर को उस तरह लाड़-प्यार करता है जिस तरह एक सही दिमाग़ साधारण व्यक्ति केवल प्रेमपात्री के शरीर को ही करता है। नारकिसस एक पौराणिक नाम है। यह सेफिसस नामक नदी देवता का लड़का था, और बहुत ही सुन्दर था। एको (प्रतिध्वनि) नामक परी उसके प्रेम में पड़ गई, किन्तु उसने प्रेम का प्रत्याख्यान किया। इस अपराध का बदला लेने के लिये

विनस ने उसको शाप दे दिया कि वह एक झरने में अपनी प्रतिच्छाया देखकर उस पर आशिक हो जायगा। ऐसा ही हुआ। वह अपनी प्रतिच्छाया पर आशिक हो गया, किन्तु उसे पाता तो कैसे पाता, इस कारण अन्त में उसने आत्महत्या कर ली।

कहना न होगा कि इस प्रकार के ब्रह्मचर्य-पालन का कोई मतलब नहीं, जब व्यक्ति को इनका आश्रय लेना पड़े। इसी जगह पर हम थोड़े में हस्त-मैथुन तथा नारकिससवाद पर आलोचना कर लें। तह तक देखने पर ये दोनों एक ही चीज ठहरती हैं। जब प्रेम का आधार दूसरा शरीर न होकर अपना शरीर या उसका कोई अंग हो जाता है तो ये दोष पैदा होते हैं। बच्चों का या प्राप्तवयस्कों द्वारा उँगली का चूसना भी एक प्रकार से इन्हीं दोषों का रूप है। बच्चा यदि ठीक तरह से कह सकता तो वह बता देता कि माता का स्तनपान ही उसके जीवन की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना या क्रिया है। इस प्रकार वह साथ ही साथ दो माँगों की पूर्ति करता है। बाद को जब उसे स्तन छोड़ना पड़ता है, तो वह उसी सुख की प्राप्ति के लिये उँगली चूसना शुरू करता है याने उसको अपनी तृप्ति का आधार बनाता है। डाक्टर लिन्डनर ने लिखा है कि "कभी-कभी इस प्रकार अपने अंगों के साथ प्रयोग करते हुए बच्चा उँगली चूसने से हस्त-मैथुन में पहुँच जाता है, क्योंकि वह देखता है जननेन्द्रिय की जगह अधिक सुखकर है।*

प्रत्येक व्यक्ति की मैथुनात्मक ज़िन्दगी कुछ न कुछ गुमराह होती है। यह गुमराही कौनसा रूप ग्रहण कर सकती है, इसको हम पहले ही गिना चुके हैं, हम यहां उनके सम्बन्ध में थोड़े विस्तार से विचार करेंगे।

---

*Lectures on Psychoanalysis by Freud, p. 265.

अब वैज्ञानिक साहित्य में perversion या गुमराही के स्थान पर deviation या च्युति शब्द का इस्तेमाल होता है। इसका कारण बताते हुए केनेथ वाकर ने लिखा है कि पहले गुमराही शब्द का इस्तेमाल इस कारण होता था कि सेक्स सम्बन्धी सारी अनियमिततायें इच्छाकृत पाप समझी जाती थीं। कुपढ़ों में अब भी ऐसा ही समझा जाता है, यही नहीं कथित शिक्षितों में सेक्स सम्बन्धी ज्ञान का नितान्त अभाव है। हम भी गुमराही शब्द से च्युति शब्द को अधिक अच्छा समझते हैं। यद्यपि गुमराह शब्द का अर्थ यह है कि हम राह से चूक गये और च्युति का भी यही अर्थ है मार्ग से च्युत हो गये, किन्तु पहले शब्द को धार्मिक व्यंजना प्राप्त होने के कारण पहले शब्द के मुकाबले में दूसरा शब्द ग्राह्य है। हस्तमैथुन ऐसी ही एक च्युति है, किन्तु विरले व्यक्ति ही ऐसे होंगे जो कभी न कभी इस च्युति के शिकार न रह चुके हों।

रगबी के भूतपूर्व मेडिकल आफिसर डाक्टर ड्यूकस का कहना है कि उस प्रसिद्ध विद्यालय में जो लड़के हस्तमैथुन करते थे उनकी संख्या ९० से ९६ फी सदी होगी। रोबो ने अमेरिका में प्रयोग किये और उसके फलस्वरूप उनको ज्ञात हुआ कि बहुत हो थोड़े पुरुष तथा स्त्रियां वहां पर ऐसी होंगी जिनको हस्त मैथुन का तजर्बा नहीं है। डाक्टर कैथराईन डैविस ने १००० स्त्रियों के सम्बन्ध में छानबीन की तो पता लगा कि उनमें से ६० फी सदी को हस्त मैथुन का तजर्बा है। ये लड़कियां २१ साल के ऊपर थीं और कालेज की थीं। स्त्रियां हस्तमैथुन पुरुषों के मुकाबले में कम उम्र में शुरू करती हैं। इस प्रकार हस्तमैथुन नियम है न कि व्यतिक्रम। केनेथ वाकर ऐसा ही मानते हैं। वेचर ने तो भविष्य प्रेम जीवन का इसे बीज माना है। क्रेट्श्नेर ने इसे स्वास्थ्यकर मैथुनिक प्रवृत्ति का सूत्रपात माना है बशर्ते कि इसमें ज्यादती न की जाय। जिस समय मैथुन नहीं प्राप्त है उस समय के लिये यह एक अच्छी बचत है ऐसा यही लेखक कहते हैं। हस्तमैथुन

उसी हालत में एक खतरनाक च्युति का रूप धारण कर लेता है जब वह स्वाभाविक मैथुन की जगह पर बैठ जाता है। युद्धकाल में अक्सर सैनिक स्त्री तथा वेश्या के अभाव में हस्तमैथुन करते हैं। एक हंगेरियन मेजर का यह कथन इस परिस्थिति को बहुत स्पष्ट करता है जिसने स्पष्टतापूर्वक किन्तु अश्लीलता के साथ कहा था कि पहले स्त्री मेरा दाहिना हाथ सी थी और अब मेरा दाहिना हाथ मेरी स्त्री है। कहा जाता है युद्ध पुरुष और स्त्री दोनों का कामोद्रेक करता है। एक मेजर टेलिस्कोप के अन्दर से युद्ध देखते हुए हस्तमैथुन करता था। नेपोलियन के सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि आउसबर्ग की लड़ाई जब तेजी पर चल रही थी, उस समय नेपोलियन ने एक स्त्री मँगवाई और उससे संभोग किया। जो कुछ भी हो यह स्पष्ट है कि आधुनिक चिकित्साशास्त्र यह नहीं मानता कि सभी क्षेत्रों में यह हानिकारक होगा ही, अवश्य जिस हालत में हस्तमैथुनकारी या कारिणी ऐसा समझती है कि उसे ऐसा नहीं करना चाहिये, वह बहुत ही बुरा काम कर रहा या रही है, उस हालत में उसको अनिवार्य रूप से हानि होगी ही क्योंकि मन का शरीर पर असर पड़ेगा ही। इस सम्बन्ध में बहुत ही मूर्खतापूर्ण विचार प्रचलित हैं, इनका फायदा उठाकर ठग लोग खूब अपना उल्लू सीधा करके दवा आदि बेच लेते हैं। जो कुछ भी हो इसके साथ ही यह समझना चाहिये कि हस्तमैथुन एक च्युति है, इसका तृप्ति मूल्य बहुत ही थोड़ा है। अधिक में तो अतृप्ति की मात्रा बढ़ ही जा सकती है, उस हालत में यह एक शारीरिक मानसिक व्याधि में परिणत हो सकता है जिसके फलस्वरूप व्यक्ति ऐसी हालत में पहुंच सकता या सकती है कि वह आत्महत्या कर ले। यह क्रिया अवश्य ही त्याज्य है, किन्तु किसी ने यदि दस बीस बार कर ही लिया तो वह अपने को मनुष्यता के दृष्टिकोण से खारिज समझे, यह भी दृष्टिकोण बहुत ही गलत है। दीर्घकाल तक जबर्दस्ती ब्रह्मचर्य की हालत में यदि कोई यदा-कदा हस्तमैथुन कर ले, तो उसे हानि ही होगी ऐसा समझने का कोई कारण नहीं। हमारे इस कथन

का यह अर्थ कदापि न लगाया जाय कि हम किसी भी प्रकार हस्तमैथुन को प्रोत्साहन दे रहे है, किन्तु वैज्ञानिक डाक्टरी मत यह हैं कि स्वाभाविक मैथुन के एवज़ी के रूप में हस्तमैथुन यदाकदा निन्दनीय नहीं कहा जा सकता। फिर यह विश्वव्यापी है, स्त्रियों में भी इसका प्रचलन खूब है। यह पूछा जा सकता है कि किस हद तक यह निन्दनीय नहीं है। इसका उत्तर देना कठिन है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति के क्षेत्र में इसका उत्तर भिन्न होगा। डाक्टरों ने इसका कोई निश्चित उत्तर नहीं दिया है। हम केवल इतना ही कहते हैं कि इससे बचा जाय, किन्तु यदि इससे बचा न जाय तो अपने को पापी न समझा जाय, विशेषकर जब कि क़रीब-क़रीब कोई भी सही दिमाग़ व्यक्ति कुछ परिस्थितियों में इससे नहीं बचता। बहुत दीर्घकाल तक ब्रह्मचर्य से मनुष्य आंशिक रूप से या सम्पूर्ण रूप से नपुंसक हो जा सकता है, क्योंकि जब खास रक्तग्रंथियों में रक्त पहुँचेगा ही नहीं, तथा वे संकुचन और प्रसारण की आदी नहीं रहेंगी, तो वे बहुत ही संभव है उर्ध्वबाहु संन्यासियों के बाहु की तरह संभव है सूखकर कड़ी तथा निस्तेज पड़ जायें। ऐसी हालत में यदाकदा कृत्रिम रूप से उन पेशियों में रक्त दौड़ा देना उनको निर्जीवता से बचाना है, किन्तु स्मरण रहे ऐसा कहते समय हम उसके अन्य परिणामों को क़तई भूल रहे हैं। किन्से के विचार हम बाद को देखेंगे।

जिसे अप्राकृतिक व्यभिचार कहते हैं वह एक दूसरी च्युति है। इसमें व्यक्ति भिन्नलैंगिक मैथुन छोड़कर समलैंगिक के साथ मैथुन में प्रवृत्त होता है। साधारण धारणा यह है कि मनुष्य जाति में ही इस प्रकार की अप्राकृतिकता प्रचलित है, किन्तु ऐसा नहीं। आत्म-मैथुन की तरह समलैंगिक मैथुन सारे प्राणीजगत में फैला हुआ है। जी० वी० हैमिल्टन ने बन्दरों तथा लंगूरों का अध्ययन कर लिखा है, अपरिपक्व पुरुष बन्दर एक ऐसे युग से गुज़रता है जब वह खुल्लमखुल्ला और सोलहों आने समलैंगिक मैथुन में रत रहता है। यह युग एकाएक समाप्त होने के बाद

बन्दर भिन्नलैंगिक मैथुन में संलग्न दीख पड़ता है। "असभ्य लोगों में समय-समय पर समलैंगिक मैथुन कर लेना प्रचलित है, साथ ही कुछ जातियों में इसके प्रति केवल सहिष्णुता ही दिखाई नहीं गई, बल्कि उसको सम्मान की दृष्टि से देखा गया। चार हजार वर्ष पहले मिश्र देशवासी अपने देवता होमो और सेट को समलैंगिक मैथुनरत करके कल्पना करते थे। ग्रीक सभ्यता में समलैंगिक प्रणय की प्रशंसा की गई, यहां तक कि यह समझा जाता था भिन्नलैंगिक प्रेम से यह ऊँचे दर्जे का है।"* अरब में भी यही हाल था। प्राचीन उर्दू कविता तो समलैंगिक प्रेम की कविता है। आश्चर्य है कि हमें जहां तक ज्ञात है अन्य सब तरह की कहानियों से पूर्ण भारतीय पुराणों में समलैंगिक मैथुन का कहीं उल्लेख नहीं मिलता। प्राचीन भारत में यह रोग कम रहा।

अमेरिका में समलैंगिक मैथुन किस हद तक प्रचलित है इसके आँकड़े किन्से ने एकत्र किये हैं। केवल हिर्शफेल्ड ने लिखा है कि बर्लिन में २०,००० पुरुष-वेश्यायें हैं। केनेथ वाकर का मत यह है कि हमें इस आँकड़े को सावधानी के साथ काम में लाना चाहिये क्योंकि व्यभिचार बेकारी का भी उतना ही द्योतक है जितना मैथुनात्मक शिथिलता का द्योतक है। बहुत से लोग धन के लिये पुरुष-वेश्या होना स्वीकार करते हैं न कि आनन्द के लिये।†

हम यहाँ पर इस प्रश्न पर विचार ही नहीं करना चाहते थे कि वेश्या-वृत्ति चाहे वह प्राकृतिक हो चाहे अप्राकृतिक हो उसकी तह में क्या बात है, किन्तु जब यह प्रश्न आ पड़ा है, और यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है, इसको संक्षेप में निपटा ही देना चाहिये। यों तो सभी सामाजिक प्रश्न अन्ततोगत्वा आर्थिक प्रश्न हैं, किन्तु वेश्यावृत्ति का प्रश्न तो

---

*Physiology of Sex, p. 128.

†Ibid. p. 129.

सोलहों आने आर्थिक है। इसकी कल्पना तो की जा सकती है कि किसी में स्वभाव का ऐसा विकास हो गया हो जो वह आम तरह से एकव्रत न रह सके, किन्तु इसकी तृप्ति के दौरान में रुपये लेने की जो प्रथा चल पड़ी है वह बिल्कुल एक आर्थिक प्रश्न है। जिस समाज में उत्पादन के साधन तथा जमीन पर मुट्ठीभर लोगों का एकाधिकार है, और बाक़ी लोग उनके गुलाम, अर्धगुलाम या मजदूर मात्र हैं तथा किसी प्रकार जीवन-धारण करते हैं, जिस समाज में मैथुन एक पारस्परिक सुख का साधन नहीं, बल्कि जहां यह भी श्रम की तरह एक पुण्य हो गया है वहीं वेश्यावृत्ति की कल्पना की जा सकती है। अप्राकृतिक वेश्यावृत्ति तो और भी जघन्य है, क्योंकि इसमें तो आर्थिक गुलामी का उपादान बिल्कुल स्पष्ट है। एक साम्यवादी समाज में जहां उपभोग्य वस्तुओं की प्रचुरता है, जहां काम करना जीवन का एक आनन्दमय अंश है न कि केवल मजबूरी तथा आवश्यक बुराई, वहां किसी प्रकार की वेश्यावृत्ति रह नहीं सकती। रही मैथुनात्मक अनियमितताएँ सो ऐसे मामले में पूँजीवाद-सामन्तवाद के अवशिष्ट प्रभावों के खातमे के साथ-साथ लुप्त हो जायेंगी या सुधार-घरों तथा अस्पतालों में ऐसे लोगों का इलाज किया जायगा। देखो मेरी 'वेश्यावृत्ति' पुस्तक।

समलैंगिक मैथुन प्रायः प्रत्येक देश में एक अपराध समझा गया है, किन्तु जितने मुकद्दमे अदालत में जाते हैं उनसे इसके प्रसार के सम्बन्ध में कोई धारणा कायम करना असंभव होगा, क्योंकि बहुत ही थोड़े मामले अदालत में जाते हैं। इस अपराध की तह में यह बात है कि प्रत्येक व्यक्ति में पुरुष तथा स्त्री दोनों स्वभाव होते हैं। यदि किसी पुरुष में स्त्री स्वभाव अधिक हो तो वह समलैंगिक मैथुन का पात्र हो सकता है। समलैंगिक मैथुन इसी मानसिक आधार को लेकर चलता है, किन्तु इसका शारीरिक आधार भी हो सकता है। वाईल ने यह दिखलाया है कि समलैंगिक मैथुन में स्त्री का पार्ट अदा करनेवाले पुरुष के निचले पाकाशय का गठन स्त्रियों की तरह

होता पाया गया है, उनके बाल भी स्त्रियों की तरह हो सकते हैं, तथा उरु और नितम्ब पर चर्बी जमा हो सकती है उनके चमड़े में भी नर्मी तथा आवाज़ में स्त्री भाव पाया गया है।* इस प्रकार यह एक गहराई तक गई हुई अनियमितता है। डब्ल्यू० डब्ल्यू० पेक ने अमेरिका में इसके प्रसार के सम्बन्ध में खोज की तो उनको ज्ञात हुआ कि अमेरिका के कालेजों में दस फी सदी समलैंगिक मैथुन में भाग लेते हैं।† किन्से के आंकड़े बाद में है।

अब वैज्ञानिक रूप से यह ज्ञात हो चुका कि पुरुष वेश्या वह व्यक्ति है जिसमें स्त्रीत्व के उपादान अधिक हैं, तथा स्त्री समलैंगिक मैथुनकारिणी वह व्यक्ति है जिस में पुरुषत्व के उपादान अधिक हैं।‡ स्त्रियों के समलैंगिक मैथुन के विषय में बहुत कम सुन पड़ता है, किन्तु यूरामेरिका में इनका प्रसार कम नहीं है। फिर भी पुरुषों के समलैंगिक मैथुन की तुलना में उनके अपराधों की संख्या कम है ऐसा लोग समझते हैं। जो कुछ भी हो समलैंगिक मैथुन के विषय में प्रचलित सिद्धान्तों का यह जो रुख है कि कोई जन्म से ही समलैंगिक मैथुनकारी होकर पैदा होता है यह बहुत ही निराशावादी सिद्धान्त है, यह हमें कभी मान्य नहीं हो सकता। इतना तो माना जा सकता है कि किसी में समलैंगिक मैथुन के लिये जन्म से अधिक रुझान है, किसी में कम, किन्तु इसको शिक्षा तथा चिकित्सा द्वारा हम ठीक नहीं कर सकते इसे हम नहीं मानते। फिर शिक्षा और चिकित्सा हैं किस मर्ज़ की दवा ?

समलैंगिक मैथुनकारियों के विषय में फ्रायड का कहना है, "अक्सर यद्यपि हरेक क्षेत्र में नहीं, वे ऐसे व्यक्ति हैं जिनकी मानसिक, बौद्धिक

---

*Ibid, p 130.

† Ibid.

तथा नैतिक उन्नति और विकास एक अतिरस्करणीय ऊँचे दर्जे पर पहुँच चुकी है, बस उनमें कुछ गलती है तो यही। इनकी तरफ़ से कुछ वैज्ञानिक इनके मुखपात्र बनकर यह दावा करते हैं कि वे मनुष्य जाति के एक विशेष वर्ग हैं, याने "तृतीयलैंगिक वर्ग" (Third sex), जिनको दूसरे दो वर्गों के साथ बराबर अधिकार प्राप्त है। यह बिलकुल गलत है कि वे मनुष्यजाति के कोई खास चुने हुए वर्ग हैं क्योंकि उनमें निकृष्ट तथा निकम्मे लोग कम से कम उसी तारतम्य में मौजूद हैं जिस प्रकार अन्य वर्गों में हैं।"* मालूम होता है फ्रायड ऐसा लिखते समय यह भूल गये कि क़रीब-क़रीब सभी पक्के अपराधी समलैंगिक मैथुनकारी होते हैं। इस प्रकार तृतीयलैंगिक लोगों की निकृष्टता बहुत साफ़ हो जाती है।

जो लोग अपने को खुल्लमखुल्ला समलैंगिक मैथुनकारी मानते हैं उनकी तुलना में ऐसे लोगों की संख्या बहुत अधिक है जिनमें यह प्रवृत्ति सुप्त है। सच बात तो यह है फ्रायड इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि आत्यंतिक समलैंगिक मैथुनप्रवृत्ति को दबाने से Paranoia पैदा हो जाता है।† इसका मतलब यह अवश्य ही नहीं होता कि उसे ऐसा करने दिया जाय। चौर्यप्रवृत्तिशील (Kleptomaniac) को चोरी करने देने का सवाल नहीं उठता तो फिर समलैंगिक मैथुन को असामाजिक जानते हुए कैसे उसकी ओर से दृष्टि फेर ली जा सकती है। फिर जो लोग समलैंगिक मैथुन को अवयवगत त्रुटि से मानते हैं, वे यह कब कहते हैं कि उस प्रकार की आवयविक त्रुटि अनिवार्य है, तथा उसे दूर नहीं किया जा सकता। समलैंगिक मैथुनकारी के शरीर के विषय में यह ज्ञात हुआ है कि उसका अंडकोष (Testes) पुरुष होर्मोन (Sex hormone) पैदा करने के बजाय स्त्री होर्म पैदा करता है। स्टाइनाख ने अपने अध्ययनों

---

*Ibid.

†Freuds Lectures on Psychoanalysis, p. 256.

से यह नतीजा निकाला कि समलैंगिक मैथुनकारी का अंडकोष अद्भुत तरह का होता है, और इसलिये उन्होंने कहा कि अस्त्रोपचार द्वारा इसको ठीक करने से ही यह संभव होगा कि समलैंगिक मैथुनकारी का सही इलाज हो।* यदि यह माना जाय कि समलैंगिक मैथुनकारी में कोई आवयविक गड़बड़ी नहीं है, तब तो उसका इलाज हो ही सकता है।

कौन लोग अक्सर समलैंगिक मैथुन के शिकार होते हैं इस विषय पर विशेष खोज करने पर यह पाया गया है कि अक्सर ऐसे लड़के जिन पर बचपन में अधिक दिनों तक स्त्रियों का प्रभाव रहता है, वे ऐसे होते हैं, क्योंकि उनमें पुरुषत्व कम होता है। पिता-माता की एकमात्र सन्तान तथा बहुत से भाइयों में सबसे छोटा भाई अक्सर इस प्रकार शिकार हो जाते हैं। माँ के अत्यन्त दुलारे बच्चे के लिये ऐसा बहुत सम्भव है कि वह बाद को इस प्रकार हो निकले।† कहना न होगा यह सब केवल उत्तेजक कारण या रुख ही पैदा कर सकते हैं, उदाहरण तथा शिक्षा के बगैर फिर भी यह रुख फलीभूत नहीं होता। हैवलाक इलिस का कहना है प्रेम में निराशा का सामना होने पर बहुत से लोग अप्राकृतिक व्यभिचार की ओर झुक सकते हैं, किन्तु ऐसा अवसर नहीं होगा। प्रेम में निराशा होने पर बहुत सम्भव है कि मनुष्य बिल्कुल ही सब तरह के मैथुनात्मक व्यवहार से हट जाय। सभी तरह के अन्दर से समलैंगिक मैथुन के सम्भावनायुक्त लोग कार्यरूप में समलैंगिक मैथुन करते ही हैं ऐसा नहीं, इस बात के वे सामाजिक कार्य परोपकार या सेवा में उदात्तीकरण कह सकते हैं। इसके अलावा ऐसे लोग लड़के-लड़कियों की शिक्षकता, स्काउट का काम तथा मजदूर मुहल्लों में काम कर अपने रुख का उदात्तीकरण कर सकता है। हैवलाक इलिस का कहना है कि बीस फी सदी समलैंगिक मैथुन की

†Ibid, p. 259.
*Sex by Crew in Outline of Modern Knowledge, p. 216.
†The Physiology of Sex, p. 132.

संभावनायुक्त लोग ऐसा उदात्तीकरण कर लेते हैं (अपनी अनजान में), तथा ३५ फी सदी केवल पारस्परिक हस्तक्रिया करके ही शान्ति कर लेते हैं। फ्रान्स, इटली, हालैंड तथा बेल्जियम जहां कोड नापलेयँ (Code Napoleon) का प्रभाव है, वहां समलैंगिक मैथुन को ओर केनेथ वाकर के शब्दों में एक मनुष्यतापूर्ण रुख लिया गया है, और वहां राष्ट्र समलैंगिक मैथुन में दस्तंदाजी नहीं करता, यदि उसके लिये जबर्दस्ती न की जाय, किसी नाबालिग पर न हो, तथा सार्वजनिक सुरुचि के विरुद्ध कोई कार्य न हो। इस सम्बन्ध में कानून कहां तक उपयोगी हो सकता है इसका एक अच्छा विवरण केनेथ वाकर ने दिया है कि जिस जमाने में फ्रान्स में समलैंगिक मैथुन की सजा बाँधकर जला देना था, उस समय यह अपराध आम था तथा फैशन भी समझा जाता था, किन्तु अब जब कि फ्रान्स में कानून इसमें हस्तक्षेप नहीं करता तो इसको लोग गर्हित भी समझते हैं और इसका प्रचार कम भी है।* एक बात जिस पर इस सम्बन्ध में किसी भी लेखक को लिखते नहीं पाया वह यह है कि विरुद्ध लिंग के साथ मैथुन या साहचर्य की सुविधा के अभाव में समलैंगिक मैथुन को तरक्की मिलती है। इसका प्रमाण यह है सेना, पुलिस, जेल जहां एक लिंग के लोग रहते हैं इस अपराध का प्रादुर्भाव अधिक है। जेल के कैदियों की तरह कैदिनें अक्सर समलैंगिक मैथुन या हस्तमैथुन का आश्रय लेती हैं। कहना न होगा इन क्षेत्रों के अप्राकृतिक व्यभिचार को हम व्यभिचार की शारीरिक बनावट आदि पर थोपकर बैठे नहीं रह सकते, यहां तो कारण सम्पूर्ण रूप से सामाजिक है, और हटाया जा सकता है। रहा इस सम्बन्ध में कानून होना चाहिये या नहीं, इस पर हमारा मत यह है कि यदि यह माना जाय कि कोई ऐसा

*Ibid.

शारीरिक बनावट के कारण है तो उसे कोढ़ी को जिस तरह हटा दिया जाता है समाज के अन्दर से हटा दिया जाय, किन्तु यदि यह समझा जाय कि शिक्षा तथा उदाहरण से ही यह प्रवृत्ति उसमें मुख्यतः पैदा हुई है तो उसको सुधारघर में रखकर उसको दूसरी शिक्षा दी जाय, उसे स्त्रियों की सोहबत में रक्खा जाय। इस प्रकार उसे एक साधारण सही दिमाग नागरिक बनाने की चेष्टा की जाय।

Exhibitionism या कामात्मक प्रदर्शन एक अन्य च्युति है, जिसका हमें इस सम्बन्ध में ज़िक्र करना पड़ेगा। इसमें मनुष्य अपने गुप्त अङ्गों को विरुद्ध लिंग के व्यक्ति को दिखाकर ही तृप्ति कर लेता है, यदि ऐसा वह कामनिवेदन के रूप में रतिभिक्षा के लिये करता तो हम उस पर जितना भी हँसें उसमें दूषणीय कुछ भी नहीं होता, किन्तु जब यह मैथुन की जगह ले लेता है, और कामात्मक प्रदर्शनकारी प्रदर्शन के आगे कुछ नहीं चाहता तो वह एक च्युति तथा रोग का रूप धारण कर लेता है। कामात्मक प्रदर्शनकारी एक स्त्री को अपनी नग्नता के प्रदर्शन के लिये चुनेगा, ऐसे आकस्मिक प्रदर्शन के फलस्वरूप वह स्त्री जिस प्रकार चौंक पड़ती है, वही उसको उस प्रकार की तृप्ति प्रदान करता है जो अन्य लोगों को मैथुन से होती है। ऐसा करते समय वह मैथुनात्मक रूप से उत्तेजित भी नहीं ज्ञात होता। कभी-कभी तो वह बिलकुल नपुंसक होता है, और कभी उसका सेक्स बिल्कुल दुर्बल होता है।* ऐसे लोगों की चिकित्सा होनी चाहिये इस सम्बन्ध में दो रायें नहीं हैं। इसी च्युति के साथ मिलती-जुलती च्युति यह है कि किसी स्त्री के सफेद पोशाक पर स्याही फेंककर मारी जाय, या ऐसा कुछ किया जाय जिससे उस स्त्री में अत्यन्त प्रचण्ड प्रतिक्रिया हो। इसी प्रकार किसी स्त्री के बाल

*Physiology of Sex, p. 135.

काट लेने का मर्ज है। स्याही फेंकना तथा बाल काट लेना प्रतीक रूप से स्त्री से बलात्कार करना है, इस प्रकार प्रतीकवाद से स्नायविक विकारग्रस्त को तृप्ति हो जाती है।† च्युतियों का उल्लेख करते समय हमें कुछ च्युतियों को और गिनाना पड़ेगा। मैथुनात्मक दृष्टि से प्रेमपात्री के जननेन्द्रिय के साथ अपने जननेन्द्रिय को संयुक्त करना ही ध्येय है, किन्तु यदि इस अंग के काम को किसी और अंग को सौंपा जाय जैसे मुख को योनि समझकर वर्ताव किया जाय तो वह भी च्युति ही हुई। पहले ही हम बता चुके हैं यदि चुम्बन में ही किसी को पूर्ण परितृप्ति हो तो वह भी च्युति का रूप धारण कर लेगी। इसी तरह जननेन्द्रियेतर किसी अंग को मैथुन की पराकाष्ठा के केन्द्र का स्थान दे देना जैसे स्त्री के स्तन को, जाँघ को, चरण को या बालों के गुच्छों को ये भी च्युतियां है। केवल शरीर के अंगों को ही नहीं, प्रेमपात्री के साथ सम्बद्ध साड़ी का टुकड़ा, जूता या अन्डरवैर (नीचे का कपड़ा) यह स्थान ले सकता है। इसी को मैथुनात्मक बुतपरस्ती या fetishism कहते हैं इसके अलावा और भी च्युतियां है जैसे बहुत से लोग अपनी प्रेमपात्री को लाश के रूप में देखने से ही उन्हें पूर्ण परितृप्ति होगी, किन्तु ऐसी च्युतियों को सेक्स के दायरे में न समझकर अपराध के दायरे में समझना उचित होगा।

इस प्रकार विभिन्न च्युतियों को गिनाने के बाद हम एक बार फिर चिरब्रह्मचर्य के प्रश्न पर लौटते हैं। कामेच्छा सब लोगों में समान रूप से प्रबल नहीं होती, अतएव सब लोगों के लिए ब्रह्मचर्य का पालन समान रूप से कठिन या आसान नहीं है फिर किसी में कामेच्छा दो-चार वर्षों तक पुष्पित पल्लवित होकर एकदम मुरझा जाती है, किन्तु किसी में बुढ़ापे के अन्तिम

†The Perversions, lecture by Freud, p. 957.

मुहूर्त तक उपभोग तथा प्रेम की शक्ति प्रबल रहती है। कहा जाता है महाकवि गेटे के प्रत्येक काव्य के पीछे एक ताजी सुन्दरी का अस्तित्व है। ७५ साल की उम्र में वृद्ध गेटे एक उन्नीस साल की लड़की पर आसक्त हो गये, किन्तु उस लड़की ने महाकवि के प्रेम को ठुकरा दिया, इस पर उन्होंने लिखा "मैं एक अदम्य इच्छा के भँवर में फँस गया हूँ। अब अश्रुविसर्जन के अलावा मेरे निकट कुछ नहीं है। उन्हें बहने दो, उनकी झड़ी लगी रहे, किन्तु वे कभी उस आग को बुझा नहीं सकती जो मेरे अन्दर प्रतिनियत जल रही है।"‡ टाल्स्टाय ने सत्तर साल की उम्र में अपनी पुस्तकों के अंग्रेजी अनुवाद एल्मर मोड से यह कहा था कि कल रात को मैं अपनी स्त्री का पति बना था। इस प्रकार अधिक उम्र तक यौवन कायम रखने को न केवल शारीरिक शक्ति का बल्कि बौद्धिक तथा संवेदन सम्बन्धी जीवनीशक्ति का परिचायक समझा जाता है। प्रतिभावान व्यक्ति कई बार व्यभिचारी होते हैं इसका भी अर्थ यही लगाया गया है कि उनमें बौद्धिक सृजनशक्ति के साथ-साथ यौन-शक्ति भी अत्यधिक होती है। यह एक अवान्तर विषय है किन्तु जब यह आ गया तो इस पर हमारी राय व्यक्त कर देना आवश्यक है। हमारे पास ऐसे कोई आँकड़े नहीं हैं जिससे यह कहा जा सके कि प्रतिभावान व्यक्ति साधारण व्यक्ति से अधिक संख्या में व्यभिचारी होते हैं। रहा ऐसी लोगों की धारणा क्यों हो गई सो यह बात है कि उनकी ओर सार्वजनिक दृष्टि लगी रहती है, जो बात औरों के क्षेत्र में दृष्टि आकर्षित नहीं करती, यहां तक कि जिसमें शायद तथ्यगत रूप से कुछ है भी नहीं, उनमें सब की दृष्टि आकर्षित होती है, केवल यही नहीं तिल का ताड़ बनकर एक अजीबोगरीब रूप धारण करती है।

विभिन्न लोगों में यौन शक्ति के स्थायित्व में ही विभिन्नता नहीं होती,

---

‡Physiology of Sex by Kenneth Walker, p. 59.

बल्कि उसके घनत्व में भी प्रभेद होता है। कुछ लोग चार छै महीने में एक ही आध दफे अपनी स्त्री के पास जाते हैं, और कुछ लोग वर्षों तक लगातार नित्य दो दफे और कभी-कभी तीन बार अपनी स्त्री के पास जाते रहे, उनके मानसिक शारीरिक स्वास्थ्य में इससे कोई फर्क नहीं आया। अब इतना स्पष्ट है कि इन दोनों श्रेणियों के लोगों के लिए ब्रह्मचर्य एक ही तरह का व्रत नहीं है। एक के लिए यह बहुत ही कठिन है, दूसरे के लिए अपेक्षाकृत आसान है।

चाणक्य ने कुछ भी कहा हो, किन्तु पुरुषों के मुकाबले में स्त्रियों में काम प्रवृत्ति कम होती है,* इसलिये उनके लिए ब्रह्मचर्य पालन पुरुष के मुकाबले में आसान होता है। हम यहां पर ऐसा इसलिए नहीं कह रहे हैं कि पुरुषों की व्यभिचार प्रवृत्ति का कुछ थोड़ा दोषस्खालन करें या स्त्रियों की सच्चरित्रता का कोना काट दें बल्कि हमने इसका इस लिए जिक्र कर दिया यह एक तथ्य है।

यह पहले ही बताया जा चुका है कि आजन्म ब्रह्मचारी व्यक्ति किसी भी तरह अधिक अच्छा कलाकार या बौद्धिक नेता या योद्धा होता है ऐसा समझने के लिए हमारे पास कोई कारण नहीं। सबसे ताज्जुब की बात है कि अजन्मकुमारगण अधिक रोगी होते हैं तथा उनकी औसत आयु भी कम होती है। ऐसी हालत में आजन्मकुमार या कुमारीव्रत केवल कुछ लोगों की सनक मात्र है, याने उस हालत में भी जब कि वह संभव हो।

इसी प्रश्न के साथ जन्म निरोध का प्रश्न है। जन्मनिरोध के कई तरीके हैं, एक तो अस्त्रोपचार द्वारा ऐसा कर दिया जाता है कि पुरुष-वस्तु के साथ स्त्रीवस्तु का इस प्रकार सम्मेलन ही नहीं होने दिया जाता जिससे प्रजनन की शर्तें पूरी हों, मैथुन के समय ऐसी दवा, प्रलेप या थैले आदि का इस्तेमाल किया जाता है जिससे प्रजनन न हो सके। ये

*Physiology of Sex, p. 39.

तरीके दिन-ब-दिन उन्नत होते जा रहे हैं, कोशिश यह है कि उपाय ऐसे हों जिनसे उपभोग में कमी न हो पावे, और प्रजनन की कोई भी संभावना न हो पावे। हम पहले ही यह मान चुके हैं कि मैथुन सुख के लिये भी है, अतएव जन्मनिरोध के हम नैतिक रूप से विरुद्ध नहीं हो सकते, किन्तु कोई निरवच्छिन्न देशकाल से सम्बन्धविरहित मानदण्ड नहीं है। वर्त्तमान तथा आगामी समाज की दृष्टि से ही नैतिकता का निर्णय हो सकता है। जन्मनिरोध का भी इसी दृष्टि से विचार होना चाहिये। जिस देश में मृत्यु के मुक़ाबले में जन्म का तारतम्य कम है, और रोज़ होता जा रहा है वहां जन्मनिरोध उस देश के मुक़ाबले में जहां मृत्यु के मुक़ाबले में जन्म बहुत होते हैं एक दूसरी ही हैसियत रक्खेगा। एक बात तो मोटे तौर पर साफ़ समझ में आती है कि उत्पादन की शक्ति में प्रगति से जनसंख्या वृद्धि का तारतम्य अधिक न हो नहीं तो रहन-सहन के मानदण्ड में वृद्धि न होकर अवनति ही होगी। पर इस सम्बन्ध में यह भी सोचना पड़ेगा कि जन्म-निरोध के वर्त्तमान उपायों का प्रचार ऐसे तबकों में हो भी सकता है या नहीं जिसमें आर्थिक कारणों से जन्मनियन्त्रण की सबसे अधिक जरूरत है, उनमें इसका प्रसार संभव भी है या नहीं। जन्म-निरोध एक सामाजिक प्रश्न है, उसके सम्बन्ध में निर्णय सामाजिक दृष्टि से ही हो सकता है। यदि राष्ट्र बच्चे के पालन-पोषण साथ ही शिक्षा-दीक्षा का भार ले ले, तो राष्ट्र को यह अधिकार है कि वह नागरिक से यह कहे कि वह जन्म-निरोध न करे, अन्यथा यह व्यक्ति पर है कि जन्मनिरोध करे या न करे! किसी भी हालत में चिररोगी, पंगु तथा विकलांगों को उत्पन्न न करना नागरिक का कर्त्तव्य है। यह समझना भूल है कि केवल शिक्षित व्यक्ति ही जन्मनिरोध की बात सोचते हैं। वेरियर एलविन ने Conception Pregnancy and Birth नाम से एक बहुत सुन्दर पुस्तक लिखी है,

उसमें जंगलियों की इस सम्बन्धी धारणाओं तथा व्यवहारों का मनोज्ञ वर्णन है। इस पुस्तक से पता चलता है कि आदिमनिवासियों में भी जन्मनिरोध के तरीके प्रचलित है। इस सम्बन्ध में वे दवा का ही प्रयोग करते हैं। कई जड़ें, छालें तथा फल उनमें बाँझपन लाने वाले समझे जाते हैं।

५

मैथुन से सुख की तलाश

सेक्स सम्बन्धी पुस्तकों में आम तौर पर लिंग, योनि, गर्भाशय आदि का विस्तारपूर्वक वर्णन रहता है, किन्तु यह पुस्तक विज्ञान के आधार पर मुख्यतः उसके सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक पहलू पर लिखी होने के कारण हम सुपरिचित बातों को दुहराना नहीं चाहते। लिंग, योनि, गर्भाशय के सम्बन्ध में ज्ञान अपरिहार्य है, किन्तु सुपरिचित बातों का वैज्ञानिक नाम दे देकर वर्णन करने में हम यहां पर कोई फायदा नहीं देखते। फिर भी मैथुन के सम्बन्ध में वैज्ञानिक दृष्टिकोण क्या है उसके सम्बन्ध में यहां कुछ विवरण पेश किये बगैर तथा यह बताये बगैर कि इस क्रिया के द्वारा कैसे अधिक से अधिक स्थायी पाश्चात्तापहीन सामाजिक सुख मिल सकता है, यह पुस्तक अधूरी रह जायगी।

आखिर मैथुन है क्या ? इस विषय पर ही बड़ी विचित्रतायें हैं। द्विधाकरण, बहुधाकरण प्रजनन-क्रिया को छोड़ भी दिया जाय तो दो अमीबा जो समय-समय पर मिलकर अपनी प्रजनन क्रिया का पुनरुद्धार कर लेते हैं क्या हम उसे मैथुन कह सकते हैं। फिर वे लिंगभेदयुक्त प्राणी जो पानी में अपनी पुरुषवस्तु तथा स्त्रीवस्तु को एक दूसरे को बिना देखे छोड़ देते हैं, और बाद को ये मिल जाती हैं, क्या हम इस सारी क्रिया को मैथुन कहेंगे ? यह दिखलाया गया है कि लिंगभेद भी मैथुन के लिए अपरिहार्य नही है। साधारण केचुआ (earth worm) तथा घोंघे (snail) में पुरुष स्त्री का भेद नहीं होता। इनके सभी व्यक्ति एक ही तरह के मैथुनात्मक अंगो से लैस होते हैं,

याने दोनोंमें ovaries और testes होते हैं, और दोनों पुरुषवस्तु तथा स्त्रीवस्तु धारण किये रहते हैं। फिर भी जब यह प्राणी विकास के एक खास स्तर पर पहुंच जाता है तो यह मैथुनात्मक कार्यशीलता का प्रदर्शन करता है। इसके बाद वह एक व्यक्ति को ढूँढ़ निकालता है जो अंगनिर्माण की दृष्टि से हूबहू उसी की तरह होता है, और फिर दोनों मैथुन में संयुक्त हो जाते हैं, और एक दूसरे को उर्वर बना देते हैं। अब इसे क्या कहा जाय मैथुन ? और भी आगे चलिये spirogyra नामक वनस्पति को लिया जाय। यह पौधा लम्बे हरे सूत के आकार का होता है और तालाबों तथा धीरे बहने वाली नदियों में होता है। प्रत्येक सूत कई कोषों में विभक्त होता है, और यदि ऐसे सूत विकास की एक सतह पर पहुंच जाने के बाद एकत्र हो जायँ तो देखा जाता है कि कुछ कोष प्रसारित हाथ (feeler) से बढ़ा देते हैं जो पास के सूत में प्रविष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार जो हाथ सा फेंकता है उसे क्रियाशील या पुरुष कोष तथा दूसरे को निष्क्रिय कोष कह सकते है। तजर्बे से यह बताया जा सकता है कि कौन सा सूत पुरुष है कौन सी स्त्री। यहां तक तो सब ठीक है, किन्तु यह देखा गया कि यदि दो स्त्री सूतों को एक साथ रक्खा जाय, तो उनमें से एक पुरुष का काम करने लगता है, अब इसकी व्याख्या यों की गई कि ये सूत पुरुष तथा स्त्री नहीं दुर्बललिंगी और सबललिंगी होते हैं। सबललिंगी पुरुष का काम करता है। फिर दो दुर्बललिंगियों को एकत्र रखने पर उनमें से जो सबल है वही सबल-लिंगी का काम करता हैं। इस प्रकार यह बात स्पष्ट हो जाती है कि लिंग शब्द तुलनात्मक है। कुछ प्राणी ऐसे हैं जिनमें एक ही शरीर के अन्दर पुरुषवस्तु और स्त्रीवस्तु परिपक्वता प्राप्त करती है, और अन्दर ही अन्दर दूसरे प्राणी की अपेक्षा बिना किये वे उर्वरीकृत हो जाती है। इस उर्वरीकरण को मैथुनिक कार्य कहना पड़ेगा क्योंकि ऐसा होते समय वे तमाम लक्षण उस प्राणी में प्रकट हो जाते हैं जो मैथुन में होते हैं। मैथुन के विषय

में हम एक उपसंहार पर पहुँच सकते हैं, वह यह कि उसके लिये उत्तेजना के कारण विभिन्न हो सकते हैं, किन्तु उसका प्रकाश एक ही प्रकार से होगा, याने पहले अत्यन्त उत्तेजना और फिर एकदम शान्ति। भिन्नलैंगिक मैथुन में भिन्नलिंगयुक्त व्यक्ति, समलैंगिक मैथुन में समलिंगयुक्त व्यक्ति तथा स्वयं-मैथुन (autosexual) में अपने आप ही उत्तेजना का कारण होता है, किन्तु मैथुन के बाहरी शारीरिक लक्षण एक ही रूप में प्रकट होते हैं।*

इस विषय पर भी अध्ययन किया गया है कि मैथुन शारीरिक दृष्टि से क्या है, क्या यह वैसी सैकड़ों शारीरिक क्रियाओं की तरह है जिनमें चेतना की जरूरत नहीं पड़ती ? क्या यह यांत्रिक अंगसंचालनों का एक समूह है जो विशेष उत्तेजनाओं के प्राप्त होते ही हो निकलता है ? मैथुन के सारे सिलसिले को अध्ययन कर इस बात पर किसी नतीजे पर पहुँचने की चेष्टा की गई है। अब यह ज्ञात हो चुका है कि जननेन्द्रिय के दायरे में उत्तेजना पहुँचने पर एक स्नायविक प्रतिक्रिया होती है जो रीढ़ के निचले हिस्से में पहुँच जाती है। यहाँ पर परिचालन केन्द्रों (motor-centres) के साथ इसका संयोग स्थापित हो जाता है, और वहाँ से भेजी हुई स्नायविक उत्तेजनाओं के कारण अंडकोष (testes) के इर्दगिर्द deferent duct संकुचित हो जाता है, जिसके कारण पुरुष लिंग उत्तेजित तथा स्त्री के क्षेत्र में गर्भाशय (uterus) की पेशियाँ संकुचित हो जाती हैं।† इस विषय पर खोज की गई कि बिना स्त्री-शरीर या किसी भी प्रकार के शरीर-संस्पर्श के पुरुष में वे ही लक्षण पैदा किये जा सकते हैं कि नहीं जो मैथुन के समय प्रकट होते हैं। मिस्टर क्रू गिनीपिग सुअर पर किये एक प्रयोग का जिक्र करते हैं

*Sex in Outline of Modern Knowledge by F. A. E. Crew, p. 265 et seq.

†Ibid, p. 293.

जिसमें उसकी जीभ तथा गले के चमड़े में यदि इलेक्ट्रोड लगाकर बहुत क्षीण वैद्युतिक धक्का दिया जाय तो वह बिल्कुल मैथुन कालीन व्यवहार करेगा। उसके इस व्यवहार की व्याख्या यों है कि वैद्युतिक धक्के से रीढ़ के परिचालन-केन्द्र उत्तेजित हो जाते हैं और इस प्रकार शरीर में उन्हीं कार्यों का सिलसिला शुरू हो जाता है जो मैथुन की विशेषता है। यह भी प्रयोग से सिद्ध हो चुका है कि मस्तिष्क के उच्चतर हिस्सों को निकालकर ये वैद्युतिक धक्के दिये जाएँ तो भी जानवर मैथुनिक व्यवहार करता है। इस प्रकार यह सिद्ध है कि पुरुष में लिंग की उत्तेजना तथा स्त्री में गर्भाशय का संकुचन महज प्रतिक्रियायें (reflex actions) हैं जो मस्तिष्क के नियन्त्रण में नहीं हैं। घोंघे का पहले ही जिक्र किया जा चुका है जिसमें पुरुषवस्तु तथा स्त्रीवस्तु का युगपत विकास होता है, किन्तु जिनको फिर भी पारस्परिक उर्वरीकरण के लिये मैथुन की जरूरत पड़ती है। इन पर प्रयोग करने पर भी ज्ञात हुआ कि मैथुनिक क्रियायें शारीरिक प्रतिक्रियायें मात्र हैं। यदि उसके शरीर के विशेष विशेष अंग एक विशेष सिलसिले में उत्तेजित किये जाय तो घोंघे में स्वाभाविक मैथुन के सारे सिलसिले पैदा किये जा सकते हैं। मैथुन के अलावा मैथुनिक व्यवहारों का अनुसन्धान किया गया तो उनसे भी यही साबित हुआ कि ये सारी क्रियायें शारीरिक प्रतिक्रिया के रूप में हैं। चूहों के मैथुनिक व्यवहार के निरीक्षण से यह ज्ञात हुआ कि नर तो सभी मौसिमों में पुरुष-व्यवहार के लिये तैयार रहता है, किन्तु श्रीमती चूही किसी विशेष समय पर ही स्त्री के कर्त्तव्य पर राजी होती है। यदि वह समय नहीं आया है, तो पुरुष के प्रेम-निवेदन का उस पर दूसरी ही प्रतिक्रिया होती है। यदि वह समय नहीं है और चूहा उस पर लपकता है, तो वह भागती है, दौड़ती है, और ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर देती है जिसमें मैथुन व्यवहारिक रूप से असम्भव हो, किन्तु जिस समय वह समय आया हुआ होता है,

उसका व्यवहार सम्पूर्ण रूप से बदल जाता है। पुरुष के आह्वान पर अब वह झुक जाती है, पीठ टेढ़ी कर लेती है और इस प्रकार मैथुन संभव हो जाता है। इस पर प्रयोग किया गया कि वह जो इस मौसिम में पुरुष के पास आते ही झुक जाती है इत्यादि, ऐसा केवल पुरुष के पास आने से ही होता है या दूसरी तरह की उत्तेजनाओं से भी होता है, तो यह पाया गया कि कृत्रिम उत्तेजनाओं से भी ऐसा हो सकता है। यदि इस ज़माने में कोई उसकी पीठ पर उंगली से धीरे से दबा दे, तो भी वह झुक जाती है, पीठ टेढ़ी कर देती है और मैथुन का आसन ले लेती है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि यह भी एक शारीरिक प्रतिक्रिया मात्र है, किन्तु विशेषता इतनी है कि यह प्रतिक्रिया केवल एक खास मौसिम में ही होती है। इससे कुछ आता-जाता नहीं कि यह उत्तेजना पुरुष द्वारा दी गई उत्तेजना है या उंगली द्वारा दी गई उत्तेजना। चूही पर दोनों का प्रभाव एक ही होगा, बशर्ते कि सही मौसिम हो। ये शर्तें पूरी हो गईं तो चूही की इच्छा की बात नहीं रहती, उसे उस तरह का व्यवहार करना ही पड़ता है। चूही के मैथुनात्मक व्यवहार का रहस्य तो इस प्रकार महज़ शारीरिक प्रतिक्रिया मात्र है यह पता लग गया, पुरुष का इतना साफ़-साफ़ पता नहीं लगता, क्योंकि उसका यन्त्र अधिक जटिल है। मालूम होता है चूहे में सर्वदा चूही पर चढ़ने की प्रवृत्ति मौजूद रहती है, और ज्यों ही चूही मैथुन के आसन में होकर उसे अपने ऊपर चढ़ने देती है त्यों ही उसका लिंग उत्तेजित हो जाता है और एक के बाद एक कार्यों का सिलसिला जारी हो जाता है। इस प्रकार पुरुष का मैथुनात्मक व्यवहार स्त्री के व्यवहार के फलस्वरूप पैदा होता है, ऐसा ज्ञात होता है। प्रथम दृष्टि में ऐसा ज्ञात होता है कि स्त्री के दर्शन तथा गन्ध से पुरुष का मैथुनयन्त्र उत्तेजित हो जाता है, किन्तु यह देखा गया कि ऐसे मर्द जो अन्धे हैं, जिनकी घ्राणशक्ति नष्ट कर दी गई, जिनके त्वकसम्बन्धी अनुभूति (Cutaneous

sensation) नहीं रह गई, तथा जो साथ ही बहरे भी हैं मामूली मर्द की तरह ही मैथुन कर सकते हैं। इसीसे यह उपसंहार निकाला गया है कि मर्द हर समय मैथुन के लिए तैयार रहता है, उसे बस कुछ मौका मिलना चाहिये।

मनुष्य के विषय में कुछ ऐसा ही है। नर तो हर समय मैथुन के लिये तैयार रहता है, किन्तु नारी को तैयार करना पड़ता है। चूही को प्रकृति (एक खास समय द्वारा जब उसकी जाति की मैथुन-प्रवृत्ति जगती है) तैयार करती है। मनुष्य में यह प्रतिक्रियाशीलता और भी गहरी, विस्तृत तथा बहुमुखी होती है, बस। मनुष्य में न मालूम किन-किन बातों से मैथुन के लिये उत्तेजना हो सकती है।

पुरुष में कामेच्छा स्त्री से अधिक प्रबल होती है, इसका हम पहले ही ज़िक्र कर चुके हैं। इस कारण दोनों की मानसिक बनावट में कुछ ऊपरी फ़र्क़ दृष्टिगोचर होगा। पुरुष मुख्यतः काम-प्रवृत्ति को चरितार्थ करने के लिये मैथुन में प्रवृत्त होता है, किन्तु स्त्रियां मातृत्व के लिये भी इस ओर खिंचती हैं। प्रत्येक स्त्री में माँ होने की एक गहरी प्रवृत्ति होती है। शुद्ध मैथुन पुरुष ही करता है, स्त्री नहीं, याने बहुत कम मामले ऐसे होते हैं जहां स्त्रियों का उद्देश्य केवल मैथुन हो। मनुष्येतर प्राणियों में स्त्रियां प्रजनन मौसिम के अलावा या प्रजनन परिणाम के बग़ैर पुरुषों को मैथुन करने ही नहीं देती।

हम पहले ही मान चुके है कि मैथुन का उद्देश्य सामाजिक सुख की प्राप्ति तथा वृद्धि है, अतएव मैथुन से जितना ही अधिक सुख प्राप्त होगा, उतना ही वह हमारी मानसिक, सांस्कृतिक तथा कलात्मक ज़िन्दगी को ऐश्वर्यशाली बनायेगा। मैथुन भी भूख तथा प्यास की तरह एक शारीरिक मांग की तृप्ति है। जिस प्रकार गन्दे बर्तन से गन्दा पानी पीकर प्यास की निवृत्ति हो सकती है, किन्तु इसके विपरीत सोने के नग जड़े

पात्र में स्वच्छ सुगन्धित सुशीतल जल पीकर प्यास की निवृत्ति हो सकती है, उसी प्रकार मैथुनेच्छा की तृप्ति भी कई प्रकार से हो सकती है। गन्दे बर्तन में गन्दा जल पीकर मनुष्य रोगग्रस्त यहां तक कि मृत्यु मुख में पतित हो सकता है, उसी प्रकार गलत तरीके से मैथुनेच्छा की तृप्तिकर मनुष्य गर्मी या सूजाक का शिकार हो सकता है इत्यादि।

लेनिन ने क्लारा जेटकीन से बात करते हुए पानी पीने के साथ काम-वासना की तृप्ति के सम्बन्ध में यों कहा था—"तुमने तो वह प्रसिद्ध सिद्धान्त तो सुना ही होगा कि कम्यूनिस्ट समाज में कामवासना और प्रेम की तृप्ति गिलास से पानी पीने की तरह सरल और महत्वहीन होगी। इस पानी के गिलास वाले सिद्धान्त से हमारे युवकों को बौरा दिया है, बिल्कुल बौरा दिया है, बहुतेरे जवान छोकड़े छोकड़ियों के लिए यह सिद्धान्त घातक साबित हुआ है। उसके भक्त कहते हैं कि वे मार्क्सवादी हैं। धन्य हैं उस मार्क्सवाद को जो विचारधारा सम्बन्धी तमाम परिवर्तनों को बिना चुनाव फिराव के हर क्षेत्र में सीधे सीधे आर्थिक आधार से सम्बन्ध कर देता है।...इस पानी के गिलास वाले सिद्धान्त को मैं बिल्कुल मार्क्स विरोधी समझता हूं, और वह असामाजिक भी है। लैंगिक जीवन में साधारण स्वभाव ही नहीं, सांस्कृतिक विशेषताएँ भी चाहें वे उच्च प्रकार की हो या निम्न प्रकार की, विचारणीय हैं। एंगेल्स ने अपनी पुस्तक "परिवार की उत्पत्ति" में दिखलाया है कि व्यापक लैंगिक प्रेरणा का वैयक्तिक प्रेम के रूप में विकसित और परिष्कृत होना कितना महत्वपूर्ण है...। प्यास जरूर बुझनी चाहिये। लेकिन क्या एक स्वस्थ आदमी स्वाभाविक परिस्थितियों में नाली में पड़कर गंदले पानी से या बहुत से लोगों के होठों से जूठे गंदे गिलास से अपनी प्यास बुझावेगा। किन्तु इसका सबसे महत्वपूर्ण पहलू सामाजिक है। पानी पीने का मामला तो सिर्फ वैयक्तिक है। किन्तु प्रेम में दो जीवों का और नये पैदा होने वाले तीसरे जीव का भी सम्बन्ध है, और इसीलिए इसका एक विशेष सामाजिक महत्व है, और उसमें

समाज के प्रति एक उत्तरदायित्व है। एक कम्यूनिस्ट के नाते पानी के गिलास वाले सिद्धान्त से मेरी ज़रा भी सहानुभूति नहीं है, हालांकि उसे प्रेम की परितृप्ति का बहुत ही बढ़िया नाम दिया गया है। किसी भी दशा में यह प्रेम स्वातंत्र्य न तो न्याय ही है, और न कम्यूनिज्म के अनुरूप ही। तुम्हें याद होगा कि पिछली शताब्दी के मध्य में इस सिद्धान्त का हृदय की मुक्ति के नाम से रोमांटिक साहित्य के अन्दर काफ़ी प्रचार किया गया था। पूँजीवादी दुनिया में वह हृदय की मुक्ति बन गया। उन दिनों यह उपदेश आज से अधिक विद्वत्तापूर्ण था। व्यवहारिक के बारे में मैं नहीं कह सकता, अपनी आलोचना के द्वारा मेरी मन्शा वैराग्य के उपदेश देने का नहीं है, कतई नहीं। कम्यूनिज्म वैराग्य नहीं लायेगा वह लायेगा,जीवन का आनन्द और जीवन की स्फूर्ति। एक सन्तुष्ट काम जीवन उसमें सहायक होगा। इसके विपरीत लैंगिक मामलों में आज की वह विस्तृत अतिरंजना मेरे ख्याल से जीवन को कोई आनन्द और स्फूर्ति प्रदान नहीं करती, बल्कि उसे अस्फूर्ति प्रदान करती है। क्रान्ति के युग में यह बहुत ही बुरा है। न वैरागियों और न छैलों की ज़रूरत है।"

फिर पानी पीने में और मैथुन में एक बड़ा भारी फर्क यह है कि मैथुन के फलस्वरूप एक नया प्राणी उत्पन्न हो सकता है जो आगामी समाज का प्रतीक है, अतएव यह प्रश्न सम्पूर्ण रूप से एक सामाजिक प्रश्न हो जाता है कि मैथुन किस हालत में उचित है किस हालत में अनुचित। इस प्रश्न के निर्णय में सम्बन्धित व्यक्ति के वृहत् समाज यहां तक कि आगामी समाज का ख्याल रखना पड़ेगा, व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह अपनी साथिन के रूप में जिसको चाहें चुने, और जब वे चाहें साथी या साथिन बदल दें, किन्तु जहां पर समाज के स्वास्थ्य तथा आगामी समाज की बात आयेगी वहां समाज को भी अधिकार है कि अपने लम्बे हाथ बढ़ाकर उसके कान पकड़कर उसे दुरुस्त करे।

समाज जहां बिल्कुल उदासीन है, वहां भी अक्सर व्यक्ति के अज्ञान के कारण मैथुन अधिक से अधिक सुख उत्पादक नहीं हो पाता। अनुसन्धानों से ज्ञात हुआ है कि पुरुष के अज्ञान तथा स्त्री की रति सामर्थ्य का सही तखमीना न होने के कारण अक्सर स्त्रियां मैथुन के प्रति एक उदासीन यहां तक कि सर्द रुख अख्तियार करती हैं। यह हमारे प्रगतिवादी मन की जबर्दस्ती नहीं है, किन्तु सही बात है कि जब तक पुरुष और स्त्री मिलन में सक्रिय रूप से समान भाव नहीं लेगी, तब तक उसमें न्यूनता रहेगी यह कहना गलत है कि शारीरिक मिलन कार्य में स्त्री का भाग निष्क्रिय है, सच बात तो यह है कि उसकी क्रिया के ढंग दूसरे हैं। फिर मनुष्य अब केवल एक मिट्टी का लौंदा नहीं रह गया, उसके मस्तिष्क तथा स्नायविक प्रणाली विकसित होते होते अब इस जगह पर पहुँच चुकी है कि प्रत्येक शारिरिक क्रिया में मस्तिष्क की प्रतिक्रिया एक खास अहमियत रखती है। इस कारण मानसिक सम्मेलन (emotional surrender) बिना हुए शारीरिक मिलन एक सभ्य व्यक्ति के लिये कुछ महत्व नहीं रखता, सच बात तो यह है इस शर्त के पूरी हुए बगैर शारीरिक मिलन की हैसियत वेश्यागमन से अधिक नहीं होती। यहां पर चलते हुए यह स्पष्ट कर दिया जाय कि वेश्यागमन के विरुद्ध सामाजिक-नैतिक आपत्तियों को यदि भुला भी दिया जाय तो भी केवल व्यक्ति की शारीरिक मानसिक दृष्टि से वह सर्वांगपूर्ण सामाजिक मैथुन से कम दर्जे का साबित होता है। बर्ट्रेंड रसेल ऐसे बुर्जुवा लेखक कैसे इस बात को मानते हुए भी कि वेश्यावृत्ति के विरुद्ध तीन गंभीर आपत्तियां हैं याने (१) सामाजिक स्वास्थ्य को खतरा है, (२) स्त्रियों तथा (३) पुरुषों की मानसिक हानि होती है, वेश्याप्रथा का समर्थन करते हैं यह एक आश्चर्य की बात है। वे कहते हैं* "जब तक सतीत्व एक गुण समझा जायगा, तब तक विवाह पद्धति के पूरक के रूप में (सच बात तो यह है वह उसका एक

*Marriage and Morals by Bertrand Russel, p. 116.

हिस्सा है) वेश्याप्रथा को रखना पड़ेगा। लेकी को उस प्रसिद्ध उक्ति से सभी परिचित हैं जिसमें वे कहते हैं कि वेश्यायें हमारे घर की पवित्रता तथा बहू-बेटियों के सम्भ्रम की रक्षिकायें हैं। यह भावुकता मल्का के युग की है, इसकी अभिव्यक्ति का तरीका प्राचीन है, किन्तु इसकी सत्यता से कोई इन्कार नहीं कर सकता।" मालूम होता है कि रसेल साहब जब घर की पवित्रता का स्वप्न देख रहे हैं, उस समय वे घर में पुरुषों को नहीं गिनते, क्योंकि वेश्यागमन करनेवाले ये पुरुष ही तो होते हैं, फिर वे ही जब घर में लौट आते हैं तो घर की पवित्रता रही कहाँ? फिर बहू-बेटियों में रसेल साहब वेश्याओं को नहीं गिनते, क्या वे बिना किसी की बेटी हुए ही वेश्या हो गईं? रसेल साहब का यह कहना यहां तक तो ठीक है कि धन के विभाजन की वर्त्तमान पूँजीवादी पद्धति में वेश्यावृत्ति तथा व्यभिचार विवाह पद्धति के साथ-साथ रहने के लिए बाध्य है, हमने देखा है कि एंगेल्स ने ऐसा ही कहा है, किन्तु रसेल का साथ ही साथ उसका समर्थन करना और यह कहना मानो यह एक चिरस्थायी पद्धति है, उसी श्रेणी की उक्ति है जैसे अरस्तु ने दुनिया भर की प्रजातांत्रिकता की डींग हाँकते हुए भी गुलामी की प्रथा का समर्थन किया। ठीक ही है, विचार समाजानुयायी होते हैं।

हम कुछ अपने विषय से बहक गये। हम कह रहे थे यदि मैथुन में स्त्री तथा पुरुष दोनों का सम्पूर्ण रूप से सक्रिय सहयोग नहीं हुआ तो वह कुछ भी नहीं है। इसका नतीजा केवल यही नहीं होता कि मिलन एकदेशीय तथा सुखकर नहीं होता, बल्कि लगातार एकदेशीयता के कारण स्नायविक-मानसिक विकार की उत्पत्ति होती है। जी० वी० हैमिल्टन ने इस विषय पर आँकड़ों का संग्रह किया तो ज्ञात हुआ कि ४६ ऐसी स्त्रियों में जिनमें पूर्णमैथुन (orgasm) की शक्ति नहीं है, २० को किसी न किसी समय स्नायविक-मानसिक विकारग्रस्त पाया

गया।* यह तो नहीं कहा जा सकता कि ये दोनों बातें अक्सर साथ होती हैं, इस कारण एक दूसरे के परिणाम हैं, फिर भी इतना तो सच है ही कि लगातार मैथुनिक असन्तोष से स्नायविक विकार बढ़ सकते हैं तथा पैदा हो सकते हैं, बल्कि तथ्यों की गवाही तो यहां तक है कि जब पूर्णमैथुन की अप्राप्ति तथा स्नायविक विकार एक ही व्यक्ति में पाये जाते हैं तो उन दोनों के कारण एक ही हैं। डिकिनसन का यह भी कहना है कि क़रीब-क़रीब तमाम क्षेत्रों में जिनमें स्त्रियां पूर्णमैथुन नहीं प्राप्त कर सकती हैं उनमें ऐसे कारण समूह हैं जो हटाये जा सकते हैं। स्त्रियों की मैथुनिक प्रकृति की अज्ञता तथा पुरुष की आत्मसुखतत्पर स्वार्थपरता के कारण अक्सर स्त्रियाँ जो बहुत से बच्चों की माँ भी हो चुकी हैं यह नहीं जान पातीं कि पूर्णमैथुन सुख किसे कहते हैं, केवल यही नहीं इस कारण पुरुष का सुख भी पूर्णांग नहीं हो पाता। हैरिस ने Essays on Marriage में कहा है, "यदि दोनों में से एक दूसरे के दाम पर (बल्कि ऐसा कहना अधिक वैज्ञानिक होगा कि दूसरे का ख्याल न कर अपने को तृप्त करे, तो प्रेम के सम्बन्ध पर इतना जोर पड़ सकता है कि वह टूट जाय। इस प्रकार लोग अज्ञान तथा स्वार्थपरता के कारण प्रेम की धज्जियां उड़ा देते हैं। लोग इस बात को हृदयंगम नहीं कर पाते कि उनके जीवन का यह हिस्सा उनके सारे जीवन का एक प्रधान अंग है। (जब तक दोनों समान रूप से शारीरिक मिलन (जो मानसिक मिलन का एक रूप है) कार्य में बराबर सक्रिय हिस्सा न लें, तब तक पूर्ण फल के उत्पादन की आशा नहीं रहती।) यह पूछा जा सकता है कि बराबर सक्रिय हिस्से का अर्थ क्या है? इसका उत्तर यह है कि सारी अभिज्ञता याने प्रथम प्रेमस्पर्श से लेकर पूर्णमैथुन तक सारी प्रक्रिया में पुरुष तथा स्त्री का बराबर हिस्सा होना चाहिये।

---

*Sexual Side of Marriage, p. 98.

याने दोनों के लिये एक ही अर्थ रक्खेगा तथा दोनों को उसी प्रकार का स्थायी सुख प्राप्त होगा।"

हैवलाक एलिस ने Little Essays on Love and Virtue में लिखा है, "जिन औरतों के सहजात मूल में गुमराह नहीं हो गये हैं वे कभी भी उदासीन रहना नहीं चाहतीं, बल्कि वास्तविकता इससे बिल्कुल दूर होती हैं। इस उदासीनता को दूर करने के लिये सही वातावरण तथा पुरुष के सही कौशल तथा अन्तर्दृष्टि की आवश्यकता है। कामात्मक क्षेत्र में एक औरत इससे अधिक और कुछ नहीं चाहती कि उसे कोई उदासीनता के गड्ढे से उबारकर उस ऊँची सतह पर पहुँचा दे जहाँ प्रेमक्रिया में पारस्परिक हित तथा आनन्द विराज रहा है। इस मामले में उसकी मौन माँग प्रकृति के साथ एकाकार है।" प्रेमक्रिया में सबसे बड़ी गलती जो पुरुष करता है और अक्सर करता है, वह यह है कि वह बिल्कुल शारीरिक तरीके से चलता है, और अपनी साथिन को मानसिक रूप से तैयार बिना किये ही अपनी कामपिपासा की निवृत्ति में लग जाता है। ऐसी हालत में स्त्री इसके सिवा क्या समझ सकती है कि पुरुष स्वार्थपर है, और उसको झुँझलाहट होती है। मैथुन के पूर्व की तैयारी को हैवलाक एलिस ने क्रीड़ा कहा है। इस क्रीड़ा के हिस्से के बगैर मैथुन एक भद्दी पाशविक क्रिया मात्र रह जाता है, और उसमें वह तृप्ति नहीं आ सकती। पुरुष जल्दी या यों कहिये हर समय तैयार ही रहता है, किन्तु स्त्री को उत्तेजित होने में देर लगती है। इस कारण दीर्घ या ह्रस्व क्रीड़ा के बगैर स्त्री की तृप्ति की सम्भावना कम हो जाती है। मनुष्य तो हर क्षेत्र में तैयार ही होता है, नहीं तो क्रिया सम्भव ही नहीं होती, किन्तु स्त्रियां अक्सर तैयार भी नहीं हो पातीं कि क्रिया समाप्त हो जाती है। इस प्रकार स्त्री हवा में रह जाती है। वह तो तब तैयार हुई, जब पुरुष खलास हो चुका और शायद लेट रहा है,

उस समय स्त्री के मन में कोई अच्छी भावना नहीं आ सकती, और ऐसा जब बार-बार होता है तो यह उसके लिये एक स्थायी अतृप्ति का कारण बन जाता है। बहुत से पुरुष तथा स्त्रियों में विवाह के पहले खूब बनता था, और उसके बाद से नहीं बनती, स्त्री चिड़चिड़ी हो जाती और पुरुष को कुछ समझ में नहीं आता है कि वह क्या करे तथा मुहल्लेवाले हँसते है, उसका ९९ फी सदी क्षेत्रों में कारण है काम जीवन में अव्यवस्था। कोई स्त्री एक कालेकलूटे पुरुष को एक सुन्दर स्वास्थ्यवान पति के मुकाबले में उपपति के रूप में क्यों चुनती है इसका कारण भी इसीसे समझ में आ सकता है। उधर पुरुष तो सो जाता है, किन्तु स्त्री शायद घंटों जगती रही, या तो वह उँगली या मोमबत्ती से मैथुन करके अपने को थका दे या अतृप्ति की ज्वाला को ज़हर के घूँट की तरह पीकर पड़ी रहे। इस प्रकार वह बच्चों की माँ तो होती जाती है, किन्तु उसकी प्रकृति के गंभीर उत्सस्थल मुक्त नहीं हो पाता। आदिम प्राकृतिक अवस्था में कामात्मक क्षेत्र में स्त्री की यह निकृष्ट अवस्था नहीं रही होगी, किन्तु मालूम होता है दर्मियानी युगों में जब स्त्री की हैसियत गुलाम की सी हो गई और वह कबीलों के भाग्य के अनुसार हस्तांतरित होती रही, जब चाहे तथा जो चाहे उनको इस्तेमाल करता रहा, तो उसकी मैथुन में दिलचस्पी कम होती गई, और उनका यंत्र ऐसा बन गया, जिसका एक अंग प्राथमिक उदासीनता हो गई। अक्सर ऐसा होता है कि सुहागरात को ही पुरुष बिना कुछ तैयारी के स्त्री पर हमला कर देता है, और स्त्री के मन में यह भावना हो जाती है कि उसके साथ बलात्कार हुआ। प्रेम जीवन को नष्ट करने का इससे अच्छा उपाय और क्या हो सकता है।

इस प्रकार मैथुन पूर्व क्रीड़ा का महत्व अवर्णनीय है। एलिस का कहना है कि जिन लोगों को प्रजनन में दक्षता भी हासिल हो चुकी है, उनमें भी क्रीड़ा का अज्ञान इतना व्याप्त है कि आश्चर्य होता है। हैरिस का कहना है

जैसे नृत्य, स्केटिंग आदि सीखना पड़ता है वैसे ही प्रेम की कला सीखनी पड़ती है। नये पति तथा पत्नी को चाहिये कि वे गलतियों के दौरान में सीखें, एक दूसरे को अपनी त्रुटियों से परिचित करें और बतावें कि क्या करने से वे त्रुटियां दूर हो सकती है। यदि किसी बात पर बुरा मानने के बजाय वे एक दूसरे को स्पष्टता के साथ अपनी न्यूनता या अतृप्ति की मात्रा बतावें तो वह दोनों के प्रेम-जीवन के हक में कहीं अच्छा हो। फिर इस कला को सीखने में कुछ समय लगता ही है।"

डिकिनसन ने पचास नववधुओं के सम्बन्ध मे तथ्यों का संग्रह किया। इन सबकी तन्दुरुस्ती अच्छी थी, अन्य सब तरह से भी ये सुखी थीं, किन्तु यौन सम्बन्ध में इनको कठिनाई हो रही थी। विवाहित सुख के सम्बन्ध में इनकी धारणा पूरी नहीं हो रही था। पुरुष में उधेड़बुन रहती थी, स्त्री डरती थी, इस प्रकार विवाहित जीवन ही मिट्टी में मिल रहा था। उनमें से १७ को दुःखकर मैथुन (dispareunia) होता था, १७ को पूर्ण मैथुन की प्राप्ति कभी न हुई थी। केवल २३ ही करीब करीब ठीक थी। इनमें से अधिकांश गड़बड़ी इस कारण थी कि पति और पत्नी में झूठी लज्जा के कारण तथा अज्ञान के कारण पूर्ण सहयोग नहीं था। बाकी की भलाई कुछ डाक्टरी मदद देने पर हो सकती है।*

विवाहित सुख की कमी में सबसे आम जो कारण होता है, वह है धारण शक्ति में कमी। बात यह है स्त्रियों को कुछ अधिक समय तैयारी में लगता है। "दोनों का यह उद्देश्य होना चाहिये कि एक ही साथ दोनों खलास हों, याने कम से कम इतना तो हो ही कि लिंग जब योनि में मौजूद हो उसी समय स्त्री अपनी अन्तिम मंजिल पर पहुंच जावे। कुछ पुरुष इस बात पर

---

*Quoted in Sexual Side of Marriage, p. 111, et seq.

नियन्त्रण कर सकते हैं कि स्त्री के लिए प्रतीक्षा करें।"† सबसे बड़ी गड़बड़ी यही होती है कि पुरुष प्रतीक्षा नहीं कर पाता। अक्सर स्त्रियों की यह शिकायत होती है कि पुरुष बहुत जल्दी खलास होता है। सबसे मजेदार बात इस सम्बन्ध में यह है कि बहुत से शिक्षित पुरुष भी यह नहीं जानते कि इस सम्बन्ध में लक्ष्य क्या है। वे समझते हैं कि उनकी जरूरत पूरी हो जाने पर स्त्री की जरूरत खुद बखुद पूरी हो चुकी है। इसका अनिवार्य परिणाम स्त्री में उदासीनता पैदा होती है। इस प्रकार मैथुन में बराबर हिस्सा न होकर वह एकदेशीय हो जाता है, फलस्वरूप उसमें पूर्णता नहीं आ पाती। डिकिनसन ने हिसाब लगाया है सौ में १२ पुरुष ऐसे होते हैं, जो तुरन्त खलास होते हैं। सौ में सोलह प्रायः दो मिनट रुक सकते हैं। ४० फ़ी सदी तीन मिनट के अन्दर खतम हो जाते हैं, (तुरन्त खलासवालों को भी गिनकर) ४३ फ़ी सदी ५-१५ मिनट के अन्दर जाते हैं, बाक़ी १७ फ़ी सदी १५ मिनट से ऊपर जाते हैं, उनमें से कुछ तो चाहे जितनी देर रुक सकते हैं।*

डाक्टर एक्सनर जल्दी से खलास होनेवालों (तुरन्तवालों को छोड़कर) को विश्लेषणकर जिन कारणों पर पहुंचे हैं वे ये हैं "(क) घबड़ाहट (nervousness), आत्मविश्वास तथा मानसिक सन्तुलन के कारण मनुष्य स्तंभन पर नियंत्रण नहीं रख सकता। घबड़ाहट चाहे वह आम निकम्मेपन से, बेकार की जल्दी से, असफलता के भय से तथा स्त्री के असहानुभूतिपूर्ण रुख के कारण हुई हो, धारण पर नियंत्रण कम कर देती है। (ख) भय, घबड़ाहट का यह नामान्तर है, असफलता का भय, गर्भ रह जाने का भय तथा स्त्री क्या रुख लेगी इसके भय से वीर्यधारण में बाधा पड़ती है, तथा जल्दी से फुर्सत हो जाती है। यदि स्त्री एक सहानुभूतिपूर्ण रुख अख्तियार करे तो पुरुष की घबड़ाहट तथा भय दूर

†Ibid.

*Ibid .p. 117.

हो सकता है। यदि स्त्री एक व्यंग भरा रुख अख्तियार करे तो परिस्थिति खराब हो जायगी। (ग) अयथेष्ट लिंगोत्तेजन। यदि आंशिक रूप से उत्तेजित लिंग को प्रविष्ट कराया जाय तो बहुत सम्भव है शीघ्रपतन हो। ऐसे आदमियों की संख्या आश्चर्यजनक रूप से अधिक है जिनका लिंग यथेष्ट उत्तेजित नहीं होता। ऐसा होने का सबसे महत्त्वपूर्ण कारण स्त्री के सहयोग तथा सहानुभूति का अभाव है। फिर अयथेष्ट उत्तेजना के फलस्वरूप स्त्री में उदासीनता बढ़ती है, उस प्रकार एक दुष्ट चक्र चलता जाता है। ऐसी परिस्थिति में सहानुभूतिशील स्त्री बहुत काम की हो सकती है। यदि स्त्री जननेन्द्रिय के साथ कौशलपूर्वक क्रीड़ा करे तो ऐसे पुरुष बहुत कम होते हैंउस के जवाब में जिनकी जननेन्द्रिय जोरदार तरीके से दण्डायमान न हो जाय। (घ) अयथेष्ट तैलाक्तता। यदि प्रवेश-क्रिया में कुछ भी दिक्कत हो तो वह शीघ्रपतन का कारणीभूत हो सकता है। यों तो प्रकृति ने ही इसकी व्यवस्था की है, किन्तु यदि स्त्री की ग्रंथियां प्राकृतिक रूप से स्नेहक्षरण न करें तो कृत्रिम स्नेहपदार्थ का व्यवहार करना चाहिये। वेस्लिन जैसे चर्बीले स्नेहपदार्थ से बनस्पतियों के बीजों के तेल बहुत अधिक उपयोगी हैं। (ङ) गलत तरीका। विशेषकर प्रवेशक्रिया में जल्दबाजी से बचना चाहिये, केवल उस समय जल्दी करनी चाहिये जिस समय दोनों एक साथ पूर्णमैथुन में चल रहे हों। उस समय ऐसे दौड़-विशेषज्ञों की तरह जो अपनी दौड़ के अन्त के करीब हैं, दोनों को चाहिये कि आखिरी मंजिल की ओर सरपट चाल से चलें। बहुत से लोग तो यही समझते हैं कि कामना तथा अन्तिम कार्य के बीच में जितना कम फासला हो उतना ही अच्छा है, यही उनकी सारी कला है। ऐसे निकम्मे तरीके से सौंदर्य-भावना तथा प्रेम-संबन्धी धारणाओं को जो तृप्ति हासिल हो सकती थी, वह नहीं हासिल हो पाती। मैथुन ऐसा होना चाहिये जिसमें समूचा व्यक्ति हरकत में आवे, और यह स्पष्ट है कि समूचे व्यक्तित्व

को हरकत में लाने के लिये धीरे-धीरे चलने की जरूरत है। × × × शुरू की मात्रा तथा तृप्ति के परिमाण की दृष्टि से बेकार की जल्दी नहीं होनी चाहिये। बहुत से पुरुषों का यह तजर्बा है कि प्रवेशक्रिया के तुरन्त बाद का जो समय होता है, उसी में पतन का सबसे अधिक खतरा होता है, अतएव यह उचित है कि प्रवेशक्रिया समाप्त होने के बाद ही बजाय इसके कि धक्का देना शुरू हो जाय, दोनों को स्थिर होना चाहिये। पुरुष के लिये ऐसी अवस्था में यह अच्छा होगा कि वह मन को मैथुन से हटाकर किसी दूसरे विषय पर स्थापित करे। जिस समय पुरुष अनुभव करता है कि अब मामला खतरे से खाली है, तब वह धीरे-धीरे धक्का देना शुरू करे और स्त्री स्थिर रहे, याने शारीरिक रूप से नहीं। फिर जब पुरुष अनुभव करे कि अब फिर खतरा है, तब वह धक्का देना बन्द करे और फिर दोनों स्थिर रहे। इस बीच में उनको चाहिये कि प्रेम की सूक्ष्म लेनदेन बराबर जारी रक्खें जिससे जब पूर्ण-मैथुन प्राप्त हो तो पारस्परिक तृप्ति की सजीवता कई गुनी हो जाय। पुरुष को ऐसा करने पर ज्ञात होगा कि हर दफा उसको अधिकतर नियन्त्रण हासिल होता है, और वह धक्के का समय हर बार बढ़ा पाता है और उसकी चोट हर बार गहरी हो जाती है।(थोड़ी देर बाद उसे चाहिये कि स्त्री से कहे कि वह भी मृदु धक्का देना शुरु करे। वह साथ ही स्त्री को यह बताता रहे कि वह कहां तक पहुँच चुका है, और पतन विन्दु के पहले दोनों फिर स्थिर हो जायँ इस प्रकार वे बार-बार करते हैं और उसकी स्थिरता का समय बढ़ता ही जाता है। क्रमशः स्त्री की प्रतिक्रियायें जग जाती हैं और, अब वही पुरुष को अपनी प्रगति के बारे में खबर देती रहती है। अन्त में वह कह निकलती है 'मैं समझती हूं कि मैं तैयार हूं।')उस समय दोनों सरपट चाल से चल निकलते हैं और दोनों जोर के सामंजस्यपूर्ण धक्के में संलग्न हो जाते हैं। × ×

प्रकार की तरकीब से यह प्रक्रिया कहीं आध घंटा और कहीं एक घंटा

---

*Sexual Side of Marriage p. 117; et seq.

स्थायी हो सकती है। बराबर धक्का देते हुए कोई भी पुरुष इतने दीर्घकाल तक स्तंभन कर सकता है इसमें सन्देह नहीं है।"

("अधिकांश स्त्रियां यह समझती है कि मैथुन में धक्का देने का कार्य सम्पूर्ण रूप से पुरुष का है, सिवा पूर्णमैथुन के समय जब वह अनिवार्य हो जाता है। यह एक बहुत बड़ी गलती है। धक्के में हिस्सा लेकर न केवल वह पुरुष से ज़ोरदार तरीके से उसका जवाब पाती है, बल्कि वह अपने पूर्ण-मैथुन की प्राप्ति को कई गुना आसान कर देती है।"*)

मैथुन में सबसे अधिक गड़बड़ी उन लोगो को लेकर होती है जो प्रवेश क्रिया के पहले या तुरन्त बाद स्खलित हो जाते हैं। रतिशक्ति से साधारण रूप से हम जिसे तगड़ापन कहते हैं याने सुडौल कसरती भुजदंड, उभरा हुआ सीना, चढ़ी हुई रानें, सुर्ख चेहरा इनका कोई आनुपातिक सम्बन्ध नहीं है। घ्राणशक्ति की तरह रतिशक्ति एक अंग विशेष की शक्ति है जो अनुकूल तथा प्रतिकूल परिस्थितियों के बीच बढ़ती या घटती है। एक पहलवान एक धँसी आँख वाले मुन्शी को चाहे एक ही थप्पड़ में छठी का दूध याद करा दे किन्तु एक स्त्री के सामने शायद वह अधिक पुरुषत्वपूर्ण न साबित हो। अभी केवल इतना समझ में आया है कि यह प्रभेद ग्रंथियों के क्षरण में प्रभेद के कारण होता है, तथा कुछ हद तक मानसिक बनावट से भी फ़र्क आ जाता है, अभी तक endocrinology या ग्रंथिविज्ञान अपनी शैशवावस्था में है, किन्तु डाक्टर वाकर जैसे लोग उम्मीद करते हैं कि ग्रंथिविज्ञान की द्रुत उन्नति के साथ यह बात अच्छी तरह समझ में आ जायगी। बहरहाल सौभाग्य से शीघ्रपतन वाले अधिकांश लोग मानसिक कारण से गड़बड़ी के शिकार मात्र हैं, और उनको मन स्थिर रखकर काम करने की सलाह देकर तथा कुछ इलाज से ठीक हो सकता है। इलाज का अर्थ यह नहीं कि वह नीमहकीमों

*Ibid, p. 123.

के शिकार हो जायँ। सच बात तो यह है कि नीमहकीमों की एक तिहाई दूकान तो शीघ्रपतनवालों से चलती है, तथा दूसरी तिहाई स्वप्नदोषवालों से चलती है, बाकी तिहाई में अन्य सब रोग चलते हैं। "जो कुछ भी हो शीघ्रपतन का इलाज प्रारंभ में ही किया जाना चाहिये क्योंकि इलाज में जितनी देर होगी उतनी ही असफलता जड़ पकड़ लेगी, और फिर उसका सुधरना मुश्किल हो जायगा।"* यदि इसका इलाज न किया जाय तो विवाहित जीवन मिट्टी में मिल जायगा, किन्तु यह बात फिर भी याद रहे कि अधिकांश क्षेत्र में शीघ्रपतन का कारण घबराहट होती है। इस घबराहट को थोड़ी मानसिक स्थिरता से दूर किया जा सकता है। सर्वप्रकार से भाग्यवान होने पर भी शीघ्रपतनवाले पति से स्त्री का कभी बन नहीं सकता। सुखी जीवन के लिये इस प्रकार मैथुनिक जीवन में पूर्ण सफलता आवश्यक है। इस बात को आम तौर से सभी जानते हैं, तभी इस सम्बन्ध में लोग बात की बात में सैकड़ों रुपये खर्च करने को तैयार हो जाते हैं, किन्तु गलत जगह पर खर्च करने से रोग और जटिल ही होगा।

स्वप्नदोष से भी लोग बहुत परेशान रहते हैं, किन्तु यह तो एक साधारण प्राकृतिक बात है, और इसमें घबराने की कोई बात नहीं। लोग बेकार इस बात से परेशान होते हैं और ख्वामख्वाह पैसा खर्च करते हैं। जब वीर्य भर जाता है तो प्रकृति मनुष्य की सुप्तावस्था का फ़ायदा उठाकर वीर्यपात्र को इस प्रक्रिया से खाली कर देती है। स्वप्नदोष एक रोग भी हो सकता है, किन्तु ऐसा तभी होगा जब बहुत दिनों तक हस्तक्रिया आदि करके छोड़ दिया गया हो, उस हालत में किसी अच्छे चिकित्सक से उसका इलाज कराना चाहिये न कि नीमहकीम विज्ञापनबाजों से। उस हालत में भी कोई घबड़ाने की बात नहीं है, खाने-पीने, उठने-बैठने विशेषकर रात

को कम खाने के एहतियात से वह रोग बहुत शीघ्र काबू में लाया जा सकता है।

एक और गडबडी जिससे अक्सर विवाहित जीवन का सन्तुलन नष्ट हो जाता है, वह यह है कि पुरुष इस बात को नहीं समझता कि स्त्री की कामेच्छा मासिक-धर्म से सम्बन्धित होने के कारण घटती-बढ़ती रहती है। इस कारण वह कभी तो पुरुष को जवाब पर जवाब देती है, और कभी बिल्कुल ठण्डी पड़ जाती हैं। जिस समय उसकी कामेच्छा ज़ोरों पर है उस समय यदि पति उदासीन रहे, या जिस समय वह उदासीन है पति हावी हो जाय, तो उससे विवाहित जीवन कभी पूर्ण सुख का उत्पादक नहीं हो सकता। पारस्परिक रूप से एक दूसरे के रुख को समझकर चलने में ही विवाहित जीवन की भलाई है। पुरुष को चाहिये कि वह स्त्री के उस समय के रुख को समझे। यदि स्त्री उदासीन है, तो पति को देर तक उसके साथ क्रीड़ा कर उसकी प्रवृत्ति को जगाना पड़ेगा। जब वह जग जाय, तभी वह आगे बढ़ सकता है। यदि ख़ास-ख़ास समय पर वह बिल्कुल ही जग न पावे, तो पति को चाहिये कि उस समय को बराकर चले। यदि पारस्परिक ख्याल नहीं है तो प्रेम उस हालत में रह नहीं सकता। जानवरों में तो स्त्री के खास मौसिम होते हैं, जब वह 'गर्म' होती है, किन्तु नारियों में कभी ऐसे मौसिम भले ही आते रहे हों अब नहीं हैं। मोटे तौर पर यह पता लगा है कि "मासिक धर्म के क़रीब कामेच्छा सबसे बलवती होती है। डाक्टर कैथराइन डैविस २००० स्त्रियों के मैथुनात्मक जीवन को अध्ययन करने के बाद इस नतीजे पर पहुंची कि मासिक-धर्म के दो दिन पहले तथा सात दिन बाद तक कामेच्छा बहुत प्रबल रहती है। डाक्टर सी० वी० हेमिल्टन ने और भी

सावधानी से शिक्षित वर्ग की १०० विवाहित स्त्रियों का अध्ययन किया तो ज्ञात हुआ कि २५ को कामानुभव मासिक धर्म के बाद हो हुआ, १४ को उसके पहले हुआ, २१ को उसके तुरन्त पहले और तुरन्त बाद को हुआ, ११ को मासिक धर्म के तुरन्त पहले, उसके तुरन्त बाद तथा उसके दौरान में हुआ, और २९ अपनी कामेच्छा के सम्बन्ध में कोई ख़बर ही नहीं दे पायी।* इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रत्येक स्त्री का अपना नियम होता है। सहानुभूतिशील प्रेमिक को चाहिये कि अपनी पत्नी की कामेच्छा को इस प्रकार अध्ययन करे, और उसी के अनुसार आचरण करे। हैवलाक एलिस का कहना है कि पुरुषों में कामेच्छा वसन्त तथा पतझड़ के प्रारम्भ में जोरों पर होती है किन्तु यों तो वह हर समय रहती है। मैथुन जैसा हम बार-बार कह चुके हैं पारस्परिक सुख के लिये है, इसलिये यदि एक पक्ष दूसरे पक्ष का ख्याल न रखकर चले तो वह शोषण हुआ न कि पारस्परिक सुख का साधन। मैथुन के सम्बन्ध में इसलिये खाने की तरह कोई रूटीन बाँध देना ठीक न होगा। वैसा करने से प्रेम की स्वतः स्फुरणशीलता में फर्क आ जायगा। जैसे किसान पानी पड़ने पर ही बुवाई शुरू करता है, उसी प्रकार पति को करना चाहिये। हां, यदि वह पूर्वक्रीड़ा की सिंचाई के द्वारा स्त्री को इतना पानी-पानी कर दे कि वह तैयार हो जाय, तो वह जो चाहे सो करता है। पति और पत्नी को चाहिये कि साफ़-साफ़ अपने उस समय के रुख के बारे में इत्तला दें, नहीं तो बेकार लज्जा की अग्नि में विवाहित जीवन भस्म हो जायगा। यदि प्रेमियों में भी साफ़-साफ़ बातचीत न हो पाई कि वह इस समय तैयार हैं इस समय नहीं, तो फिर यह बड़ी अजीब बात होगी। यदि पति-पत्नी इस विषय में एक-साथ अध्ययन करें तो उन्हें फ़ायदा हो सकता है।*

---

*Sexual Side of Marriage, pp. 133-134.

कई सेक्स विज्ञान के ज्ञाताओं का यह मत है कि जैसे मैथुन के पहले क्रीड़ा करने से मैथुन ऐश्वर्यशालिता प्राप्त कर लेता है, उसी प्रकार स्खलन होने के बाद भी एक अन्तिम स्पर्श (finishing touch) का सिलसिला होना चाहिये। पुरुष में स्खलन के परिणाम-स्वरूप जबर्दस्त पेशीगत संकुचन होते हैं। कुछ विद्वान ऐसा समझते हैं कि स्त्रियों के पूर्णमैथुन के बाद भी गर्भाशय के अन्दर ऐसे ही संकुचन होते हैं। डाक्टर वाकर समझते हैं शायद ऐसा होता हो, किन्तु आम तौर से कहा जाय तो पुरुष में पूर्णमैथुन के शारीरिक लक्षण जैसे स्पष्ट होते हैं, स्त्रियों में ऐसा नहीं होता, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं वे बिल्कुल उदासीन ही रह जाती हैं। सच बात तो यह है कि उनमें दृश्यगत (Objective) लक्षण कम स्पष्ट होने पर भी, द्रष्टृगत (Subjective) स्नायविक अभिव्यक्ति, तथा आराम की अनुभूति स्त्री में अधिक स्पष्ट होती है। पुरुष तथा स्त्री दोनों में ही स्खलन के ऐन बाद एक शान्ति, तृप्ति तथा शिथिलता की अनुभूति आती है।* स्खलन के बाद ही तुरन्त निष्क्रमण नहीं होना चाहिये, बल्कि स्त्री को चाहिये कि धीरे से दबाकर पुरुषभाग को अपने अन्दर धारण किये रहे। कहा जाता है इससे लाभ यह होता है कि दोनों में तादात्म्यता बढ़ती है तथा आत्मिक सम्बन्ध दृढ़ीभूत होता है। यह धारणा यहां के कुछ आदिम निवासियों में प्रचलित है इसका प्रमाण वेरियर एलविन ने अपनी पुस्तक Conception, pregnancy and birth में दिया है।†

मैथुनिक जीवन के प्रारम्भ में मैथुन की संख्या बहुत रहती है। कभी-कभी एक रात में सात बार तक की बात सुनी गई है, किन्तु

---

*Physiology of Sex, pp. 55-56.
†J. R. A. S. B, Vol. IX, p. 103.

ज्यों-ज्यों मैथुनिक जीवन प्राचीन होता जाता है, त्यों-त्यों मैथुन की संख्या कम होती जाती है तथा उनमें फ़ासला बढ़ता जाता है। पहले-पहल कौतूहल बड़ा जबर्दस्त होता है, किन्तु ज्यों-ज्यों यह कौतूहल तृप्त होता जाता है, त्यों त्यों यह कृत्रिम उत्तेजना दूर हो जाने के कारण मैथुन की संख्या घट जाती है, इससे विवाह को दोष देना ग़लत होगा। विवाह के पहले भावी पति-पत्नी को मौक़ा कम लगता है, इस कारण कौतूहल का उपादान कम तृप्त हो पाता है, फिर बात भी नई-नई होती है, इस कारण उनमें चाह अधिक होती है, किन्तु विवाह के बाद अतितृप्ति से कुछ सन्तोष जरूर हो जाता है जो लोग विवाह के बिना ही अतितृप्ति प्राप्त कर लेते हैं, उनमें भी कौतूहल नहीं रह जाता, और वे भी थोड़े ही दिन में पहले के मुक़ाबले में कम मैथुन करते हैं।

हमने मैथुन से पूर्व प्रेम-क्रीड़ा को जितना महत्व देना चाहिये उतना नहीं दिया, इसलिये यहाँ पर उनके विषय में थोड़ा विस्तार के साथ कहना चाहिये। (प्रेम-व्यवहार में सबसे पहली जो अनुभूति काम में आती है, वह त्वक की अनुभूति है, इससे जो सुख होता है वह स्पर्श-सुख है) न्यूमैन ने* हाथियों के प्रेम-व्यवहार को देखा। उसके दौरान में हाथी ने पहले हथिनी को अपने सूँड से प्यार किया, फिर वे दोनों अलग-अगल खड़े होकर एक दूसरे के सूँड़ को लपेटते रहे, और उनके अग्रभागों को एक दूसरे के मुँह में रख दिया। (इस प्रकार प्रेम-क्रीड़ा में स्पर्शसुख को एक विशेष महत्व प्राप्त है। चुम्बन स्पर्श सुख का ही एक विशेष प्रकार है। सैजर (Sadger) ने लिखा है कि बालिग हो जाने के बाद लड़कियों में कामेच्छा का स्फुरण चुम्बन पाने की इच्छा के रूप में जगती है। प्रेमिक के चुम्बन से ही लड़की औरत में परिणत

*Physiology of Sex, p. 47.

की जाती है। अक्सर वह नहीं जान पाती (यदि सोहबत खराब न रही हो) कि जननेन्द्रिय में भी कोई सुख की संभावना है। चुम्बन किये जाने पर ही उसकी उस तरफ की इच्छायें जाग्रत होने लगती हैं और वह जान जाती है कि उधर भी कुछ है। ओठों से किसी भी शरीर के भाग का स्पर्श करना चुम्बन कहला सकता है, किन्तु विशेषकर मुख-चुम्बन को ही चुम्बन कहते हैं। चेहरे का सारा हिस्सा चुम्बन की दृष्टि से एक ही तरह से अनुभूतिशील हो ऐसी बात नहीं। मुखगह्वर का चुम्बन विशेषकर जिह्वा द्वारा जिह्वा का स्पर्श सबसे अधिक अनुभूति उत्पादक है। प्रेम क्रीड़ा में चुम्बन का विशेष स्थान होता है। चुम्बन का एक रूप जननेन्द्रिय का चुम्बन हो सकता है। कहा गया है कि यदि उदासीन से उदासीन स्त्री की जननेन्द्रिय का चुम्बन तथा उसमें जिह्वा प्रवेश किया जाय, तो उसकी उदासीनता काफूर हो जाती है। यह कहा जायगा कि यह तो बड़ा बीभत्स है। बात यह है लोगों ने प्रेमक्रिया का एक मानदण्ड मान लिया है, और चाहते हैं कि उससे न हटा जाय। केनेथ वाकर पूछते हैं, आखिर यह मानदण्ड है क्या? किसने इसकी सृष्टि की? (२) हैवलाक एलिस इस पर यह कहते हैं कि प्रेम-व्यवहार में इस बात का दखल नहीं होना चाहिये कि नैतिक रूप से क्या सही है और क्या ग़लत है, बल्कि यह देखना चाहिये क्या सौन्दर्य की धारणा के अनुकूल है और क्या उसके प्रतिकूल। यह बात तो प्रेम करनेवालों पर छोड़ देना चाहिये कि मैथुन के ढंग को वे किस प्रकार उद्देश्य तक पहुँचाकर अधिक से अधिक सुख प्राप्त करते हैं। बात यह है प्रेम में बहुत-सी ऐसी चीजें सुन्दर हो जाती हैं जो ऐसे लोगों के लिये त्याज्य हैं जो प्रेम में नहीं हैं। यदि एक तीसरे व्यक्ति की दृष्टि से

*Ibid, p. 48.

देखा जाय तो प्रेम का सारी शारीरिक अभिव्यक्ति ही अभद्र तथा त्याज्य । (३) भर्तृहरि ने शान्तिशतक में इस पर पूरे सौ श्लोक ही लिख डाले हैं।

स्त्रियों की कामेच्छा-उद्दीपक अंगों में कुच का बहुत बड़ा स्थान है। सच बात तो यह है कुच तथा स्त्री-जननेन्द्रिय का बहुत गहरा सम्बन्ध है। गर्भाशय के इर्द-गिर्द होनेवाली घटनाओं का विशेषकर गर्भावस्था का कुचों पर असर पड़ता है। माँ जो बच्चे को दूध पिलाती है यह केवल परोपकार या स्नेह ही नहीं है, ऐसा करते समय उसे शारीरिक सुख की भी प्राप्ति होती है। जो कुछ भी हो, पूर्ण-मैथुन की सफलता के लिये पूर्वक्रीड़ा के रूप में कुचमर्दन का बहुत बड़ा महत्व है। पुरुष अक्सर इसको जीभ के अग्रभाग से उत्तेजित करता है, यदि इस में पूर्णमैथुन में सहायता मिले तो एक साधन के रूप में यह तरीका इस्तेमाल किया जा सकता है।

इस सम्बन्ध में दो एक बात और भी कहनी है। बहुत से पुरुष तथा स्त्री विवाह के पूर्व ही मैथुनात्मक सम्बन्धों में फँस जाते हैं। यहाँ पर उसका नैतिक पहलू हमारे सामने नहीं है। कहना न होगा यह लोग स्वाभाविक तौर पर यह चाहते हैं कि इसके फलस्वरूप कहीं गर्भ न रह जाय। इस उद्देश्य से वे यदि जन्मनिरोध के साधनों तथा उपायों का इस्तेमाल करते हैं, तो उसके सम्बन्ध में हमें इतना ही बता देना यथेष्ट है कि अस्त्रोप्रचार के अतिरिक्त कोई भी साधन ऐसा नहीं है जो यह निश्चित गारण्टी दे सके कि किसी भी हालत में गर्भाधान नहीं होगा। यद्यपि साथ ही यह भी बात याद रहे कि मैथुन में Uterus के मुँह के पास वीर्य स्खलित होने के बाद कोई एक घण्टा उसके विवर

*Sexual Side of Marriage, p. 50.

में पुरुषवस्तु को पहुँचने में लगता है, फिर Obiduct या उस नली में पहुंचने में जहाँ उसकी भेंट स्त्रीवस्तु या अण्ड के साथ होती है कई घण्टे लगते हैं।* इस बीच में मरहम आदि काम दे सकता है, किन्तु वह बेकार भी हो सकता है, यदि एक भी पुरुषवस्तु की इकाई इससे बच कर स्त्रीवस्तु की इकाई को जाकर उर्वर कर पाई तो फिर गर्भाधान होकर ही रहेगा। फिर जो रबर आदि हैं उनमें काम के समय छेद आदि हो सकता है, उस हालत में खतरा तो स्पष्ट है। फिर यदि प्रेमिक प्रेमिका में यह तय हो जाता है कि वे जननेन्द्रियों का सम्मेलन नहीं होने देंगे, किन्तु और सब कुछ करेंगे, तो वह भी कुछ ठीक नहीं, क्योंकि इससे मैथुनात्मक अंगों की क्रिया-प्रतिक्रिया में बाधा पहुँचती है, और यह भय पैदा हो जाता है कि जब उनसे बाद को साधारण काम का तक़ाज़ा किया जायगा तो वे वैसा न कर पायेंगे। फिर कुछ प्रेमिक इससे भी आगे जाते हैं, वे प्रवेश क्रिया कर देते हैं, किन्तु स्खलन के ऐन पहले निकाल लेते हैं। अर्नेस्ट गोवस नामक अमेरिकन लेखक का कहना है कि इस क्रिया से जिसको वे गौण सेक्स अभिव्यक्ति (Secondary sex expression) कहते हैं यह नुकसान हो सकता है कि स्त्री इसकी इतनी अभ्यस्त हो जाय कि बाद को वास्तविक मैथुन चाहे हो नहीं, तथा पुरुष में शीघ्रपतन रोग हो सकता है। फिर यह कार्य खतरे से खाली नहीं है, मान लीजिये ऐन मौके पर इच्छा ऐसी प्रबल हुई कि निकाल नहीं पाये, या निकालते-निकालते अर्धस्खलन हो गया, या निकालने के बाद ही स्त्री-जननेन्द्रिय पर स्खलन हो गया, तो फिर उसमें खतरा हो ही गया। हमने पहले ही कह दिया कि नैतिक दृष्टि से हम यहाँ पर कोई विचार नहीं कर रहे हैं, किन्तु केवल शरीरवैज्ञानिक दृष्टि से इस प्रकार के व्यवहार त्याज्य हैं। इसका अर्थ यह न लगाया जाय कि प्रत्येक चुम्बन का अपरिहार्य तार्किक परिणाम मैथुन होना ही

चाहिये, किन्तु यह जरूरी है कि जननेन्द्रिय की पूर्ण उत्तेजना बार-बार होना और फिर कुछ न होना शारीरिक दृष्टि से अच्छा नहीं हो सकता। फिर इस सम्बन्ध में हम केवल शारीरिक पहलू तक ही अपनी दृष्टि को सीमाबद्ध नहीं रख सकते। मैथुनेच्छा की तरह मातृत्व की भूख स्त्रियों के लिये एक स्वाभाविक भूख है। इस कारण इसकी तृप्ति के बगैर स्त्री की आँखों में कोई सम्बन्ध न तो सर्वांगपूर्ण हो सकता है न स्थायी ही। कुछ आधुनिक स्त्रियाँ जो आर्थिक रूप से स्वतन्त्र हैं, कहती हैं कि एक बच्चे की माँ होने के लिये एक पुरुष की गुलामी उन्हें क्यों वरण करना (विवाह करना) पड़ेगा। पुरुष की इस मामले में कौन सी ऐसी बड़ी सेवा है कि जन्ममर के लिये उसको पट्टा लिख कर दे दिया जाय? बर्नार्ड शा ने लिखा है कि स्त्रियों में भीतर-भीतर इस बात पर बड़ा विद्रोह है। केवल एक बच्चे की मालकिन होने से काम नहीं बनता, उसकी जननी होने के तजर्बे से गुजरकर ही बच्चे का पालन-पोषण करने से ही, तथा उसकी सैकड़ों नाजबरदारी करने से ही मातृत्व की भूख पूरी हो सकती है। कुछ स्त्रियों में मातृत्व की भूख मैथुनच्छा से कहीं प्रबल होती है, इसलिये एक तरफ तो वे मैथुनेच्छा को इसकी प्राप्ति के साधन के रूप में केवल गौण रूप से पसन्द करती हैं, तथा दूसरी तरफ मातृत्व की संभावना के बगैर उनके निकट मैथुन कोई अर्थ नहीं रख सकता। शीघ्र निष्कासन तथा जन्म-निरोध की क्रिया पर अधिक दिन प्रेम स्थायी नहीं रह सकता, कम से कम स्त्री की तरफ से यह बात याद रहे। इसलिये वर्त्तमान समाज में जिसे विवाह कहते हैं, या उसका स्थानापन्न का कोई तरीका जैसे Com panicnate marriage या साथ रहना (सामाजिक रूप से) है, बगैर न प्रेम अपनी पूर्णता को पहुँच सकता है, न मैथुन ही। कम से कम ही विभाग स्त्री के लिए नहीं।

हमारे ऋषिमुनि तो यह बतला गये हैं कि ब्रह्मचर्याश्रम जितना ही स्थायी होगा बाद का जीवन याने गृहस्थ जीवन उतना ही सुखी होता हैं। स्वामी दयानन्द ने उत्तम ब्रह्मचर्य शायद ४८ साल तक माना है। हमारे सामने इस समय नैतिक प्रश्न नहीं है, हम केवल इस बात पर विचार करेंगे क शरीरविज्ञान की तथा मनोविज्ञान की दृष्टि से यह बात कहां तक सही है। पहले ही यह बता दिया जाय कि फ्रायड के अनुसार मनसा, वाचा, कर्मणा एक दस वर्ष का लड़का भी ब्रह्मचारी नहीं है याने उसका भी मैथुनात्मक जीवन है, किन्तु यदि ब्रह्मचर्य से मतलब चुम्बन से लेकर मैथुन तक सभी मैथुनात्मक अभिव्यक्ति से बचना है, तो ऐसा ब्रह्मचर्य हो सकता है याने कर्मणा ब्रह्मचर्य संभव है। ब्रह्मचर्य का मतलब यह नहीं कि कामेच्छा हो ही नहीं, बल्कि बराबर उसका दमन किया जाय। "हमारी सभ्यता की हालत ही ऐसी है कि उसमें कामात्मक अभिव्यक्ति के रास्ते में रोड़े पर रोड़े हैं, किन्तु साथ ही साथ बराबर कामोत्तेजन होता रहता हैं।"* ऐसी हालत में केवल कर्मणा ब्रह्मचर्य संभव है। पहले हो हम किसी पूर्व अध्याय में बता चुके हैं कि आजन्म ब्रह्मचारीगण गृहस्थों के मुकाबले में किसी विशेष प्रतिमा के अधिकारी होते हैं यह साबित नहीं है। हम यहां पर सामयिक रूप से ब्रह्मचारी रहने की बात नही कहते। अपने ऊपर एक हद तक विवाहित जीवन में रोक थाम करना तो अच्छे फल का उत्पादक होगा ही। जैसे मान लीजिये कल पाँच मील की दौड़ में शामिल होना है तो आज या उससे भी दो एक दिन पहले से ब्रह्मचर्य रखना शुभ फलोत्पादक हो सकता है। हम यहां पर आजन्म कुमार या कुमारीव्रत के विषय में आलोचना कर रहे हैं। अतएव हमारे सामने प्रश्न का केवल एक ही रूप रह गया, वह यह कि क्या एक दीर्घकाल तक (स्वामी दयानन्द के ४८ साल वाले ब्रह्मचारी को लिया जाय) ब्रह्मचर्य रखने वाला व्यक्ति गृहस्थ बनेगा तो क्या वह अपनी स्त्री को अधिक तृप्त कर पायेगा।

*Physiology of Sex, p. 87.

इसका स्पष्ट उत्तर यह है कि ऐसी कोई बात नहीं, बल्कि अधिक संभावना यह है ४८ वर्षवाला ब्रह्मचारी एक तीसरे दर्जे का प्रेमिक साबित हो। केवल यही नहीं शारीरिक रूप से भी याने मैथुनिक दृष्टि से वह २४ वर्षवाले ब्रह्मचारी से कम समर्थ साबित होगा इसकी अधिक संभवाना है। मैथुनिक शक्ति अतिमैथुन से या कम उम्र से मैथुन करने से घट या लुप्त हो सकती है, किन्तु अतिब्रह्मचर्य का भी यही असर हो सकता है। लिंग के उत्तेजित होने का शरीरविज्ञान की दृष्टि से अर्थ यह है कि उसमें जो स्पंज की तरह कोष हैं, वे रक्त से लबरेज भर जाते हैं, तभी लिंग विस्फारित होकर कड़ा हो जाता है। यदि ये कोष कभी काम में न आवे, याने कभी उनमें उष्ण रक्त का संचार ही न हो, तो स्पष्ट है उनकी विस्फारण तथा प्रसारण-शक्ति घट जायगी, संभव है वह लुप्त हो जाय। इसका एक उदाहरण हम पहले ही दे चुके हैं। ऊर्ध्वबाहुओं के हाथ का जो हाल होता है, सच्चे ब्रह्मचारी के जननेन्द्रिय का भी वही हाल होगा। स्त्री के लिये भी यही बात है। स्त्री जरूरत से अधिक ब्रह्मचारिणी रहे और उसके बाद मैथुन में प्रवृत्त किया जाय तो उसमें एक तरफ तो उदासीनता (Frigidity) तथा दूसरी तरफ कष्टकर मैथुन (Dyspareunia) होगा। फिर Vaginismus नामक बीमारी भी हो सकती है जिसमें योनि में ऐसी त्रुटि पैदा हो जाती है जिससे प्रवेश-क्रिया बाधाग्रस्त होती है, या हो ही नहीं पाती। फिर ऐसी स्त्रियां यदि गर्भ धारण कर लें, तो प्रसव के समय उनकी प्राणहानि तक की नौबत आ सकती है।

डाक्टर एडविन हार्श (Dr. Edwin Hearsch) ने अपनी पुस्तक The power to love में यह दिखलाया है कि पुरुष-शरीर की सेक्स-ग्रंथियों (Sex-glands) में दो तरह के स्राव पैदा होते हैं, इनमें से एक तो रक्तधारा में जज्ब हो जाती है, और कभी बाहर नहीं

निकलता। इससे उस व्यक्ति के मानसिक तथा शारीरिक स्वास्थ्य में सन्तुलन आता है, और यदि इस वीर्य में न्यूनता आवे तो स्वास्थ्य में फर्क पड़ सकता है। दूसरे वीर्य को हम वीर्य नाम से अभिहित करते हैं, इसे तो कभी भी शरीर-पद्धति में जज्ब किया ही नहीं जा सकता, और इसे बाहर निकलने से जबरदस्ती रोका जाय तो इस से स्नायविक खिंचाव, यहां तक कि दूसरे रोग उत्पन्न हो सकते हैं।

नोस्ट्रन का कहना है कि अतिब्रह्मचर्य से कई गड़बड़ियाँ हो सकती हैं, जिनमें Orchitis इच्छा के विरुद्ध असमय स्खलन, नपुसंकत्व, स्नायविक रोग तथा कई तरह की अन्य गड़बड़ियां हो सकती हैं अतिब्रह्मचर्य के कारण नाक और फेफड़ा बहुत अधिक अनुभूतिशील हो जा सकता है, जिसके फलस्वरूप जब देखो तब जुकाम हो सकता है रोलाँ का कहना है कि ब्रह्मचारियों में तथा विधवाओं में पेड़ू की बीमारियां अक्सर पायी जाती हैं, वे मैथुनिक स्नायुओं के अति उत्तेजन से हो सकती हैं। स्वयं फ्रायड का कहना है कि "अति ब्रह्मचर्य रखने में व्यक्ति को अपनी सारी शक्ति को लगा देना पड़ता है, नतीजा यह है कि वह और किसी काबिल नहीं रह जाता। अवश्य कुछ क्षेत्रों में उदात्तीकरण सम्भव है, और ऊँची सांस्कृतिक उपजें तैयार हो सकती हैं, जैसे कविता या कला, किन्तु ऐसा होना कुछ ही क्षेत्र में सम्भव है कुछ तो स्पष्ट रूप से Neurotic हो जाते हैं, और अन्य अनेक तरीके से तकलीफ उठाते हैं। ऐसी बहुत-सी बुराइयां हैं, जिनमें जीवन का सर्वनाश भी है जिनसे मनुष्य बिल्कुल बरी हो सकता है यदि वह अति ब्रह्मचर्य के स्वांग को छोड़कर एक साधारण और सही दिमाग व्यक्ति की तरह आचरण करे।"*

११

*Food and Health by C. Chakra, p. 167.

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि मैथुन की दृष्टि से अति ब्रह्मचर्य बेकार ही नहीं, साफ-साफ हानिकारक हो सकता है। बुद्धि तथा कला की दृष्टि से वह बेकार है यह पहले ही कहा जा चुका है। इसका अर्थ यह नहीं कि १५ साल की उम्र से भ्रमरवृत्ति की जाय, साथ ही यह भी तो स्पष्ट हो जाना चाहिये कि मैथुन में सफलता ही तो जीवन का ध्येय नहीं है। हमारा ध्येय अधिक से अधिक सार्वजनिक सुख स्वच्छन्दता की वृद्धि है, मैथुन का महत्त्व उतना ही है जितनी हद तक वह इस सुख में वृद्धि करे। वह स्वयं या उसमें सफलता कभी ध्येय नहीं हो सकता। फिर मैथुन की दृष्टि से भी एक उम्र तक ब्रह्मचर्य जरूरी है। उम्र की यह हद क्या है सो यह देश, काल, पात्र के अनुसार विभिन्न होने के लिये बाध्य है। फिर भी पुरुष के लिये २४ और स्त्री के लिये २० के इर्द-गिर्द की उम्र भानदण्ड समझा जा सकता है। इसके बाद ब्रह्मचर्य व्यर्थ हो किसी धुनवाले व्यक्ति के लिये कष्टकर न हो पावे, किन्तु साधारण व्यक्ति के लिये कष्टकर ही होगा। उसका असर बुरा होगा ऐसी ही संभावना है।

स्त्री के मैथुनिक जीवन के सम्बन्ध में एक ध्यान योग्य बात यह है कि उसके इस जीवन की तैयारी की सूचना के रूप में मासिक धर्म शुरू होता है, और उसके अन्त की सूचना मासिक धर्म के अन्त से होती है। मासिक धर्म का अन्त ३५ से लेकर ५५ तक किसी भी उम्र में हो जाता है, और प्रजनन के अंगों पर इसका प्रभाव पड़ता है। इस समय ग्रंथियों के रसक्षरण में कुछ गड़बड़ी भी हो जाती है। इसके साथ ही मानसिक तथा शारीरिक गड़बड़ियाँ भी दृष्टिगोचर होती हैं। मासिक धर्म के अन्त हो जाने से स्त्री यह समझ जाती है कि अब उसके मैथुनिक जीवन का अन्त हो गया, इससे वह एकाएक घबड़ा जाती है और उसे ऐसा ज्ञात होता है कि जैसे उसके पैरों तले से केवल जीवन या यौवन ही नहीं जमीन ही खिसक रही है। वह यह समझ जाती

है कि अब उसको कोई प्रेम की दृष्टि से नहीं देखेगा। इसलिये एकाएक उसमें कामवासना आकाशस्पर्शी लपटें उठाकर जल उठतीं हैं। यह समय उसके पति या प्रेमिक के लिये बड़ा कठिन होता है क्योंकि इस आग में कितना भी घी झोंका जाय उसकी शान्ति होने के बजाय वह और भड़क उठती है। किन्तु यदि स्त्री समझदार है तो उसे इससे घबड़ाने का कोई कारण नहीं। पुरुष में ऐसी कोई उम्र नहीं होती। यदि उसका स्वाथ्य ठीक है तो मृत्यु तक प्रजनन शक्ति रहती ह, पर उसका वेग घटता ही जाता है, पुरुष के साथ प्रकृति का यह पक्षपात इसलिये है कि प्रसव-क्रिया बहुत शक्ति का तकाजा करती है। स्त्री एक उम्र तक ही उसे बर्दास्त कर सकती है। पुरुष पर गर्भाधान से कोई बोझा नहीं पड़ता। मासिक धर्म बन्द होनेके बाद स्त्री मैथुन का आनन्द ले तो सकती ही है।

कहा जाता है कि अति आधुनिकता का यह तकाजा है कि विवाह के पहले ही पुरुष मैथुन के सम्बन्ध में अभिज्ञता प्राप्त कर ले तो बाद में उसको अपनी स्त्री के साथ मैथुनिक जीवन में सहूलियत रहेगी। स्त्रियों में स्वतन्त्रता के आन्दोलन की वृद्धि के साथ ही साथ स्त्रियों की तरफ़ से भी यह बात कही जा रही है। कहना न होगा कि यह प्रश्न बड़ा टेढ़ा है।* यहाँ हम प्रचलित सामाजिक रीति से इस विषय पर आलोचना नहीं करेंगे, उस हालत में उस प्रश्न का भाग्य स्पष्ट है, किन्तु हम यहां पर शारीरिक-मानसिक दृष्टि से उस विषय पर आलोचना करेंगे। यह बात तो सही है कि यदि पहले से मैथुन का कुछ तजुर्बा हो जाय तो फिर बाद को टटोल-टटोल कर रास्ता नहीं चलना पड़ेगा, बल्कि घोड़ा सरपट दौड़ेगा। पोलीनेशिया द्वीपपुञ्ज में

*Sexual Side of Marriage, p. 160

अविवाहित नौजवान तथा लड़कियां आम शयनागार में सोती हैं। वहां उनको सम्पूर्ण मैथुनिक स्वतन्त्रता रहती है, किन्तु न मालूम कैसे अक्सर उन्हें गर्भ नहीं रहता। यदि गर्भ रह गया तो फौरन विवाह हो जाता है। अक्सर इसके पहले ही विवाह हो जाता है, क्योंकि वे एक दूसरे की मैथुनिक योग्यता को जान चुके होते हैं। ज्यों ही विवाह तय हो जाता है, उपहारों की लेन-देन होती है, भोज की व्यवस्था होती है।* इस प्रकार वहां टटोलकर मैथुनिक जीवन में आगे बढ़ने की बात नहीं उठती, किन्तु इस सम्बन्ध में सवाल यह है कि क्या टटोल-टटोलकर सीखने में कोई मज़ा नहीं है? सच बात तो यह है कि बाद के जीवन में यही ज़माना ज़ोरों के साथ याद किया जाता है। केवल भावुकता की बात नहीं, क्या मैथुन केवल एक शारीरिक क्रियामात्र है? इस प्रश्न की सफ़ाई बहुत ज़रूरी है। इस अध्याय को पढ़कर पाठक को कुछ ऐसी ग़लतफ़हमी हो सकती है। किन्तु यह बात नहीं।

हैरिस ने Essays on Marriage में कहा है, "एक विवाह का भविष्य इस बात पर निर्भर करता है कि हम यहां तक उसकी वैयक्तिक सम्बन्धवाली हैसियत को समझते हैं, और हम अपने को उन समस्याओं पर कहां तक लगा पाते हैं, जो व्यक्ति से सम्बन्ध रखते हैं। × × आज का तक़ाज़ा यह है कि अधिक स्वतन्त्रता हो, तलाक़ आसान हो, प्रयोग के तौर पर अस्थायी विवाह हो इत्यादि, किन्तु इनका मतलब यह नहीं है कि लोग पहले के मुकाबले में दुश्चरित्र हैं। यदि सहानुभूति के साथ इन बातों को देखा जाय, तो हम उनमें विवाह की परम्परागत धारणाओं के विरुद्ध एक प्रतिवादमात्र देखते हैं क्योंकि इन धारणाओं में विवाह केवल एक सामाजिक प्रणाली के रूप में देखा

*Physiology of Sex, p. 108

गया है और उनसे जिन मानवीय भावनाओं का सम्बन्ध है उनको बिल्कुल देखा ही नहीं गया।" हैरिस को कहना नहीं आया, और वह इसलिये नहीं आया कि समाज तथा सामाजिकता के सम्बन्ध में अजीब धारणा है, क्योंकि वे एकमात्र वैज्ञानिक दृष्टिकोण याने प्रगति से अपरिचित हैं। विवाह एक सामाजिक प्रणाली हो ऐसा नहीं है, इसी का तो हमें अपार दुःख है। वर्त्तमान समाज तो मुट्ठी भर लोगों के द्वारा सारे समाज का शोषण है, जिसमें पुरुष द्वारा स्त्रियों का शोषण भी शामिल है। फिर झूठी लज्जा, काम को बुरा समझना, ढोंग, यह सब इसी प्रणाली की विशेषताएँ हैं। इसी प्रणाली ने कामेच्छा की परितृप्ति को एक पाप-सा करार देकर तमाम मानसिक खिंचावों लोकाचारों तथा ढोंग की सृष्टि कर रक्खी है। अवश्य ही विवाह एक सामाजिक प्रणाली है, किन्तु यह प्रणाली व्यक्तिगत सम्बन्ध को दृढ़ीभूत करने के लिये है, न कि अन्तर्विरोधों की सृष्टि करने के लिये है। तलाकों की ओर दिखाकर यह कहा जाता है कि यह समाज है कहां, वह तो बिखर रहा है, किन्तु तलाक एक अन्तर्विरोध है जिसकी सृष्टि के लिये वर्त्तमान समाज ही जिम्मेदार है।

विवाह को हम पारलौकिक या जन्मजन्मान्तर का सम्बन्ध तो मानते नहीं, इस कारण वर्त्तमान परिस्थिति में जब असम विवाह रोज होते हैं, तथा बिना डाक्टरी परीक्षा के विवाह होते हैं, तलाक एक रोग नहीं बल्कि एक आवश्यक पूरक है। एक गलती हो गई तो वह जन्म भर चालू रहे यही हिन्दू समाज स्त्रियों से कहता है, पुरुष तो दो-चार, छः शादी कर सकता है और पहली स्त्री या स्त्रियों के वर्त्तमान रहते हुए। रोमन कैथोलिक धर्म का दृष्टिकोण इससे कहीं सुन्दर है, उसमें तलाक करीब-करीब है ही नहीं। वहाँ एक बार विवाह हो गया कि एक ही स्त्री और पुरुष मृत्यु तक एक-दूसरे के गले बँध गये। कहनेका

न होगा कि ऐसे दृष्टिकोण का अनिवार्य नतीजा या तो व्यभिचार को प्रोत्साहन होगा, या पति-पत्नी मजबूरन गार्हस्थ्य-जीवन से हाथ कतई खींच लेंगे। दोनों हालतों में अशान्ति की वृद्धि ही होती है। सामोआ के विवाह तथा तलाक के सम्बन्ध में लिखते हुए डाक्टर डब्ल्यू रिचर्मांड ने लिखा है कि जब पति या पत्नी एक दूसरे के संग से थक जाती हैं तो वह घर चल देती या देता है, बस इस पर यह समझा जाता है कि विवाह खत्म हो गया।* सामाजिक जटिलता के कारण सभ्य लोगों में तलाक इतना कठिन हो गया है। मुसलमानों में केवल पुरुष ही तलाक दे सकता है, इस्लाम की फिर वह घोषित समता और लोकतान्त्रिकता कहाँ रही। अति आधुनिकता का दम भरते हुए भी एक सोवियट रूस के अतिरिक्त कहीं भी तलाक समोआ के असभ्यों की तरह भी सुन्दर और सहज नहीं है। १९३० के Matrimonial Causes Bill के अनुसार अब वृहत् ब्रिटेन में व्यभिचार के अलावा तीन वर्ष तक परित्याग, जालिमाना वर्ताव, स्वभाव शराबीपन, अचिकित्स्य पागलपन तथा आजन्म कैद तलाक के लिये माकूल कारण समझे जाते हैं। तलाक सम्बन्धी कानून यदि कड़ा होगा तो उससे कुछ फायदा न होकर उलटा नुकसान ही होगा। अमेरिका में तलाक कानून सख्त किये गये किन्तु अब वहाँ प्रत्येक छै विवाह पर एक तलाक होता है। स्वडेन में तलाक के लिये केवल पारस्परिक मत की जरूरत है, किन्तु वहाँ अमेरिका के मुकाबले में तलाक १६ फी सदी मात्र है। कुछ भी हो अब यह बात निर्विवाद सिद्ध हो चुकी है कि ऐसे विवाह जिसका आन्तरिक अर्थ टूट चुका, उसका बाहरी रूप से टूट जाना ही अच्छा है।

विवाह किस उम्र में हो जिससे तलाक तथा दुःख की कम संभावना रहे इस विषय पर भी वैज्ञानिक आलोचना हो चुकी है। फिलाडेलफिया

*Physiology of Sex, p. 116

के पारिवारिक सम्बन्धों की अदालत में किये गये तजर्बे के फलस्वरूप हार्ट तथा शिल्डस शीघ्र विवाह के विरोधी हैं। ल्यूरा बीम और डिकेनसन उनके मतों का समर्थन इस आधार पर करते हैं कि जितने सुखी विवाहों का उन्होंने अध्ययन किया, उनमें यही पाया गया है कि सुखी विवाहों में स्त्रियों की उम्र विवाह के समय अधिक थी। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं थी, क्योंकि उम्र के बढ़ने के साथ फैसला करने की शक्ति बढ़ जाती है। साथ ही उम्र जितनी ही बढ़ती है, मनुष्य उतना ही अपनी आदतों को बदलकर दूसरे के साथ सामंजस्य में लाने में असमर्थ होता है, इस आधार पर कुछ लेखक उतने ही जोरों से शीघ्रविवाह का समर्थन करते हैं। कुछ लेखक शीघ्रविवाह का समर्थन सुप्रजनन की दृष्टि से करते हैं। हागेन और मैक्स क्रिश्चियन इसी आधार पर कहते हैं कि विवाह की उम्र पुरुष के लिये बाईस और स्त्री के लिये उससे कुछ कम बताया है। इंगलैंड में पुरुष तथा स्त्री की औसत उम्र क्रमशः २९ और २६$\frac{1}{2}$ है। इंगलैंड में विवाह की कानूनी कम से कम उम्र १६ है। किन्तु २१ से कम उम्र में विवाह वहाँ तभी हो सकता है जब अविभावकों की राय प्राप्त कर ली जाय।* साफ बात यह है कि विवाह न जल्दी हो न देर में। इसके साथ ही अधिकांश आधुनिक लेखकों का मत यह है कि विवाह के पहले भावी वर तथा वधू की डाक्टरी परीक्षा होनी चाहिये जिससे पता लगे कि कहीं बाँझ या नपुंसक तो नहीं है, तथा उनमें कोई सूजाक या आतशक से पीड़ित तो नहीं है। विवाह के बाद इन बातों का पता होना जीवन को खराब करना है।

जे० पी० लिखतेनबर्गर Divorce नामक पुस्तक में लिखता है- "आज सबसे बड़ी माँगों में एक यह भी है कि विवाह में पारस्परिक सुख

*Physiology of Sex, p. 103 et seq.

ही सबसे अपरिहार्य शर्त माना जायगा। चूँकि अब तलाक की संख्या ज्यादा हो गई है, इसलिये यह कहा जाता है कि यह विवाह के विरुद्ध विद्रोह है, किन्तु विवाह की संख्या बराबर बढ़ रही है इस कारण यह ज्ञात होता है कि तलाक के कारण ऐसे होंगे जो विवाह के बाद पैदा होते हैं, और उसके पहले नहीं जाने जा सकते थे। इसका अर्थ यह भी है कि वर्तमान आदर्शों में तथा उनके कार्य रूप में परिणत किये जाने में विरोध है।" इस प्रकार तलाक उसी रोग का एक लक्षण है जिसको हमने वर्तमान समाज कहकर उल्लेख किया है। आदर्श साम्यवादी समाज में तलाक की जरूरत ही नही पड़ेगी, या पड़ेगी तो उसको उतना ही महत्व प्राप्त होगा जितना एक दूकान को छोड़कर दूसरी दूकान पर चले गये। यदि अपनी साथिन के साथ आत्मिक-शारीरिक सम्बन्ध विवाह से पक्के नहीं हुए, तो एक ढोंग को जारी रखने की सलाह देनेवाला वह समाज अपने मौलिक कर्तव्य से स्वयं ही च्युत हो चुका, वह समाज समाज नहीं, कुसमाज है, असमाज है। फिर इस समाज को व्यावहारिक क्षेत्र में मानता ही कौन है? हैरिस ने ठीक ही कहा "परिस्थितियां बड़ी निर्दय हैं। उन्होंने हमें इस सीधे सत्य को मान लेने के लिये बाध्य किया है कि जिस विवाह में वैयक्तिक सम्बन्ध सही नहीं हैं, वहां वह बिखर ही जाता है चाहे उसकी सहायता के लिये कानूनी, सामाजिक तथा धार्मिक सब तरह की सहायता आ पहुंचे, किन्तु यदि कोई सन्तोषजनक सम्बन्ध है तो उस पर चाहे जितने हमले हों वह सब का सामना करते हुए बना रहता है, यही नहीं कभी-कभी मृत्यु भी उसका कुछ बिगाड़ने में असमर्थ रहती है।"*

मनुष्य अब उस युग से कहीं आगे बढ़ चुका है, जब मैथुन केवल

*Quoted in Sexual Side of Marriage, p. 117

एक शारीरिक क्रिया मात्र थी, अब उसका ऊपरी भाग दृश्यमान रूप से शारीरिक होने पर भी उसका सार भाग मानसिक है। अवश्य जैसा बारबार कहा जा चुका है शरीर को इस सम्बन्ध में कम महत्व देना गलत होगा, क्योंकि यह याद रहे कि मन भी शरीर का ही एक विकसित हिस्सा है। अफलातूनी प्रेम जिसमें यह समझा जाता है कि प्रेम प्रेम के लिये है, शरीर से उसका कोई सरोकार नहीं, साधारण मनुष्य के लिये कोई मतलब नहीं रखता। फिर भी शारीरिक जितना ही मानसिक में घुल-मिलकर लय हो जायगा, उतना ही वह सम्बन्ध उच्च कोटि का हो जायगा। एक सफल प्रणय-सम्बन्ध के लिए यह जरूरी है कि तीन क्षेत्र में याने बौद्धिक, मैथुनिक तथा भावना के क्षेत्र में सामंजस्य हो। इसके साथ ही सुख के लिये यह भी जरूरी है कि यह समाज द्वारा स्वीकृत हो, क्योंकि कुछ नियम बहिर्भूत मामले तथा व्यक्तियों को छोड़ दिया जाय तो साधारण स्त्री या पुरुष बराबर समाज के विरोध तथा परिहास को बर्दास्त नहीं कर सकता। समाज का लगातार विरोध जिसमें पैतृक सम्पत्ति से वंचित होना भी है, हुक्का-पानी बन्द होना भी हो सकता है, साधारण व्यक्ति की रीढ़ पिलपिली कर देता है, और वह प्रणय का सुख क्या उठायेगा, मुमकिन है घुटना टेक दे याने अपने प्रणय-सहचर या सहचरी को छोड़ दे। और न भी छोड़े तो उसके मन में अपने सहचर या सहचरी के प्रति यह जो अविश्वास होता है कि यह कहीं दबाव में आकर छोड़छाड़ चल न दे यह कभी प्रणय-जीवन के लिये अनुकूल नहीं हो सकता। इन पहलुओं के अलावा इस सम्बन्ध में यह भी बात स्पष्ट हो जानी चाहिये कि विवाह के लिये शारीरिक रूप से परस्पर के प्रति आकर्षण तो जरूरी है ही, किन्तु साथ ही रोजमर्रे की और छोटी-छोटी बातों में भी सामंजस्य होना चाहिये नहीं तो और सब बातें होते हुये भी सम्बन्ध में बाधा पड़ेगी। विवाह के पूर्व जो

प्रेम होता है उसमें भावी पति-पत्नी को एक दूसरे का पूरा पता नहीं लगता क्योंकि दोनों उस युग में अपनी प्रकृति का सबसे अच्छा हिस्सा दूसरे के सामने रखते हैं। यह कहना कि मैथुनिक जीवन में यदि गड़बड़ी न होगी तो पति-पत्नी में कोई भी झमेला नहीं होगा, और वे बहुत ही मेल से जीवन का रास्ता तै करेंगे, एक अत्युक्ति मात्र है। मान लीजिये जैसा वर्तमान सामाजिक प्रणाली में अक्सर संभव है, गृहस्थी में पैसों की कमी है, बेकारी है इत्यादि तो वहां दाम्पत्य जीवन क्या खाक सुखकर होगा। फिर यदि पत्नी रोगिणी हुई, और पति चिड़चिड़ा हुआ तो भी सम्बन्ध खराब ही रहेगा, संभव है टूट जाय। हैरिस ने ठीक ही कहा है "विवाहित जीवन के दुःख भी बहुत हैं, यह कोई वनभोजन नहीं है। बड़ी दिक्कतों से उतनी कठिनाइयां पैदा नहीं होतीं जितनी छोटी-छोटी कहलाने वाली बातों से पैदा होती हैं।" इसके अतिरिक्त दोनों की दिल-चस्पियां सामंजस्यपूर्ण न हो तो भी गड़बड़ी का डर रहता है। फिर भी विवाहित जीवन में मैथुनिक गड़बड़ी एक बहुत बड़ी गड़बड़ी है जिसके महत्व को घटाना गलत होगा। लासेन्जेल्स में Institute of Family Relation (पारिवारिक सम्बन्ध संस्था) की ओर से खोज करने पर ज्ञात हुआ कि ५०० असफल विवाहों में केवल एक ही ऐसा पाया गया जहां मैथुनिक गड़बड़ी भी कारण रूप में नहीं थी।*

विवाहित जीवनयात्रा के पहले भावी पत्नियों को जिन धारणाओं को गाँठ बाँध लेना चाहिये डाक्टर एक्सनर के अनुसार वे ये हैं—

(१) सेक्स की भूख की तृप्ति को जीवन की एक स्वाभाविक प्रवृत्ति समझना। यह उसी प्रकार की प्रवृत्ति है जैसे खाने की प्रवृत्ति या गाना सुनने की प्रवृत्ति है। यदि सेक्स के जीवन को ढंग से चलाया जाय तो व्यक्तित्व को ऐश्वर्यशाली बनाया जा सकता है।

*Physiology of Sex, p. 82

(२) इस बात को मान लेना कि जानवरों में भले ही मैथुनिक जीवन केवल प्रजनन के लिये हो, किन्तु मनुष्य में इसका प्रथम उद्देश्य प्रेम की सबसे बढ़ी चढ़ी हुई अभिव्यक्ति है।

(३) यह समझना कि विवाहित जीवन में मैथुन केवल निषिद्ध नहीं है ऐसा नहीं, बल्कि यह साधारण दायरे के अन्दर (सभी अच्छी चीज़ दायरे के अन्दर ही अच्छी होती हैं) शारीरिक, मानसिक तथा भावुकता सम्बन्धी जीवन को उत्कृष्ट बनाता है, और ठीक तरह से प्रयुक्त होने पर पारस्परिक प्रेम को विकसित, सजीव तथा स्थायी बनाता है।

(४) शरीर के सभी हिस्सों को प्रेम के दायरे में समझना, न किसी को अस्पृश्य तथा त्याज्य समझना। प्रेम के क्रीड़ात्मक हिस्से में शरीर का कोई भी अंश प्रेम को सचेत करने के लिये तथा अभिज्ञता को पूर्णतर बनाने के लिये काम आ सकता है।

(५) ज़ोरदार मैथुन-शक्ति और उनकी अभिव्यक्ति को न केवल साधारण ही समझा जाय, बल्कि उनका स्वागत किया जाय क्योंकि प्रेम को स्थायी बनाने की इसे स्वाभाविक नींव मान सकते हैं। दोनों तरफ से खुल्लम-खुल्ला कामात्मक चेष्टा के प्रकट होने से पारस्परिक जीवन सुखकर हो सकता हैं।

(६) अपनी इच्छा पर कोई लगाम न रहे। कौन पहले छेड़े इस प्रकार की झूठी लज्जा तथा महीने में एक बार यह सब नियम घातक हैं।

(७) यह मान लेना कि प्रजनन से सम्बद्ध सब लोगों के (जिनमें बच्चा भी शामिल है) हित में तथा भय के बिना सेक्स सम्बन्ध में प्रवेश करने के लिये ज़रूरी है कि जीवन को इच्छानुसार नियन्त्रित किया जाय।*

*Sexual Side of Marriage. p. 199

सातवीं बात के सम्बन्ध में कुछ विस्तार के साथ विचार करना आवश्यक है। मैथुन के साथ सन्तानोत्पत्ति अपरिहार्य रूप से लगी हुई है। जैसा पहले ही बताया जा चुका है सन्तानोत्पत्ति की जाय या न की जाय, की जाय तो कितनी की जाय ये सभी बातें सामाजिक दृष्टि से सोची जा सकती है। यदि समाज यह कहता है कि व्यक्ति सन्तानोत्पत्ति करे तो उसका यह भी कर्तव्य है कि वह देखे कि व्यक्ति के पास उसके पालन-पोषण-शिक्षा के साधन हो। यदि ऐसा नहीं है, याने यदि समाज इसका भार उठाने के लिये तैयार नहीं है, तथा व्यक्ति के पास उसके साधन नहीं हैं तो व्यक्ति को अधिकार है कि वह इस सम्बन्ध में अपना निर्णय आप करे। इस उद्देश्य से वह मैथुन में जन्मनिरोध का इस्तेमाल कर सकता है। प्रत्येक सही समाज-पद्धति साथ ही यह देखने के लिये बाध्य है कि बच्चे के हक की रक्षा हो। बच्चे का हक यह है कि वह जिस समय दुनिया में आवे उसका शरीर तथा दिमाग सही हो, याने वह सही दिमाग और स्वास्थ्यवान हो। इस हक की रक्षा करने के लिये समाज को प्रत्येक उपाय से काम लेना चाहिये। कई रोग ऐसे हैं जो माता-पिता से बच्चे को प्राप्त हो सकते हैं। माता-पिता यदि सही दिमाग नहीं हैं तो बच्चे का दिमाग भी बहुत संभव है खब्त हो। ऐसी अवस्था में ऐसे रोगी तथा खब्त सन्तानोत्पादक के सम्भावनायुक्त माता-पिता को सन्तानोत्पादन से रोकना समाज का कर्तव्य है। विज्ञान की उन्नति के कारण अब यह बात बहुत ही आसान हो गई है। मैथुन शक्ति अव्याहत रहे, और प्रजनन शक्ति खतम हो जाय ऐसा आपरेशन किया जा सकता है। बहुत-से देशों में तथा अमेरिका के कुछ प्रान्तों में समाज यह कार्य करता है।

इस प्रकार की स्वास्थ्यकर दृष्टि लेकर मनुष्य यदि विवाहित जीवन में पदार्पण करे तभी वह सुखी हो सकता है।

———

विवाह

पहले के जमाने में लोग विवाह को भी भाग्य के अन्तगत एक बात समझते थे, याने वे यह समझते थे कि जैसे किसी एक विशेष कुल में जन्म मनुष्य के वश का नहीं है, उसी प्रकार विवाह भी है। पर जबसे लोग इस भाग्यवादी दृष्टिकोण को त्याग चुके हैं, तबसे विवाह की समस्याओं पर विचार करना शुरू हुआ है, और उस पर तरह तरह के अन्वेषण तथा गवेषणायें हो रही हैं। इन गवेषणाओं का फल अभी खास दिखाई नहीं पड़ रहा है, कम से कम भारत में यही दशा है इसमें सन्देह नहीं। कुछ लोगों की बात-चीत से बल्कि इस बात की भनक मिलती है कि पहले की कथित पोंगापन्थी शादियां अच्छी थीं क्योंकि उनमें जिसके भाग्य में जो कुछ भी मिला, उसे यदि खुशी से नहीं तो एक भाग्यवादी आत्मसमर्पण से ग्रहण करने की प्रवृत्ति थी, जिससे यदि सुख नहीं मिलता था, तो कम से कम एक प्रकार की शान्ति मिलती थी। बात यह है कि उसमें एक प्रकार का सन्तुलन स्थापित हो जाता था पर अब तो बात बिल्कुल दूसरी हो गई है। जहां देखो वहीं पारिवारिक अशान्ति है।

इस नये वातावरण में विवाह एक दिल्ली का लड्डू सा बनकर रह गया है। जो खाय वह भी पछताये, और जो न खाय वह भी पछताये। तो क्या इसका अर्थ यह हुआ कि इस विषय में सोचना तथा आंख खोलकर अन्वेषण करना घातक सिद्ध हुआ। देखने में तो ऐसा ही मालूम होता है यह भी कोई छिपी हुई बात नहीं है कि माता-पिता के द्वारा पुराने ढंग से कराई हुई शादियों में ही नहीं, प्रेममूलक विवाहों में भी अशान्ति तथा अतृप्ति दिखाई पड़ रही है। कई प्रेममूलक विवाहों में यह देखा जाता है कि कुछ दिनों बाद प्रेम गौण होकर पृष्ठ भूमि में चला जाता है, या मर

जाता है, और रोजमर्रा की समस्याएँ ही तथा इस प्रकार की अन्य बातें इतनी प्रबल होकर सामने आती हैं कि उनके सामने अन्य सारी बातें फीकी पड़ जाती हैं।

स्वाभाविक रूप से यह जो निष्कर्ष निकालने की प्रवृत्ति है कि आंख मूद कर पहले के लोगों की तरह चलना ही ठीक है, इसे केवल प्रतिक्रियावादी कहकर हंसी में उड़ाने से काम नहीं बनेगा। हमें गहराई में जाकर देखना पड़ेगा कि इस प्रकार की भ्रान्ति होने के कारण क्या हैं। यदि यह भ्रान्ति है तो उसका भंग होना आवश्वक है, पर प्रश्न तो यह है कि यह भ्रान्ति क्यों पैदा होती है और क्यों अन्त में जाकर हमारे लिये दुःख का कारण प्रमाणित होती है। मुझे ऐसा मालूम होता है कि हम विवाह के सम्बन्ध में जो रंगीन मधुर धारणा लेकर चलते हैं, वही विवाह की असफलता के कारण के रूप में सिद्ध होती है। बाहर से अर्थात् विवाहित जीवन के बाहर से खड़े होकर विवाह को केवल अन्तहीन मधुर मिलन, ज्योत्स्ना रात्रि और वनभोजन समझने के कारण ही हम अपने मन के तारों को ऐसे गलत रूप में बांध लेते हैं कि ज्योंही उसे वास्तविक विवाह की उंगलियों से छेड़ा जाता है वह बिल्कुल बेसुरा बजता है और उसमें से संगीत के बजाय शोर पैदा होता है।

मैं उस अध्याय में विवाह के सम्बन्ध में स्वस्थ दृष्टिकोण पर ही आलोचना करूंगा क्योंकि मेरी ऐसी धारणा है कि इसी के अभाव के कारण अच्छे से अच्छा विवाह पतवारहीन नाव की तरह वास्तविकता के चट्टान से टकराकर चकनाचूर हो जाता है। मेरी सम्मति में हम जिस वातावरण में रहते हैं, उसमें सिनेमाओं, रेडियो, सस्ते उपन्यासों से यही धारणा उत्पन्न होती है कि विवाह का अर्थ सारी जिम्मेदारियों का अन्त है, जिसमें एक बार पहुँच गये कि फिर चौबीसों घण्टे गुलछर्रे उड़ाना ही रह जाता है। हमारे सारे वातावरण में दायित्वबोध को मजबूत करने के बजाय उसे कमजोर करने की ओर प्रवृत्ति रहती है। लोग यह समझते हैं कि जहाँ विवाह हो गया तहां

केवल सुख ही सुख रहेगा, वे यह भूल जाते हैं कि सुख के प्रत्येक मुहूर्त्त को अपने परिश्रम तथा बुद्धिमत्ता से निर्माण करना पड़ेगा। विवाह का अर्थ मनमाना नहीं, बल्कि दूसरे के साथ अपने को मिला कर चलना है।

मैं हल्के प्रेम संगीतों के विरुद्ध नहीं हूं, पर सिनेमा के प्रेम संगीतों के कारण प्रायः लोग प्रेम के सम्बन्ध में जो चित्र अपने मन में बना लेते ह, उससे वास्तविकता का कोई सरोकार नहीं होता जिसका नतीजा यह होता है कि जब वास्तविकता सामने आती है तो वे रोने, चीखने, गिड़गिड़ाने और अपने जीवन साथी या साथिन को दोष देने लगते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि विवाह के गले में एक फन्दे की तरह हो जाता है, जिसका न तो समाधान ही दिखाई पड़ता है और न कोई मुक्ति की संभावना ही ज्ञात होती है।

विवाह के सम्बन्ध में सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि यह किसी प्रकार से जिम्मेदारियों के अन्त की सूचना नहीं करता। अविवाहित पुरुष तथा कुमारियां इस बात को विवाह के पहले जितनी भी अच्छी तरह हो सके मन में जमा लें तो अच्छा है। न यह इस बात की सूचना करता है कि विवाहित जीवन अनवरत सुख है। विवाह केवल इस बात की सूचना करता है कि दो व्यक्तियों ने एक साथ जीवन बिताने का तथा परस्पर के सुख-दुःख में भाग लेने का निश्चय कर लिया। इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं। जैसा कि किसी ने बताया है इसे पारस्परिक समझौता, एकता, सौदा जैसा जो समझें, उसके कारण सुख भोग की वृत्ति तथा शक्ति दुगुनी हो जाती है, और दूसरी तरफ दुःख भोग की वृत्ति आधी हो जाती है, इसका अर्थ यह हुआ कि यदि विवाह ठीक ढंग से किया गया और चला, तो सुख के दुगुने होने की संभावना है, और दुःखों के आधे हो जाने की संभावना है। इसका साफ अर्थ यह हुआ कि दुःख तो रहेगा ही। बहुत से दुःख ऐसे होते हैं जिन पर हमारा कोई वश नहीं चलता। उन्हें भोगना ही पड़ेगा।

हां हम अपने उद्योग तथा सहयोग से उन्हें आधा और चौथाई कर लें यह दूसरी बात है।

जब इस तरह से स्वस्थ रूप में जीवन को लिया जायेगा, तभी विवाह सफल हो सकेंगे। मैंने कुछ दुःखों के सम्बन्ध में यह कहा कि उनपर वश नहीं चलता। इसका जरा स्पष्टीकरण कर दूँ। मैं कोई भाग्यवादी नहीं हूँ। पर जैसे हमारे देश में कैसा शासन है, किस प्रकार की समाज व्यवस्था है, इसको मैं अकेला तय तो नहीं करता और न तय कर सकता हूं, फिर कुछ दैवी विपत्ति भी होती हैं जैसे रेल लड़ गई, भूकम्प आ गया इत्यादि इत्यादि।

इसी कारण सिनेमा जगत, सस्ते उपन्यासों और रोमाण्टिक कहानियों से हमें प्रेम का जो चित्र मिलता है, और जो चित्र हमारे अधिकांश नौजवानों और लड़कियों के दिमागों में बसा हुआ हैं, वह बिल्कुल अवास्तविक होने के कारण हमारे समाज के लिये बहुत घातक सिद्ध हो रहा है। मै यह नहीं कहता कि हमारे नवयुवक तथा नवयुवतियां सिनेमा न देखें, पर उन्हें इतना तो करना ही पड़ेगा कि बाहरहाल जबतक सिनेमा सुधरते नहीं हैं, तब तक उन्हें अवास्तविक समझ कर ही देखें। सिनेमाओं में प्रेम के जीवन को ऐसे दिखलाया जाता है मानो यही एकमात्र उपजीव्य हो, जब कि वास्तविकता यह है कि जीवन में और भी बहुत से उपादान हैं जो जीवन को बनाने या बिगाड़ने में समर्थ हैं।

बहुत से विवाह, और मैं तो कहूंगा अच्छे विवाह आर्थिक अभाव के भंवर में पड़कर नष्ट हो जाते हैं। विशेषज्ञों ने यह बतलाया है कि कई बार कितना पैसा किस मद में खर्च होगा, कितनी बार सिनेमा देखा जायगा, कितने कपड़े खरीदे जायेंगे आदि प्रश्नों को लेकर जो मतभेद होते हैं, उन्हीं के कारण प्रेम नष्ट हो जाता है। और परस्पर को दोषी करने का एक सिलसिला शुरू हो जाता है जिससे विवाहित जीवन नरक तुल्य हो जाता है

इस सम्बन्ध में बहुत अन्वेषणों तथा अध्ययनों के बाद यह निष्कर्ष निकाला गया है कि विवाहित जीवन के प्रारम्भ में ही आय देखकर व्यय करने के सम्बन्ध में एक समझौता हो जाना चाहिये। इसके लिये हिसाब लिखने की आदत बहुत अच्छी बताई गई है। अक्सर ऐसा देखा गया है कि पत्नियां यह समझती हैं कि पति पैसा जमाकर रहा है या और बातों में फूँक रहा है, जब कि हिसाब लिखने पर पता चलता है कि घर की छोटी छोटी जरूरतों में जैसे दियासलाई, चीजों की मरम्मत आदि में खर्च होता है। न लिखने पर ये खर्च मालूम नहीं होते और उधर जेब खाली हो जाती है। जो हिसाब लिखा जाय उसे समय.समय पर दोनों अध्ययन करें।

आमदनी का एक हिस्सा, विशेषज्ञों के अनुसार $\frac{1}{10}$ से लेकर $\frac{1}{4}$ तक बीमा आदि में लगा देना चाहिये। यह बात सही है कि साधारण स्वस्थ जीवन में आमदनी बढ़ती जाती है, पर साथ साथ जिम्मेदारियां भी बढ़ती जाती हैं। जब सन्तान पैदा होती है तो बहुत तरह के खर्च बढ़ते हैं। इन सब के सम्बन्ध में पहले ही से सोचना चाहिये। हमारे सिनेमाओं में न तो इन समस्याओं को कभी दिखाया जाता है, और न उनको इनसे कोई मतलब है। यदि कभी किसी को गरीबी में दिखलाया भी जाता है तो उसे शहीद के रूप में दिखलाया जाता है जिससे समस्या सामने आने के बजाय और भी ओझल हो जाती है।

विशेषज्ञों का यह भी मत है कि विवाह अपनी हैसियत के लोगों के साथ किया जाय। दूसरी तरह के विवाह अक्सर असफल हो जाते हैं, इसका कारण यह है कि हमारे इस विषमतामूलक समाज में प्रत्येक स्तर का जीवन पृथक प्रकार का है, और उस स्तर के लोग उसी को निर्भ्रान्त समझते हैं। स्मरण रहे कि विशेषज्ञ ऐसी सलाह साधारण लोगों को देते हैं। जिनमें आदर्शवाद इतना दृढ़ है कि वे सब कुछ सहन कर सकते हैं, उनकी बात और है। पर ऐसे विवाह में कूदने के पहले अपने मनको अच्छी तरह समझ लेने की

आवश्यकता है। अक्सर आदर्श भावुकतामय होता है, और वह वास्तविकता की कसौटी पर बिल्कुल टिक नहीं पाता।

विवाहित जीवन में यह प्रचीन उपदेश बहुत काम में आता है कि तू दूसरों के साथ वैसा कर जैसा तू चाहता है कि दूसरे तेरे साथ करें। दोनों हिस्सेदारों के लिये नियम एक से होने चाहिये। अवश्य दोनों की प्राकृतिक, शारीरिक अवस्थाओं, साथ ही साथ अन्य परिस्थितियों को भी ध्यान में रखना पड़ेगा। एक दूसरे को क्या पसन्द है और क्या नापसन्द है, इसे जानकर उसके साथ एक तरह का समझौता करना पड़ेगा। (प्रत्येक व्यक्ति की प्रकृति जो सालों में बन चुकी है, वह विवाह मात्र से बदलेगी नहीं, यदि बदलेगी तो उसमें समय लगेगा, किसी भी हालत में केवल विरोध या जबर्दस्ती से प्रकृति बदलने की नहीं है।)

क्या पसन्द है और क्या नापसन्द है इस सम्बन्ध में परस्पर के परिवार के प्रति उचित सम्मान तथा प्रेम दिखलाना पड़ेगा। कहने को तो तर्क के लिये यह कहा जा सकता है कि विवाह दो व्यक्तियों में होता है न कि उन व्यक्तियों के अन्य रिश्तेदारों से, पर जिस देश में संयुक्त परिवार प्रथा अभी तक एक जीवित संस्था हैं, वहां इस प्रकार की मनोवृत्ति से काम नहीं चलेगा। सच है कि मैं अपनी स्त्री से ही विवाह करता हूं न कि उनके माता पिता या अन्य परिजनों के साथ, फिर भी यह बात कैसे सम्भव हो सकती है कि जिन लोगों में मेरी पत्नी पली है और जिन से प्रेम करती थी और करती है उनको मैं अवज्ञा की दृष्टि से देखूं। यह बात दोनों हिस्सेदारों के लिये सही है। कितने ही विवाह केवल इस छोटी सी बात को न समझने के कारण असुखी हो जाते हैं।

अवश्य प्रत्येक बात की एक सीमा होती है और उस सीमा को समझ लेना चाहिये। नई बहू सास और ससुर के प्रति अच्छा व्यवहार रक्खेगी, उनकी उचित सेवा करेगी, पर यह आशा करना कि वह अपनी तरुण

उमंगों का बलिदान कर दिन भर अपने बूढ़े ससुर या सास की सेवा में संलग्न रहेगी दुराशामात्र है। जो लोग इस विचार से घर में पतोहू लाते हैं, वे अगली पुश्त के साथ बड़ा अन्याय करते हैं। दोनों ओर से दोनों पक्ष को समझ कर चलने की आवश्यकता है।

आजकल हमारे समाज में विशेषकर शिक्षित पुरुष तथा स्त्रियों में विवाह के प्रति विरक्ति दिखाई पड़ रही है। यह समाज के लिये बहुत ही घातक बात है। जब हम इसकी जड़ में जाते हैं तो हम यही देखते हैं कि इस क्षेत्र में भी स्वस्थ दृष्टिकोण के अभाव के कारण लोग विवाह से भागते हैं। सारी जिम्मेदारियों को समझ बूझ कर विवाह करना यह दूसरी बात है, और जिम्मेदारियों से घबड़ाकर विवाह न करना यह दूसरी बात है। जो पुरुष विवाह नहीं करते, वे अक्सर इसका कारण यह बताते हैं कि वे खर्च से घबड़ाते हैं। इसके लिये मौलिक रूप से जिम्मेदारी तो विषमतामूलक समाज पद्धति पर है, पर व्यक्ति में भी स्वस्थ दृष्टिकोण होना चाहिये। अक्सर ऐसा देखा गया है कि जो लोग कुंआरे रहते हैं, वे अपने पड़ोसियो अथवा मित्रों के परिवारों को देखकर यह निष्कर्ष निकालते हैं कि विवाह न करना ही अच्छा है। यह भी गलत है क्योंकि उन्हें एक ही पहलू दिखलाई देता है। पति और पत्नी में मधुर सम्बन्धों की जो घड़ियां होती हैं, वे किसी भी प्रकार उनके सामने आ नहीं पातीं, पर झगड़े बखेड़े के अवसर घनिष्ठता के कारण उनसे छिप नहीं पाते।

जिस खर्च से घबराकर पुरुष विवाह नहीं करता, यदि पत्नी सुगृहिणी है, तो यह देखा जायगा कि कुंवारा अपने ऊपर जितना खर्च करता है, उससे थोड़े अधिक खर्च से ही सुख दसगुना अधिक हो जाता है। पर यदि स्त्री सुगृहिणी नहीं है, तब तो फिर विपत्ति हो ही सकती है।

जो लड़कियां कुंवारी रहती हैं, वे प्रायः यह कारण बतलाती है कि उन्हें उपयुक्त वर नहीं मिल रहा है। उपयुक्त वर से उनका मतलब ऐसे वर

मे होता है जिसकी आमदनी अधिक हो, और जो उसे बैठाकर ऐश का जीवन व्यतीत करा सके। आराम की इच्छा कोई असामाजिक इच्छा नहीं है, और बहुत स्वाभाविक है, पर जब यह इच्छा इतनी प्रबल हो जाय कि बाकी सब इच्छायें उसके सामने गौण हो जांय तो वह बहुत ही खतरनाक बात है। हम इसे अस्वस्थ दृष्टिकोण कहेंगे। जो दृष्टिकोण मनुष्य को श्रमविमुख बना देता है, तथा उसे जिम्मेदारियों से भागने वाला बनाता है, उसमें कहीं कुछ गलती अवश्य है। और सबसे मजे की बात यह है कि इस प्रकार जिस सुख की तलाश के कारण वे जिम्मेदारियों से भागती हैं, वही सुख उन्हें नहीं मिलता।

पढ़े लिखे परिवारों में अक्सर इस प्रकार की मनोवृत्ति के लड़के तथा लड़कियां मिलेंगी। यदि उनमें जीवन के सम्बन्ध में स्वस्थ दृष्टिकोण हो तो वे कभी भी इस प्रकार की मनोवृत्ति को प्रश्रय नहीं दे सकते।

स्वस्थ दृष्टिकोण उत्पन्न होने पर माता पिता के काम बहुत आसान हो जांय। एक बात तो स्पष्ट कर देना चाहिये कि कैसा भी विवाह हो यदि केवल सुख की तलाश में ही विवाह किया जायेगा, तो वह अवश्य ही असफल होगा चाहे आर्थिक परेशानी बिल्कुल न हो, और अन्य समस्यायें भी न हों। अब यह अधिकाधिक रूप से स्वीकृत होता चला जा रहा है कि नवयुवकों तथा नवयुवतियों को विवाह से पहले ही अपने कर्त्तव्यों की शिक्षा दे दी जाय। इसके बगैर विवाह योजनात्मक रूप से सफल नहीं हो सकते।

हमारे समाज में दहेज की प्रथा के कारण विवाह की समस्या और भी जटिल हो गई है। दुःख है कि इस सम्बन्ध में परिस्थिति सुधरने के बजाय और बिगड़ती चली जा रही है। इस बेकारी और गरीबी के युग में लोग यही समझ रहे हैं कि यदि विवाह के बहाने ससुर साहब की सिफारिश से नौकरी मिल जाय या एक मुश्त बड़ी रकम मिल जाय, तो बड़ा काम देगा। इस प्रकार हम एक बार फिर मूल प्रश्नों में पहुँच जाते हैं।

यौन विज्ञान पर किन्से की खोजें

नर तथा नारी के यौन जीवन के सम्बन्ध में किनसे तथा उनके साथी पोमेराय, मार्टिन और जेबताडने कुछ बहुत महत्वपूर्ण खोजें की हैं। अभी इन खोजों की अच्छी तरह जांच नहीं की गई है, पर मुझे किन्से साहब की पूरी रिपोर्ट पढ़ने के बाद ऐसा ज्ञात होता है कि किन्से तथा उनके साथियों ने जो खोजें की हैं वे महत्वपूर्ण अवश्य हैं, पर उनमें कोई बात ऐसी नहीं है, जिससे यह कहाजा सके कि वे कोई कोलम्बस या नई दुनिया के आविष्कारक हैं।

किन्से प्राणविज्ञान के अध्यापक रहे हैं। कई बार उनके छात्र उनके पास सेक्स सम्बन्धी प्रश्न लेकर आते थे, जिनका वे समुचित उत्तर नहीं दे पाते थे। यौन इच्छा तथा यौन जीवन पर वैज्ञानिक खोज करने के लिये जिस प्रकार की सूचनाओं की आवश्यकता थी, वे उपलब्ध नहीं थी। जो सूचनायें उपलब्ध थीं, वे किसी न किसी रंग में रंगी हुई थीं। किन्से को ऐसा ज्ञात हुआ कि या तो उन पर नैतिक रंग चढ़ा हुआ है या दार्शनिक रंग या सामाजिक रंग किनसे साहब अपनी रिपोर्ट में लिखते हैं—"ये छात्र जिन प्रश्नों को लेकर आते थे, उनका उत्तर देने के लिए हम जन्तुओं के प्राण विज्ञान को साधारण रूप से जितना समझते थे, उसी पर निर्भर करते थे, पर अधिकांश उत्तरों के लिये हमें चिकित्सा शास्त्र, मनोविज्ञान तथा अन्य साहित्य का मुंह ताकना पड़ता था, पर हमने अपनी खोज के दौरान में यह आविष्कार किया कि मनुष्य के यौन व्यवहार को मनुष्य शरीर के अन्य किसी भी व्यवहार के मुकाबले में वैज्ञानिक रूप से कम समझा जाता है।"

किन्से साहब को यह धारणा हुई कि दार्शनिकों तथा प्राणविज्ञान वेत्ताओं ने प्रजनन के कार्य को यौन व्यवहार के रूप में गलत समझा है।

और जननेन्द्रिय विशेष कर वाह्य जननेन्द्रिय ही शरीर के एक मात्र हिस्से हैं, जिनके साथ इन दोनों कार्यों का सम्बन्ध है।

मुझे ऐसा मालूम होता है कि किन्से साहब ने पहले के अन्वेषकों के साथ कुछ अन्याय किया है। यौन व्यवहार का कोई भी गम्भीर अन्वेषक यह नहीं मानता था कि सभ्य मनुष्यों में यौन भावनायें जननेन्द्रियों तक सीमित हैं। मनुष्य प्राणी में तो यह भावना इतनी सूक्ष्म हो चुकी है कि वह शरीर तो कुछ नहीं, सितारों से आगे की दुनियां को भी परिक्रमा कर लेता है। एक वैज्ञानिक में इस प्रकार का दम्भ बल्कि अज्ञान अवाञ्छित और अवाञ्छनीय था।

फ्रायड, ऐडलर, युंग, पावलोव ने मनुष्य व्यवहार पर जो वैज्ञानिक खोजें की हैं, वे बहुत ही मूल्यवान हैं। फ्रायड ने तो इस सम्बन्ध में जो कुछ किया, वह सचमुच क्रान्तिकारी है, रहा यह कि उन्होंने आवेश में आकर अपने सिद्धान्त को जीवन के उन क्षेत्रों में पहुंचाना चाहा, जहां वे नहीं पहुंच सकते, उन्होंने लड़ाई आदि को भी यौन भावना से बताना चाहा, इस प्रकार अतिरंजन और एक देशीयता के चक्कर में फंस गये यह दूसरी बात है।

उनके कार्य की किसी प्रकार अवज्ञा करना या यह कह कर उसके मूल्य को घटाने का प्रयत्न करना कि उनहोंने समुचित प्रयोग के बिना ही अपने सिद्धान्तों को स्थापित किया, अनुचित है।

किन्से की ८४२ पृष्ठ वाली वृहत् पुस्तक की भूमिका के रूप में राबर्ट एम यार्क्स तथा जार्ज डब्ल्यू कर्नर ने जो भूमिका लिखी है, उसमें उन्होंने यह स्पष्ट लिखा है—"फ्रायड और किन्से की तुलना अभीप्रेत नहीं है क्योंकि दोनों व्यक्तियों में स्वभाव, पेशासम्बन्धी प्रशिक्षण और अभिज्ञता में साथ ही उद्देश्यों में बड़ा फर्क है, फिर भी जिस बात पर विशेष ध्यान देना चाहिये वह यह है कि फ्रायड ने अपने चिकित्सालय के तजर्बों पर ऐसे सिद्धान्तों को

पेश किया, जिन से एक ऐसे कार्य की नींव पड़ी, जिसे वे प्रकृति से अथवा प्रशिक्षण से आगे बढ़ाने के लिये समर्थन नहीं थे। यह कार्य है बहुत ही सावधानी के साथ धैर्य रखकर दीर्घ काल तक दृष्टिगत रूप से खोज करके तथ्य इकट्ठा करना, जिसके लिये प्रयोगशाला और निम्नतम क्षेत्रों में शोध करने के लिये प्रशिक्षित प्राणवैज्ञानिक इस समय प्रयत्नशील हैं। किन्से के शोधों से यौन व्यवहार के सम्बन्ध में आधारभूत ज्ञान प्राप्त होते हैं, और अब इस ज्ञान को सामने रखकर सिद्धान्त की जांच करनी पड़ेगी, उसे नया रूप देना पड़ेगा और उसमें पूरक बातें जोड़नी पड़ेंगी।"

ये बातें तभी अच्छी लगती जब किन्से ने जो दो बृहत ग्रंथ लिखे बल्कि रिपोर्ट तैयार की, उनसे वाकई यौन व्यवहार के क्षेत्र में प्रचलित किसी सिद्धान्त बल्कि धारणा का परिवर्द्धन या परिवर्जन आवश्यक होता।

अब हम आगे किन्से ने जो खोज की है, उसके सम्बन्ध में कुछ ब्यौरा देंगे। उसी ब्यौरे से यह ज्ञात हो जायगा कि यौन व्यवहार के शोध में किन्से का क्या स्थान है। इसमें सन्देह नहीं कि किन्से ने बहुत बड़े पैमाने पर खोज की। १६३९२ व्यक्ति याने ७७८९ स्त्रियों तथा ८६०३ पुरुषों के सम्बन्ध में तथ्य प्राप्त किये गये। इनमें से ९१५ स्त्रियां जेल काट चुकी थीं, और सामूहिक रूप से उनका विश्लेषण करने पर यह ज्ञात हुआ कि कुछ मामलों में वे साधारण श्वेतांग स्त्रियों से भिन्न हैं, इस कारण "सेक्सुअल विहैवियर इन दि ह्यूमन फीमेल" में उनकी बातों को लेकर औसत नहीं निकाला गया है। इसके अतिरिक्त ९३४ अश्वेतांग स्त्रियों के आंकड़ों को भी इस हिसाब में स्थान नहीं दिया गया। इस प्रकार ५९४० ऐसी श्वेतांग स्त्रियों के सम्बन्ध में प्राप्त तथ्यों पर ही उक्त पुस्तक लिखी गई है।

किन्से का सबसे प्रथम वक्तव्य यह है कि सामाजिक रूपसे जिन्हें अभी किशोर या किशोरी की श्रेणी में रक्खा जाता है, वे यौन भावनायें रखते हैं और यौन जीवन बिताना चाहते हैं, पर समाज, कानून, परम्परा उन से दूसरी

तरह के व्यवहार चाहती है, इसी से गड़बड़ी पैदा होती है। किन्से का कहना है सामाजिक परम्परा और कानून जिस उम्र में नवयुवकों तथा नवयुवतियों को नाबालिग मानता है, उस उम्र में ही वे प्राणविज्ञान की दृष्टि से बालिग़ हो जाते हैं। उनके शब्दों में "हमारी संस्कृति ने इस बात पर अधिकाधिक रूप से ज़ोर दिया है कि यौन व्यवहार उन्हीं लोगो तक सीमित रहे, जो कानून की दृष्टि से बालिग़ विशेषकर विवाहित बालिग़ हैं।"

किन्से ने यूरोपीय साहित्य के कुछ ऐसे उदाहरण दिये हैं, जिनमें प्रेमिक प्रेमिकायें आजकल की यूरोपीय धारणा के अनुसार नाबालिग़ थीं। ऐशिलिस के साथ डेइडामियां के सम्पर्क से एक लड़का पैदा हुआ था। यह उस समय की बात है जब ऐशिलिस की उम्र पन्द्रह साल की थी। ऐशिलिस ने जिस समय गलेशिया से प्रेम किया था, उस समय वह अभी सोलह साल पार कर चुका था। जिस समय शियोने अभी चौदह साल की थी, उस समय बताया जाता है कि उसके एक हज़ार प्रेमिक थे। जब नार्किसस सोलह साल का ही था, उस समय कई युवक तथा युवतियां उसके प्रेम की भिखारी थीं। (यहां पर बता दिया जाय कि ग्रीस में समलैंगिक प्रेम एक आम बात थी।) हेलेन अभी बारह साल की ही थी, जिस समय उसे पैरिस स्पार्टा से उठाकर ले गया। एक अति प्रसिद्ध गड़ेरिया रोमैन्स में डैफनिस की उम्र पन्द्रह और क्लो की उम्र तेरह थी। जिस समय हेलवास की उम्र अठारह थी, उस समय वह आबेलार के प्रेम में पड़ गई थी। जिस समय ट्रिस्ट्रक पहली बार इसोल्डे से मिला, उस समय ट्रिस्ट्रम की उम्र उन्नीस थी। जिस समय रोमियो ने जुलियट के साथ प्रेम किया, उस समय जुलियट की उम्र पन्द्रह से कम न थी।

इन उदाहरणों को देने के बाद किन्से साहब यह कहते हैं कि यदि इतिहास और साहित्य के ये प्रेमिक और प्रेमिकायें इस समय जीवित होतीं, तो वे सबके सब अपरिपक्व किशोर किशोरियां समझी जातीं और उन्हें शिशु अपराधी

की श्रेणी में डाल दिया जाता। हाँ किन्से साहब का यह कहना है कि वर्तमान समय में अमेरिकन समाज में इक्कीस से तेइस साल के पहले लोग यौन दृष्टि से नाबालिग माने जाते है, पर तथ्य यह है कि वे पहले ही यौन दृष्टि से बालिग हो जाते हैं और वे यौन व्यवहार करने लगते हैं। यहां तक तो डाक्टर किन्से जो कुछ कहते हैं वह कोई बहुत खतरनाक नहीं है, पर वे इसके बाद अपनी खोजों के आधार पर यह कहते हैं कि जिन स्त्रियों ने कम उम्र में यौन तृप्ति प्राप्त की, वे बाद को चल कर विवाहित जीवन में यौन रूप से अधिक सफल रहती हैं। दूसरे शब्दों में हम यदि किन्से की बातों को मान लें, तो यह नतीजा निकलता है कि लड़कियों और लड़कों की शादी कम उम्र में ही होनी चाहिये।

बच्चों के यौन प्रशिक्षण के सम्बन्ध में भी किन्से को कुछ कहना है। उन्हें शोध से यह मालूम हुआ कि वर्तमान समय में केवल पांच फ़ी सदी बच्चों को अपने पिता, माता अथवा गुरुस्थानीय व्यक्तियों से यौन ज्ञान सम्बन्धी प्रथम सूचनायें प्राप्त हुईं। बाकी बच्चों को दूसरे बच्चों से ज्ञान प्राप्त होता है। शोध के आधार पर किन्से यह कहने में असमर्थ हैं कि बच्चों को यौन विषय सम्बन्धी ज्ञान दूसरे बच्चों से प्राप्त होना चाहिये या अभिज्ञ बालिग़ लोगों से। फिर भी उनका यह कहना है कि यदि बड़े यह चाहते हैं कि उन्हीं से बच्चों को यौन व्यवहार सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त हो, तो साधारणतः दस या बारह साल की उम्र में या बहुत से क्षेत्रों में इससे कुछ पहले यह ज्ञान दान होना चाहिये। किन्से यह मानते हैं कि प्रथम सूचना तथा प्रथम यौन व्यवहार और उसके प्रति बच्ची या बच्चे की प्रतिक्रिया बहुत महत्वपूर्ण है।

किन्से का यह विचार है कि अमेरिका में यौन अपराध बढ़ रहे है, और साथ ही उनका यह भी कहना है कि इस सम्बन्ध में लोग जितना समझते हैं, अपराध शायद उतना ही बढ़ रहा है। तेरह सौ यौन अपराधियों का इतिहास प्राप्त करने पर भी किन्से किसी प्रकार नये उपसंहार निकालने में अपने को

समर्थ नहीं पाते। वे फिर भी इतना कहते हैं कि अत्यन्त अधिक सामाजिक नियन्त्रण अच्छा नहीं मालूम होता, बल्कि यौन अपराध सम्बन्धी कानूनों को जिस प्रकार काम में लाया जाता है, उससे अनर्थ ही अधिक होता है। एक उदाहरण यह है कि एक पुरुष को इसलिये सजा होती है कि उसने किसी दूसरे पुरुष से समलैंगिक यौन व्यवहार का प्रस्ताव रक्खा। सजा पाकर वह एक ऐसी संस्था जैसे जेल में दाखिला किया जाता है, जहां आधे से लेकर तीन चौथाई लोग नियमित रूप से उसी संस्था के अन्दर समलैंगिक यौन व्यवहार में लिप्त रहते हैं। उसका साबका दूसरे अपराधियों से भी होता है।

इस प्रकार जब वह जेल से निकलता है, तब वह एक पक्का अपराधी होकर निकलता है। पहले तो उसमें केवल समलैंगिक यौन व्यवहार के प्रति आकर्षण था, अब वह नियमित रूप से समलैंगिक अपराध करनेवाला हो जाता है।

किन्से साहब ने जो शोध किया, उसमें उन्होंने दो साल की बच्ची से लेकर ९० साल की बुड्ढी तक अपने शोध को प्रसारित किया है। मामूली पढ़ी लिखी से लेकर उच्चशिक्षिता, चिर कुमारियों से लेकर सधवा, विधवा, विवाहविच्छेदप्राप्ता या पति से वियुक्ता, सब तरह के सम्प्रदाय यहां तक कि १०८ यहूदी स्त्रियों का भी इतिहास लिपि बद्ध किया गया। इनमें ऐसी स्त्रियां थीं, जो ग्यारह साल की उम्र में ही यौनरूप से बालिग हो गईं और ऐसी स्त्रियां भी थी, जो पन्द्रह या उससे अधिक उम्र में बालिग हुईं। बहुत सावधानी के साथ शोध कार्य किया गया। प्रत्येक व्यक्ति को यह विश्वास दिलाया गया, यही नहीं विश्वास करा दिया गया कि उसकी बात किसी भी तरह खोली नहीं जायगी। फिर भी किन्से साहब मानते हैं कि कहीं कोई ग़लती हो गई होगी। शोध के परिणामों को लिपिबद्ध करते समय इन ग़लतियों के लिये भी मार्जिन छोड़ दी गई है।

प्रथम यौन अभिज्ञता के सम्बन्ध में जांच करने पर यह ज्ञात हुआ कि ४ फीसदी स्त्रियां यह कहती रहीं कि पांच साल की उम्र में ही वे यौनरूप से प्रतिक्रिया करने लगी थीं। १६ फी सदी ने कहा कि दस साल की उम्र के लगभग उनमे यौनप्रतिक्रिया होने का स्मरण होता हैं। कुल मिला कर कोई २७ फी सदी स्त्रियों का यह कहना था कि बारह और तेरह की उम्र के बीच उन्हें यौन रूप से उत्तेजित किया गया। किन्से फिर भी यह अनुमान करते हैं कि इस उम्र के पहले ही अधिकांश लड़कियों को यौनरूप से उत्तेजना मिली होगी।

किन्से का कहना है कि हस्तमैथुन और भी वैज्ञानिक रूप से कहा जाय तो आत्ममैथुन लड़कों तथा लड़कियों में अक्सर पाया जाता है। कई माताओं ने अपनी लड़कियों के सम्बन्ध में किन्से साहब के सहायकों को इस आत्म-मैथुन का ब्यौरा दिया। इनमें से कुछ वक्तव्यों से यह उपसंहार निकाला जा सकता है कि कुछ लड़कों तथा लड़कियों में पूर्ण मैथुन की सीमा तक प्रतिक्रिया करने की सामर्थ्य होती है। आत्ममैथुन के सम्बन्ध में आंकड़ा यह है कि १ फी सदी लड़कियों ने यह माना कि ३ साल की उम्र से ही और १३ फीसदी ने माना कि वे लगभग १० वर्ष की उम्र से आत्म-मैथुन करती रही हैं।

केवल ४८ फी सदी लड़कियों ने यह कहा कि यौन रूप से बालिग होनेके पहले उन्हें भिन्नलैंगिक उत्तेजना से सबका पड़ा था। किन्से ने इस बात पर भी खोज की कि किस हद तक नाबालिग लड़कियां वयस्क पुरुषों के सम्पर्क में आजाती हैं। इस सम्बन्ध में ४४४१ स्त्रियों के बयान मौजूद हैं, जिससे यह ज्ञात होता है १०७५ याने २४ फीसदी लड़कियां यौनरूप से नाबालिग रहते समय बालिग पुरुषों के द्वारा छेड़ी गई थीं। १६ फीसदी लड़कियों ने कहा कि उन्हें इस किस्म के तजर्बे की याद नहीं है।

आत्ममैथुन के ब्यौरे के सम्बन्ध में लिखते हुये किन्से ने यह कहा है कि मनुष्यतर प्राणियों में नरों का आत्ममैथुन यथेष्ट पाया जाता है। रहा मादाओं में कम है, पर चुहिया, मादा खरगोश, मादा स्याही, गिलहरी, घोड़ी, गाय, हथिनी, कुतिया, बंदरिया, मादा लंगूर, मादा शिम्पैन्जी में यह बात देखी गई है। इसी प्रकार प्रशान्त महासागर तथा अफ्रिका में रहने वाली बहुत सी आदिम जातियों में भी इस का प्रचलन पाया गया है। रहा यह कि उन जातियों में स्त्रियों की आत्ममैथुन की बात कम लिखी गई है, यह दूसरी बात है।

इस भूमिका के बाद किन्से साहब इस बात पर आते हैं कि किस प्रकार से स्त्रियां आत्म मैथुन की बात सीखती हैं। ७० फी सदी का यह कहना है कि उन्होंने स्वयं इस प्रक्रिया का अविष्कार किया। कई स्त्रियों ने यह भी कहा कि कम उम्र में तो उन्होंने नहीं सीखा, पर बाद को अधिक उम्र में उन्होंने आविष्कार किया। जिन स्त्रियों ने कभी भी आत्ममैथुन किया, उनमें से ४२ फी सदी ने यह कहा कि उन्होंने ज़बानी सुनकर या किताबों अथवा पत्रिकाओं से पढ़ कर यह काम सीखा। सब से मज़े की बात यह है कि अधिकतर स्त्रियों ने यह कहा कि उन्होंने धार्मिक व्याख्यानों से, जिसमें इसकी बुराई की गई थी, इस काम को सीखा। कुछ स्त्रियों ने पुरुषों के सम्पर्क में यह काम सीखा।

यहां यह बात बता दी जाय कि अमेरिका में पटिंग नाम से एक क्रिया चली है, जिसमें पुरुष और स्त्री दोनो भाग लेते हैं, पर वे वास्तविक सम्भोग नहीं करते। इसमें सिवा सम्भोग के सभी कार्य किये जाते हैं।

कई वार स्त्रियों ने दूसरों को आत्म मैथुन करते हुये देख कर यह काय सीखा था। लड़कियों ने लड़कों को आत्म मैथुन करते हुये देखा और फिर वह अपनी सम्भावनाओं की ओर झुकीं। कई क्षेत्रों में नर्स, नौकरनी या कोई स्त्री रिश्तेदार के साथ लड़की को समलैंगिक मैथुन का तजर्बा प्राप्त हुआ,

और इसके बाद वह आत्म मैथुन की ओर झुकी।

किन्से ने यह भी शोध किया कि आत्ममैथुन के कौन से तरीके स्त्रियों में प्रचलित हैं। उन्होने स्वप्न दोष पर भी आंकड़े एकत्र किये। स्वप्नदोष के सम्बन्ध में किन्से ने जो बातें कही हैं, उनसे कोई नई बात सामने नहीं आती बल्कि फ्रायड आदि के इस सम्बन्धी विचारों का समर्थन होता है।

पहले ही बताया गया कि अमेरिका में पटिंग का बड़ा प्रचार है। वहां तो यह एक सामाजिक समस्या हो गई है। कहा गया है कि यह इस सभ्यता की एक अजीब उपज है, जिसमें रुझान कुछ और है, पर विधि निषेधों के कारण रुझान का अनुसरण सम्भव नहीं है। पटिंग के अधिक प्रचार का कारण यह है कि इस में गर्भ रह जाने का भय नहीं होता। किन्से साहब यह कहना है कि अधिकांश उच्च विद्यालय और कालेज की छात्राओं में पटिंग शायद इस लिये स्वीकृत होता है कि इसके साथ सामाजिक मर्यादा का सम्बन्ध हो गया है और इसके बाद या पहले अकसर नृत्य, मद्य पान या मोटर में सहभ्रमण होता है। अमेरिकन युवकों और युवतियों में एक कार्य और होता है, जिसे नेकिंग कहते हैं। यह कार्य पटिंग के मुकाबले में कम यौन होता है। पेटिंग में भी दो किस्म माने जाते हैं। एक हल्का पटिंग और एक निविड़ पटिंग किन्से साहब यहां पर यह दिखलाते हैं कि स्तनपायी जन्तुओं में पटिंग प्रचलित है, इस लिये प्राणिविज्ञान की दृष्टि से उसे अप्राकृतिक नहीं कहा जा सकता, वे बल्कि यह कहते हैं कि इनका दमन ही प्राणिविज्ञान की दृष्टि से अप्राकृतिक है। किन्से बड़े मज़े में कहते हैं—"बहुत से लोग जो इस कृत्य की स्तनपायी जन्तुगत उत्पत्ति से अपरिचित हैं, वे वह समझते हैं कि यह आधुनिक अमेरिकन युवक युवतियों का आविष्कार है और एक पतित गले अति औद्योगीकृत, अति शिक्षित शहरी संस्कृति की उपज है। कुछ लोग इसे उस नैतिक दीवालियापन का प्रतिफलन मानते हैं, जिसके कारण किसी भी सम्पदा का विनाश हो सकता है।"

किन्से ने यह भी दिखलाया है कि किस प्रकार विद्वानों ने इस की निन्दा की है, पर किन्से का कहना यह है कि पूर्ववर्ती लोगों में कोर्ट शिप आदि के बहुत से तरीके ऐसे थे, जो पटिंग के ही नामान्तर हैं। किन्से का कहना है कि संस्कृत चीनी, जापानी साहित्य तक में इसके उदाहरण पाये जा सकते हैं।

कोई ४० फी सदी लड़कियों को १५ साल की उम्र में हटिंग का तजर्बा हुआ। उदाहरणों में ६० फी सदी ने और विवाहिताओं में १०० फी सदी ने यह माना कि उन्हें पहले ही पटिंग का तजर्बा हो चुका था। इसके साथ ही यह भी आंकड़ा है कि पटिंग के फलस्वरूप अधिकांश विवाह हो गये।

जिन स्त्रियों पर शोध किया गया, उनमें से विवाहिता स्त्रियों में ६४ फी सदी को विवाह के पहले वास्तविक मैथुन का तजर्बा हो चुका था। ऐसे रिश्तों का विवाह पर क्या नतीजा होता है, यह किन्से साहब बताने में असमर्थ हैं। किन्से साहब का यह भी कहना है कि यद्यपि धर्म और सदाचार में प्रायः प्राकविवाह और मैथुन की निन्दा की गई हैं, फिर भी पुरुषों और स्त्रियों में खोज करने पर ज्ञात हुआ कि प्राकविवाह मैथुन का प्रचार अमेरिका में कम नहीं है।

जो बातें आ चुकी, उनसे यह स्पष्ट है कि किन्से साहब का यह शोध भले ही अमेरिका के युवक युवतियों की अवस्थाओं के सम्बन्ध में एक चित्र पेश करता हो, पर इनसे कोई ऐसा आविष्कार नहा हुआ, जिन्हें किसी भी तरह क्रांतिकारी या युगान्तरकारी कहा जा सके। कुछ आंकड़े अवश्य एकत्र हुये, पर कोई विशेष नई बात नहीं मालूम हुई।

किन्से ने विवाह पर भी खोज की। प्रथम खण्ड में लिखते हुए ही उन्होंने कहा था कि समाज की दिलचस्पी इसी में है कि परिवार कायम रहे। उन्होंने इस बात पर भी ध्यान दिलाया है कि कुछ लोग यह समझते हैं किसइ

समय अमेरिका में जो परिस्थिति है, उससे परिवार खतरे में है। इसके विपरीत किन्से का यह कहना है कि इस समय अमेरिका में विवाहितों का अनुपात पहले से कहीं अधिक है। उनका यह भी कहना है कि इस समय अलग घरों में रहने वाले यहां तक कि अपने घर के मालिक, परिवार अधिक हैं।

खोज से यह ज्ञात हुआ कि विवाह के प्रथम और द्वितीय वर्ष में पत पत्नी में सम्भोग बहुत अधिक होता है, इसके बाद उम्र बढ़ने के साथ-साथ इसकी संख्या घटती जाती है। कुछ दम्पति ऐसे भी मिले, जिनमें सम्भोग पहली बार विवाह के कई महीने बाद यहां तक कि एक वर्ष बाद हुआ। कुछ इने गिने परिवार ऐसे भी मिले, जिन में विवाह के बाद सम्भोग हुआ ही नहीं। कुछ स्त्रियां शारीरिक रूप से ऐसी थीं कि उनका यौन सम्भोग हो ही नहीं सकता था। कुछ स्त्रियों ने जानबूझ कर सामाजिक सुविधा के लिये ऐसे पुरुषों से विवाह किया था, जो समलैंगिक मैथुनकारी थे। उम्र की दृष्टि से शोध करते हुये ज्ञात हुआ कि स्त्री की पचीस साल की उम्र तक सम्भोग की अधिकता रहती है, तीस साल की उम्र में संख्या घटने लगती है। ३१ और ३५ के अन्दर ६८ फी सदी दम्पति सम्भोग को घटा देते हैं, पर अभी ६८ फी सदी सम्भोग करते होते हैं, पर ३५ के बाद केवल ८० फी सदी स्त्रियां ही पति के साथ सम्भोग करती हैं। पुरुषों में भी इसी प्रकार परिवर्तन होता है, पर स्त्रियों में यह परिवर्तन द्रुत होता है। किन्से ने दिखलाया है कि ५० साल की उम्र में ६७ फ़ी सदी पुरुष सम्भोग करते पाये गये, पर इस उम्र में केवल ३३ फी सदी स्त्रियां ही क्रियाशील थीं। ६० सा की उम्र में पुरुष और स्त्री के सम्बन्ध में ये आंकड़े क्रमशः ६४ और ८० थे

पूर्णमैथुन या पूर्णपरितृप्ति के सम्बन्ध में आंकड़े एकत्र किये गये। किन्से के अनुसार १० फी सदी स्त्रियों को कभी भी पूर्ण परितृप्त नहीं हुई।

विवाह के प्रथम वर्ष के अन्दर ७५ फी सदी स्त्रियों को केवल एकबार पूर्ण परितृप्ति हुई। ३१ और ४० के बीच की उम्र में स्त्रियों को सबसे अधिक पूर्ण परितृप्ति होती है। यदा कदा इस उम्र में ६० फ़ी सदी स्त्रियों को पूर्ण परितृप्ति प्राप्त होती है। ४१ साल के बाद अनुपात घटने लगता है। शिक्षा में इन बातों से कोई फर्क नहीं पड़ता।

किन्से के अनुसन्धान में व्यभिचार और बलात्कार भी आता है। किन्से का यह पहना है कि बहुत दिनों तक एक साथी या साथिन के साथ रहने से यौन उत्तेजना कम हो जाती है। यदि यह बात सही भी हो कि नये साथी या नई साथिन के सम्पर्क में आने पर यौन उत्तेजना बढ़ जाती है, तो भी क्या यह कोई प्रश्न नहीं है कि बच्चों का क्या हो, उनका पालन कौन करे इत्यादि। किन्से की सारी खोज का एक मात्र उद्देश्य अथवा लक्ष्य मैथुनकारी या मैथुन कारिणी पुरुष तथा स्त्रियां हैं, मानो सन्तान का पिता या सन्तान की माता से उन्हें कोई मतलब ही नहीं। मैथुन के अतिरिक्त दुनिया में और भी बातें तो हैं। उनके सम्बन्ध में वे बिल्कुल चुप रहते हैं। एक देशीय शोध का यही नतीजा होता है।

किन्से साहब पहले तो जानवरों पर जाते हैं और यह दिखलाते हैं कि कई जन्तुओं में जोड़े के बाहर यौन सम्बन्ध एक साधारण बात है। फिर वे दिखलाते हैं कि मनुष्य समाज के कुछ अंगों में पुरुषों को विवाह के बाहर यदा कदा यौन सम्बन्ध की अनुमति दी जाती है। अवश्य किन्से साथ ही इस बात को भी बताते हैं कि स्त्रियों को ऐसी अनुमति बहुत कम दी जाती है। इस सम्बन्ध में किन्से के वाक्य उद्धृत करने लायक हैं। इन वाक्यों से यह भी ज्ञात हो जायेगा कि क्यों अमेरिकनों ने किन्से को एक महान वैज्ञानिक बना दिया है। वे लिखते हैं—

"केवल १० फ़ी सदी संस्कृतियों में स्त्रियों को विवाह से बाहर यौन सम्बन्ध की अनुमति दी जाती है। इसके अलावा ४० फ़ी सदी संस्कृतियों

में विशेष-विशेष अवसरों पर विशेष-विशेष पुरुषों के साथ यौन सम्बन्ध की अनुमति दी जाती है । उदाहरण स्वरूप किसी-किसी यौथ उत्सव के अवसर पर जिन का सम्बन्ध ऋतु से होता है, स्त्री को ऐसी अनुमति दी जाती है। विवाहोत्सव के अंग के रूप में नई दुलहिन को इसकी अनुमति दी जाती है या उसे इस अनुमति की आवश्यकता पड़ सकती है। कई क्षेत्रों में पति के मेहमानों के मनोरंजन का यह एक उपाय हो सकता है, पर इस क्षेत्र में पति ही अपनी स्त्री को मेहमानों के निकट पेश करता है। कई बार विवाह के बाहर यौन सम्बन्ध विवाहित माना जाता है। और कई क्षेत्रों में सालियों अथवा देवरों इत्यादि के साथ यह अवश्य कर्तव्य है। कई क्षेत्रों में जब विवाह से पुत्र उत्पन्न नहीं होता, तो इसकी अनुमति दी जाती है, यहां तक कि यह कर्तव्य हो सकता है। इनमें से कई समाजों में स्त्रियों के लिये विवाहबहिर्भूत यौन सम्बन्ध निषिद्ध माना जाता है, पर यदि यह गुप्त रूप से हो और पति को इससे विशेष परेशानी न हो, तो इसे क्षम्य माना जाता है। जैसा कि हमारे द्वारा एकत्रित तथ्यों से बाद को ज्ञात होगा। सम्भव है कि इन्हीं दिशाओं में अमेरिकन रुख चल रहा हो।"

किन्से की खोज में पशुओं के साथ सम्पर्क का विषय भी रहा। यौनरूप से बालिग होने के पहिले जिन लड़कियों को पशुओं से किसी न किसी प्रकार यौन उत्तेजना मिली, उनमें से २० फी सदी को इस प्रकार सम्पर्क से पूर्ण यौन परितृप्ति प्राप्त हुई। सारी खोज में ६५९ स्त्रियां ऐसी थीं, जिन्हें यौन रूप से बालिग होने के पहिले ही यौन परितृप्ति प्राप्त हुई, उनमें से १·७ को पहिली बार यौन परितृप्ति मनुष्येतर प्राणियों के साथ सम्पर्क से हुई। जिन ८९ स्त्रियों ने मनुष्येतर प्राणी से यौन सम्पर्क किया, उन्होंने उनसे केवल शारीरिक सम्पर्क किया या उस प्राणी का हस्तमैथुन करा दिया। खोज की पात्री ५९४० स्त्रियों में २३ ने कुत्तों के मुख से अपने गुप्तांग का स्पर्श कराया, कुछ ने यही काम बिल्लों से लिया। २ स्त्रियों ने कुत्तों के

साथ सम्भोग किया। किन्से साहब ने अपने ढंग से यह दिखलाया है कि प्राचीन शास्त्रों में इस प्रकार की बातें प्राप्त होती हैं। पर हमें तो उनके आंकड़ों से ही मतलब है। ऐसा मालूम होता है कि कुत्तों और बिल्लियों से ही इस प्रकार का सम्पर्क अधिक होता है। पुरुषों में भी इस प्रकार का अपराध प्रचलित है और स्त्रियों से कुछ अधिक है।

इस प्रकार हमने संक्षेप में किन्से की खोजों का जो चित्र पेश किया, उसमें कोई ऐसी बात नहीं है जो इसके पहिले अज्ञात रही हो। रहा यह कि किन्से ने एक बहुत बड़े पैमाने पर खोज की, यह एक विशिष्ट बात है। यदि यह पूछा जाय कि क्या इनमें से कोई खोज ऐसी है, जिससे कोई सामाजिक नतीजा निकलता है, तो इसके उत्तर में यही कहना पड़ेगा कि या तो हम जिसे परिवार समझते हैं, उसे बिल्कुल समाप्त समझ कर हाथ पर हाथ धर कर बैठे रहें, नहीं तो हमें प्रयत्न करना पड़ेगा। सौभाग्य से यह भारतीय अमेरिका से बहुत पीछे (?) हैं, पर हम जल्दी-जल्दी उसकी तरफ बढ़ रहे हैं।